CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4003

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No.

Book No.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
विभाग
पुस्तक क्रम सं० 4003
18.2.71
State Museum Library, Lucknow

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रजभारती

ज्येष्ठ सं० २०२६ वि०

सम्पादक :

श्री वृन्दावन दास

बी० ए०, एल-एल० बी०

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा

वर्ष २३]   वार्षिक मूल्य ४)   [अङ्क १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणिका

क्रमाङ्क शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं०
१-सम्पादकीय	: श्री वृन्दावनदास	१
२-ब्रज लोक साहित्य में भेरि वर्णन	: आचार्य कैलाशचन्द्र 'कृष्ण'	४
३-कहाँ गये ब्रजबासी	: श्रीहरिश्चन्द्र सिंहल 'निरंकुश' एम.ए.	६
४-स्व० डा० हरिशंकर शर्मा स्मृति ग्रन्थ	: श्री वृन्दावनदास	८
५-ब्रजभाषा का शब्द सामर्थ्य	: डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' डी० लिट्०	९
६-कविवर अखैराम	: डा. भगवान सहाय पचौरी पी-एच. डी	१३
७-हरिदास कृत भक्त सुख मंजरी	: श्री उदयशंकर शील एम० ए०	१६
८-ब्रज की होरी साखो और चौपाई	: श्री मोहनलाल शर्मा एम० ए०	२०
९-मनसुखा पर एक दृष्टि	: श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शङ्कर'	२३
१०-वेदों में प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री और उसका महत्व	: श्री वृन्दावनदास	२५
११-डा० वासुदेव शरण अग्रवाल की स्मृति	: श्री रघुनाथ गुप्त	३३
१२-पुस्तक समीक्षा	: डा० रामस्वरूप आर्य पी-एच० डी०	३४
१३-शोकांजलि	: श्री श्यामसुन्दर खत्री	३५
१४-ग्रन्थालोचन	: श्री राजेन्द्र 'रंजन' एम० ए०	३६
१५-पत्र-व्यवहार	: श्री अमृतलाल चतुर्वेदी	३९
१६-ललित निकुंज या शाहजी का मंदिर	: श्री उमाशंकर दीक्षित एम० ए०	४१
१७-स्वर्गीय गोस्वामी श्री केशवाचार्य	: श्री राधेबिहारीलाल 'राकेश'	४४
१८-श्री वित्त मंत्री के प्रति निवेदन	: श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रजभारती

[अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल की मुख-पत्रिका]

वर्ष २३] मथुरा ज्येष्ठ सं० २०२६ [अङ्क १

सम्पादकीय

ब्रज अभिनन्दन ग्रन्थ अथवा ब्रजक्षेत्र की डाइरैक्टरी

इधर श्रद्धेय बनारसीदास जी चतुर्वेदी के कई लेख पत्रों में प्रकाशित हुए हैं जिनमें उन्होंने ब्रजभूमि के पुनर्निर्माण के निमित्त ब्रज अभिनन्दन ग्रन्थ तथा ब्रजभूमि की डाइरैक्टरी आदि के प्रस्तुत करने पर बड़ा जोर दिया है। चतुर्वेदी जी ब्रजभूमि के अद्यतन सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ता हैं। उनका ब्रजभूमि के प्रति बड़ा ममत्व है। वे अहर्निश यही चिन्तन करते रहते हैं कि किस प्रकार से ब्रजसंस्कृति, ब्रजसाहित्य और ब्रजक्षेत्र की कलाओं, उद्योगधन्धों, उसके वृक्षों, उपवनों, कृषि क्षेत्रों आदि की उन्नति हो। उनके लेख मौलिक चिन्तन और तज्जन्य उत्तम सुझावों से परिपूर्ण होते हैं। वे एक पृथक् ब्रज-प्रान्त के निर्माण की परिकल्पना भी शुद्ध साहित्यिक और सांस्कृतिक आधारों पर करते हैं। उन्होंने अपने हाल के लिखे हुए लेखों में ब्रजक्षेत्र के अनेक कार्यकर्त्ताओं से उपरोक्त विषयों पर अपना मत प्रकट करने का आह्वान भी किया है।

सामूहिक रूप से ब्रज के लेखकों, कवियों, साहित्यकारों, कलाकारों आदि का अभिनन्दन अपने आप में एक परम स्तुत्य कार्य है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। इस प्रकार का अभिनन्दन केवल जीवित व्यक्तिगों का ही हो सकता है। दिवंगत महान् विभूतियाँ तो इसमें रह ही जाँयगी। अभिनन्दन ग्रन्थ में व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही की छटा रहती है। व्यक्तिगत परिचय के अतिरिक्त प्रत्येक अभिनन्दित व्यक्ति के विशिष्ट कृतित्व का सोदाहरण उल्लेख वांछनीय ही नहीं अनिवार्य भी होगा।

अब तक परिचयात्मक साहित्य के प्रकाशन की दिशा में उल्लेखनीय कार्य हो चुका है। सर्वप्रथम डा० प्रेमनारायण टण्डन द्वारा संग्रहीत हिन्दी सेवी संसार तथा हिन्दी साहित्यकार कोष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा। डा० टण्डन ने बड़े परिश्रम और अध्यवसाय से लगभग ४००० साहित्य सेवियों का परिचय हिन्दी जगत के आगे प्रस्तुत किया है। इसमें पर्याप्त संख्या में ब्रजक्षेत्र के निवासी भी हैं। डा० टण्डन के ग्रन्थों में अति संक्षिप्त रूप से प्रत्येक व्यक्ति का सीमित परिचय है तिस पर भी उन्हें हिन्दी साहित्यकार कोश को दो खण्डों में निकालना पड़ा है जिनकी पृष्ठ संख्या लगभग १५०० है।

श्री कृष्णदत्त बाजपेयी लिखित ब्रज का इतिहास भी दो भागों में उपलब्ध है। ब्रज का इतिहास प्रथम भाग में ३०० पृष्ठ हैं और द्वितीय भाग में ५५०। द्वितीय भाग में लगभग २००० कवियों और लेखकों का सोदाहरण जीवन वृत्त मुद्रित है। श्री प्रभुदयाल मीतल ने भी इस दिशा में ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास नामक एक वृहत् ग्रन्थ हिन्दी संसार के सम्मुख प्रस्तुत कर एक महनीय योगदान दिया है। मीतल जी के इतिहास ग्रन्थ में अनेक ब्रजभाषा कवियों और साहित्यकारों का परिचय उनकी उत्कृष्ट कृतियों के संक्षिप्त विवरणों सहित विद्यमान है। परन्तु इन सब सन्दर्भ ग्रन्थों की विद्यमानता में भी अनेक ऐसे कवि और लेखकगण उपेक्षित रह गये हैं जिनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश पड़ना आवश्यक है।

ब्रज अभिनन्दन ग्रन्थ प्रस्तुत करना एक व्यक्ति की सामर्थ्य के बाहर की बात है। इसके लिए समानशील विद्वानों के एक संगठन की आवश्यकता है। सर्वेक्षण अपने आप मे एक कठिन और श्रमसाध्य कार्य है। इसमें काफी समय भी लगेगा और इसकी तैयारी पर यथेष्ठ व्यय भी होगा जिसकी व्यवस्था करनी पड़ेगी। चित्रादि भी उपलब्ध करने होंगे।

ब्रज अभिनन्दन ग्रन्थ प्रस्तुत करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ और भी है। समान स्थिति वाले साहित्यकारों में से उन व्यक्तियों का चयन जिनका अभिनन्दन करना है एक महान् समस्या है। इस चयन से भेदभाव के कारण कटुता उत्पन्न होने की आशंका है।

सामान्य कार्य कर्ताओं के सामूहिक अभिनन्दन की अपेक्षा ब्रजभूमि की डाइरेक्टरी (परिचय पत्रिका अथवा परिचय कोश) का प्रकाशन अधिक सुगम एवं व्यावहारिक है। उसमें जैसा चतुर्वेदी जी चाहते हैं ब्रजक्षेत्र के सभी साहित्य सेवियों, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं, पत्र पत्रिकाओं, कलाओं, उद्योगधन्धों, वन उपवनों, तीर्थस्थलों, दर्शनीय स्थानों आदि का संक्षिप्त एवं सचित्र वर्णन प्रस्तुत किया जाना चाहिये। इस प्रकार के कोश के निर्माण का कार्य विद्वानों की एक संगठित सभा करे तो अच्छा हो। सरकार से अनुदान की भी प्रार्थना की जानी चाहिये परन्तु उस पर निर्भर होकर काम करने की बात नहीं सोची जा सकती।

सामान्य स्थिति के कार्यकर्ताओं का परिचय कोश और एक महान् विभूति के सम्मान में समर्पित अभिनन्दन ग्रन्थ सर्वथा भिन्न वस्तुऐं हैं। सम्माननीय व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसे अनुकरणीय तत्व होते हैं जिनसे समाज प्रेरणा ग्रहण करता है, कार्यकर्ताओं को मार्गदर्शन मिलता है और मानव जीवन के मूल्यों की प्रतिष्ठापना होती है। उसको समर्पित अभिनन्दन ग्रंथ में व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ किसी विषय विशेष का एक ऐसा निदर्शन भी होता है जो उस ग्रन्थ को एक विश्वकोश की मान्यता प्रदान करता है। ऐसे अभिनन्दन ग्रन्थ का महत्व मेरी दृष्टि में सामूहिक अभिनन्दन ग्रन्थ से कहीं अधिक है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आगामी जनगणना

आजकल ब्रजभाषा के प्रति जो उपेक्षा की वृत्ति चल रही है उससे ब्रजभाषा के भारी अनिष्ट होने की सम्भावना है। सन् १९७१ में जनगणना का कार्यारम्भ होने वाला है, उसकी तैयारियाँ अभी से हो रही हैं। विशाल ब्रजक्षेत्र के समस्त ब्रजभाषा भाषियों से निवेदन है कि जनगणना के समय अपनी भाषा के स्थान पर वे ब्रजभाषा (हिन्दी) लिखवायें। इससे सरकार और जनता सभी को यह विदित हो जायगा कि ब्रजभाषा भाषियों की संख्या कितनी है और ब्रजभाषा की उपेक्षा करना कितने हृदयों को चोट पहुँचा सकता है। जब हम परिवार और अपने दैनिक जीवन में अविरल ब्रजभाषा का प्रयोग करते हैं तो उसे छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस सम्बन्ध में हम विस्तृत रूप से प्रेस में लिख चुके हैं और हमारे समर्थन में श्री हरिश्चन्द्र सिंघल एम० ए० निरंकुश ने हमें एक लेख भेजा है जिसे हम इसी अंक में प्रकाशित कर रहे हैं।

ब्रजभाषा साहित्य का प्रकाशन

ब्रजभाषा साहित्य के प्रकाशन में आर्थिक अभाव तो एक बड़ी बाधा के रूप में उपस्थित रहता ही है कुछ अन्य अड़चनें भी ऐसी हैं जिन पर विद्वानों को विचार करना चाहिये। किसी मुद्रण के लिए सरकारी अनुदान तब ही प्राप्त हो सकता है जब कि सामग्री उत्कृष्ट एवं गवेषणापूर्ण हो और पाण्डुलिपि स्वच्छ, शुद्ध एवं प्रामाणिक हो। जब तक हस्तलिखित प्रति की प्रामाणिकता को तीन क्षेत्रीय विद्वान् मान्यता प्रदान न करेंगे तब तक सरकार उस पर विचार भी नहीं करती। इस दशा में उपयुक्त पाण्डुलिपि की प्राप्ति सर्वोपरि महत्व की वस्तु हो जाती है। जैसा कि हम अनेक बार लिख चुके हैं कि मण्डल का ध्येय उस उच्चकोटि के ब्रजभाषा साहित्य के प्रकाशन का है जिसके कालान्तर में अप्रकाशित रहने के कारण नष्ट और लुप्त हो जाने की सम्भावना है। हम देखते हैं कि सभाओं और सम्मेलनों आदि में प्रकाशन के लिए तो महती इच्छाऐं सर्वत्र व्यक्त की जाती हैं परन्तु हमारे पास ऐसी सूचनाऐं कि अमुक व्यक्ति के पास उपयुक्त सामग्री तत्काल उपलब्ध है बहुत ही कम अथवा नगण्य हैं। उपयुक्त पाण्डुलिपि के प्रकाशन के लिए हम अवश्य प्रयास करेंगे।

कविवर नवनीत ग्रंथावली, कविरत्न सत्यनारायण ग्रन्थावली, महाकवि ग्वाल ग्रन्थावली, पं० श्रीधर पाठक के अप्रकाशित ग्रन्थ, अन्य उत्कृष्ट कवियों की स्फुट रचनाएँ आदि विशाल साहित्य अप्रकाशित हैं। इसका संकलन और संपादन कर उसे सुन्दर पाण्डु लिपियों में प्रस्तुत करने का कार्य ब्रजभाषाप्रेमी साहित्यमर्मज्ञों का है। जब तक यह पूर्ण नहीं होता प्रकाशन का कार्य एक सुखस्वप्न ही है।

—वृन्दावन दास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रजलोक साहित्य में भेरि वर्णन

(आचार्य कैलाशचन्द्र 'कृष्ण' मथुरा)

हिन्दी साहित्य के भंडार भरबे में बृजभूमि और वाके भाषा साहित्य को अद्भुत योग रह्यौ है। या भूमि की भाषा नें अपने ही प्रदेश में नांय, बल्कि राजस्थान, मेवाड़, पंजाब, मध्यप्रदेश आदि प्रान्तन में हूँ अपनी मधुरता सूँ अनेक शताब्दीन तक अपनौ एक छत्र साम्राज्य स्थापित बनाय राख्यौ। सूरदास, परमानन्ददास, छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी, रसिकदास, केशव, मतिराम बिहारी आदि असंख्य कविजनन ने अपनी लेखनी ते साहित्य कौ गुणगान अनेक प्रकार के छन्दन में कियौ है।

जहाँ इन विपुल कवीन के साहित्य कौ महत्व है वहाँ ब्रजभूमि के ग्रामंचल में प्रसारित जनजन के कंठहार लोकसाहित्य की हू उपेक्षा नाँय है सके। बज के लोक साहित्य की गणना में ढोला मारू, हीर रांझो, रसिया, तान, ख्याल, लामनी, कहानी, बुझउअल, अनमिल्ला, तुकमिल्ला, ओटपाव, सरपाव, भेरि ग्रामगीत आदि आमें हैं।

ब्रज के ग्रामीण अंचल में प्रचलित लोक साहित्य के ये परिसूत्र ज्ञान, उपदेश नीति, शिक्षा आदि की दृष्टि ते वहुतई महत्वपूर्ण हैं। आज हम जा लोक साहित्य के एक अंग भेरि कौ महत्व बरनत हैं। जाके हर पंक्ति के अन्त में "गढूआ गढ़त भेरि है गई" यह पद आवै। गढुआ मढ़बौ लोटा बनाइबे ते कहैं हैं और भेरि एक प्रकार कौ पीतल धातु को वु बड़ौ बाजौ है जो पहले काऊ समय संग्राम भूमि में बजतौ हौ। जाकूँ रण भेरि या दुन्दुभि कहते। संस्कृत साहित्य में हू या भेरि कौ नाम संग्राम के समय बजबे वारे बाजेन में आयौ है। गीता के प्रथम अध्याय में **'ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानक गोमुखा'** कहकें भेरि नाम दियौ है। वर्तमान में जे भेरि बाजो साधू महन्तन के समाज में देखिबे कूँ मिलजाय है। वु लोग जाते तु'ही हू कहै हैं।

"गढुआ गढ़त भेरि है गई" पद कौ सीधौसाधौ अर्थ जे है कि लोटा बनायवे बैठे और भेरि बन गई अर्थात् सोची कछू और है गई कछू, लेउ तौ एक भेरि सुनौ —

गीधी गाय गिलौदे खाय, बेर बेर महुआ तर जाय।
उछर ग्वार ने लाठी दई, गढुआ गढ़त भेरि है गई ॥

जा भेरि पद को अर्थ जे है कि गैया जाकूँ महुआ खायबे की टेव पड़ गई बेरि बेरि महूआ के फल खायबे पहुँच जाती क्योंकि वो वाकूँ मीठे लगते। ग्वारिया ने पेड़ की रखवारी की इच्छा ते गैया में जैसे ही एक लकड़िया मारी वैसे ही गैया मर गई और वा बिचारे कूँ गऊ मारे की उल्टी हत्या लग गई। अन्त में जाकौ मतलब जे निकरौ कि सोची कछू है गई कछू। या भेरि पद ते हमें जे शिक्षा मिलै है कि काऊ काम कूँ खूब सोच समझ कर करै नहीं तौ लाभ के बजाय हानि भोगनी परै है। ऐसौ ही एक भेरि पद और सुनिबे लायक है —

तातौ पानी घरही धर्‌यौ, आपुन जाय ताल पै पर्‌यौ।
रपट्यौ पाम दुरी डिग गई, गढुआ गढ़त भेरि है गई ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जामें ऊ ऐसी शिक्षा की बात है कि बिना सोचे समझे कोई काम न करै क्योंकि एक स्त्री ने अपने पति ते कही ही कि तलाब पै नहायबे मत जाग्रो, घरई नहाय लेउ पर बु न मान्यो और तालाब पै पहूँच गयो। पाम रपट्यो और चोट लगी और महीनन के रासे है गये। ऐसे शिक्षाप्रद भेरी पव हैं।

आप अकेले बे हैं चार, नित उठ प्रात करैं तकरार।
एक एक,एक एक सबनें दई, गढ़ुआ गढ़त भेरि है गई॥

जा पद में अकेले आदमी को चार आदमीन ते नित्य झगड़ो हैबे पै कब तक निर्वाह है सकै। जाते उन आदमीन को संग छोड़ देवे में ही सार है जे शिक्षा मिलै है। औरऊ सुनो—

पति पत्नी दोनोंन की राजी, नित उठ खाँय जलेबी ताजी।
रबड़ी और मँगामें दही, गढ़ूआ गढ़त भेरि है गई।

जा भेरि में उन दोनों पति पत्नी की कथा है जो नित्यप्रति तरह तरह के माल मजे मजे में खाते रहे। आमदनी ते ज्यादा घर को खर्च बढ़ाय लयो और अन्त में एक दिना कर्ज के मारें उनकी ऐसी दुर्गति हुई कि बिनें अपनो देश छोड़नो पड्यो। भावार्थ जि है कि कभी आमदनी ते ज्यादा खर्च न करै।

नौते पाँच भये पच्चीस, घर बाहर के है गये तीस।
निमट्यो माल फजीती भई, गढ़ूआ गढ़त भेरि है गई॥

एक आदमी नें पाँच आदमीन कूँ जिमायबे कूँ सामान की तैयारी करी। बु पाँच आदमीन नें नौतवे गयो। जब जैमबे कों वखत भयो तो जा काऊ नें सुनी बुई जैमवे चल्यो आयो। पाँच आदमीन की बजाय पच्चीस है गये। कछु घर के ही हुते। कुल मिलाकें तीसऊ ते ऊपर गिनती है गई। जिमायबे के बखत सामान को कम परिबो स्वाभाविक होई अब तो सिगरे गाँम में जिमायबे बारे को फजीतो है गयो। मतलब जे है कि बिचारौं करवे बैठो थोड़ो सो काम पर है गयो नाम बदनाम। कहाँ तक कहैं—

अस्सी बरस पै कीन्हों ब्याह, मन आई गौने की चाह।
बैठत उठत कुल्हैंड़ी गई, गढ़ुआ गढ़त भेरि है गई॥

जा भेरि में अनमेल काम को वर्णन कियो है। एक बूढ़े अस्सी बरस के खूँसट डोकरा ने नई उमर की छोरी ते कछु लै दै के ब्याह कर लियो और जब गौन्यो करिबे कूँ घर ते चल्यो तो उठत वैठत में ही बाको कूल्हयो उतर गयो। खटिया में धरि गयो और महीनन के ताईं फजीते है गये। अर्थ जे है कि ऐसी बुढ़ापे की उमर में काऊ को ब्याह करिबो बिल्कुल वेकार है। अनमेल काम कबहू बिना सोचे समझे न करैं नहीं तो हानि तौं होयगी।

स्वामी जी गये पोखर पार, कपरा लत्ता धरे उतार।
रपट्यो पाम कुल्हेंड़ी गयी, गढ़ुआ गढ़त भेरि है गई॥

जाऊ भेरि में उमर के तकादे की बात है। बुढ़ापे की उमर में इत बित में ज्यादा डोलिबो ठीक नाँय होत। नहीं तो हाथ पांम टूट्यो और खटिया में परे।

तो अर्थ जे है कि जा प्रकार को ब्रजलोक साहित्य अपनी अनेक गोरवमयी शिक्षान ते भर्यो परो है। भेरि की भाँति अनमिल्ला, तुकमिल्ला, ओलना, बोलना आदि भी लोकसाहित्य के महत्वपूर्ण अंग है।

—:*:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहाँ गये ब्रजवासी ?

(श्री हरिश्चन्द्र सिंहल एम० ए० 'निरंकुश')

ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष, बाबू वृन्दावन दास ने 'सैनिक' आगरा के माध्यम से, एक महत्वपूर्ण विषय की ओर ब्रजवासियों का ध्यान आकर्षित किया है। सन् १९६१ ई० में जनगणना के साथ जो भाषा और बोलियों का सर्वेक्षण हुआ उसके अनुसार उन व्यक्तियों की संख्या ४३ हजार १८९ थी जिन्होंने ब्रजभाषा को अपनी मातृ बोली के रूप में प्रगट किया। विभिन्न राज्यों में इन महानुभावों की संख्या निम्न प्रकार रही :— राजस्थान ७१६५९, मध्यप्रदेश ३१२८, बिहार ११४२, उत्तर प्रदेश १५७, गुजरात ६६, महाराष्ट्र ३२, मैसूर २, पंजाब २, हिमाचल प्रदेश १।

उत्तर प्रदेश के १५७ ब्रजभाषी नीचे दिये गये जिलों में पाये गये :-खीरी ८७, आगरा २१, लखनऊ १९, अल्मोड़ा ६, मिर्जापुर ५, नैनीताल ४, इटावा ३, बाराणसी २, उत्तरकाशी १, सहारनपुर, २, गोंडा १, बाराबंकी १, पिथौरागढ़ १।

मथुराबासियों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि उनके जिले के एक भी पुरुष अथवा स्त्री ने ब्रजभाषा को अपनी बोली नहीं बतलाया जबकि मथुरा ब्रजभाषा और उसके साहित्य का केन्द्र कहलाता है। इससे भी ज्यादा मजे की बात यह है कि सत् १९५१ की मर्दुमशुमारी के बक्त जो जानकारी संकलित की गई थी उसके आधार पर उत्तर प्रदेश में अवधी, भोजपुरी आदि के बोलने वाले लोग तो मिले परन्तु ब्रजभाषा-भाषी एक भी उपलब्ध न हो सका। जाहिर है सन् १९५१ ई० में मथुरा में ब्रजभाषा को अपनी बोली बतलाने वाला कोई व्यक्ति मौजूद नहीं था।

सुविख्यात भाषा-शास्त्री जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने सन् १८९७ में, जो भाषाई सर्वेक्षण का ब्यौरा प्रकाशित किया उसके मुताबिक तत्कालीन उत्तरी पश्चिमी प्रान्त में ब्रजभाषा-भाषियों की कुल संख्या १९ लाख ५१ हजार ४२१ थी और वे लोग विभिन्न क्षेत्रों में निम्न प्रकार से फैले हुए थे—

अलीगढ़ ९९२२००, मथुरा ६११७२१, आगरा ३३००००, फर्रुखाबाद ११०००, मैनपुरी ३००००, बुलन्दशहर २०००, इटावा १०००, लखनऊ ५००।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सन् १९५१ ई० में कम से कम उत्तर प्रदेश में एक भी आदमी ऐसा नहीं था जिसने ब्रजभाषा को अपनी बोली लिखाया हो। अवधी के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। सन् १८९८ ई० में उसके बोलने वालों की अनुमानित तादात १ करोड़ ३७ लाख २८ हजार ६५० थी किन्तु सन् १९५१ ई० में वह संख्या घटकर १८९ रह गई। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सन् १९५१ ई० की तुलना में सन् १९६१ ई० की जन गणना के अवसर उक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोनों भाषाओं के बोलने वालों की अभिलिखित संख्या में वृद्धि हुई। व्रजभाषा के बोलने वाले १५७ हो गये और अवधी के ५ लाख २६ हजार ८०१।

ऐसा लगता है लोगों ने बोलियों को महत्व न देकर हिन्दी को अपनी मातृभाषा लिखवाया। व्रजभाषा भाषियों ने इस दिशा में अवधी वालों की अपेक्षा अधिक उदारता का प्रदर्शन किया जिसके फलस्वरूप उनकी संख्या लगभग शून्य हो गई। व्रजभाषा अवधी आदि अनेक बोलियां हिन्दी में ही सम्मिलित की जाती हैं। यहाँ तक कि उर्दू भी हिन्दी की वह शैली है जिसे फारसी अथवा अरबी लिपि में लिखा जाता है। इसलिये मातृभाषा के स्थान पर व्रजभाषा लिखाने से हिन्दी का कोई अहित नहीं होगा। दूसरी ओर लाभ यह होगा कि व्रजभाषा भाषियों की संख्या का पता चल जायेगा। बाबू वृन्दावनदास जी का यह सुझाव सर्वथा अनुकरणीय है कि सन् १९७१ ई० में होने वाली जन गणना के अवसर पर बोली सम्बन्धी जानकारी सही तौर पर कराई जाये अन्यथा जिस हास्यास्पद स्थिति का ऊपर परिचय कराया गया है वह बनी रहेगी।

सन् १९०९ में जो मर्दुमशुमारी हुई थी उसके वक्त देश भर में व्रजभाषियों की कुल तादाद ८३ लाख ८० हजार ७२४ थी जिनमें ८४·७ तत्कालीन संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध तथा १५·२ प्रतिशत राजपूताना में बसते थे। सन् १९६१ ई० में हुई जन गणना ने यह प्रगट कर दिया कि व्रजभाषा का क्षेत्र उत्तर प्रदेश से हटकर राजस्थान में जा पहुँचा क्योंकि वहाँ कुल के ९४ प्रतिशत बोलने वाले मिले। ये आँकड़े इस बात के द्योतक भी हैं कि राजस्थान में व्रजभाषा के प्रति प्रेम उत्तर प्रदेश से अधिक प्रदर्शित किया गया।

वैसे तो इस तुलनात्मक अध्ययन का कोई फायदा नहीं क्योंकि लोग चाहे व्रजभाषा को बोली बतलायें अथवा राजस्थानी को, उनका आशय हिन्दी से समझा जायगा लेकिन जिस भाषा का साहित्य इतना समृद्ध हो और जिसकी परंपरायें इतनी उन्नत रही हों उसके नाम को सुरक्षित रखना कर्तव्य हो जाता है। मैं यह निवेदन करना अवश्य चाहूंगा कि इस विषय को किसी आन्दोलन का रूप देने की कतई जरूरत नहीं है। हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित अवश्य हो चुकी है परन्तु उसका व्यावहारिक पक्ष दुर्बल ही बना हुआ है। शासन और व्यवसाय इन दो क्षेत्रों में उसको अपेक्षित मान्यता नहीं दी गई है। ऐसी परिस्थिति में बोलियों का विवाद उत्पन्न कर हिन्दी की प्रगति को धक्का नहीं पहुँचाना है। यह सत्य है बिना अवधी और व्रजभाषा के संगम हुए हिन्दी वैसी ही रहती है जैसी प्रयाग से पूर्व गंगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्व० डा० हरिशंकर शर्मा स्मृति ग्रन्थ

(श्री वृन्दावन दास)

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में स्वर्गीय पण्डित जी की बहुमूल्य सेवाओं से ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो परिचित न होगा। उन्होंने आजन्म सरस्वती के मन्दिर में साधना की और उस महती साधना से जो कुछ अर्जित किया उसे मुक्त हस्त से बिखेरा। अपने जीवन काल में उन्होंने अनेक पत्रों का कुशल संपादन किया, शताधिक ग्रन्थों की रचना की, अनेक उपेक्षित साहित्यिकों को प्रश्रय दिया और अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से साहित्य क्षेत्र का नेतृत्व करते रहे।

स्वर्गीय पण्डित जी के मानवीय गुणों की श्लाघा में कुछ लिखने की क्षमता मुझमें नहीं है। वे समस्त भारतीय गुणों एवं आदर्शों की सजीव मूर्ति थे। उनके पुण्यश्लोक जीवन से हजारों व्यक्तियों ने प्रेरणा ग्रहण की थी।

इन महामनीषी के सम्माय में एक स्मृतिग्रन्थ सर्मापित करने की योजना बन चुकी है। उस योजना में इस प्रदेश के कुछ प्रसिद्ध समाज सेवी अपना महत्वपूर्ण सहयोग दे रहे हैं। वयोवृद्ध साहित्यकार श्रद्धेय श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी इस स्मृति ग्रन्थ के प्रधान संपादक हैं।

पंडित जी के मित्रों, भक्तों और प्रशंसकों से विशेष रूप से निवेदन है कि वे पण्डित जी पर अपने संस्मरण लिखकर हमें शीघ्रातिशीघ्र भेज कर अनुगृहीत करें। अन्य ब्रजभाषा प्रेमियों और मर्मज्ञों से भी निवेदन है कि स्मृति ग्रंथ में ब्रजसाहित्य और संस्कृति पर भी एक विशेष खण्ड होगा और उसके लिए यदि वे ब्रजभाषा साहित्य की किसी भी विधा पर कोई शोधपूर्ण लेख भेजेंगे तो उसे निस्संदेह स्मृति ग्रंथ में उचित स्थान प्राप्त होगा।

हम हिन्दी जगत के वर्तमान कर्णधारों से खास तौर से निवेदन करते हैं कि वे अपने व्यक्तिगत योगदान से इस ग्रन्थ को वह गौरव प्राप्त करने का अवसर दें जो उस महामनीषी की प्रतिष्ठा के अनुरूप हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रजभाषा का शब्द-सामर्थ्य

(डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' डी. लिट्.)

ब्रज-लोक-जीवन की मातृभाषा ब्रज की बोली है, जिसने अपनी व्यापकता, शब्द-सामर्थ्य, कोमलता और मधुरता के कारण 'ब्रजभाषा' की संज्ञा प्राप्त की है। अपनी सरस कोमल कान्त शब्दावली के वैभव से ही ब्रजभाषा ने हिन्दी-साहित्य के संपूर्ण मध्यकाल पर अपना आधिपत्य जमाया था। महात्मा सूरदास ही नहीं, बल्कि उनके गुरुवर पूज्यपाद बल्लभाचार्य भी ब्रजभाषा को मातृभाषा की भाँति व्यवहार में लाते थे। अकबर जैसे मुसलमान बादशाह और अब्दुर्रहीम खानखाना जैसे मन्त्री ब्रजभाषा की शब्द-माधुरी पर सौ जान से हजार बार निसार थे। दिल्ली के पठान मियाँ रसखान तो ब्रजलोक-जीवन के एक ही वाक्य पर ऐसे मुग्ध हुए थे कि जीवन भर ब्रज की रज में लोटते रहे और भगवान् से यही वरदान माँगते रहे कि उन्हें हर जन्म में ब्रज-वास ही मिले। वह एक वाक्य ब्रज की एक ग्रामीण ग्वालिनी के मुँह से इस प्रकार सहज रूप में निकल पड़ा था—**"साँकरी गली में आली कांकरी गड़ति हैं।"**

इस वाक्य के 'साँकरी', 'काँकरी', 'गली' और 'आली' ये चार लोक-शब्द ही अपनी वैभव-माधुरी के साथ मियाँ रसखान के हृदय पर ऐसा प्रभाव डाल गये कि आठों पहर और चौंसठ घड़ी वे यही रट लगाते रहते थे—

मानुस हौं तौ वही रसखान बसौं संग गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तौ कहा बसु मेरौ चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि कौ जो कियौ हरि छत्र पुरंदर कारन।
जौ खग हौं तौ बसेरौ करौं मिलि कालिंदि कूल कदंब की डारन॥

भारतीय संस्कृति को यदि हम ब्रज-संस्कृति भी कह दें तो बहुत कुछ अंशों में सत्य ही है। ब्रज-सस्कृति और ब्रजभाषा-काव्य ने भारत में जो अपना प्रभाव फैलाया, उसका मूल कारण ब्रज के लोक-जीवन का शब्द वैभव ही था। शब्द की अभिव्यंजकता और सामर्थ्य ही तो उसका अपना बल और सत्ता हैं। उस अर्थमयी अभिव्यंजकता की प्राणशक्ति से ही भाषा में जीवन्तिनी ज्योति जगमगाया करती है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम भावों के अभिव्यंजक शब्द ही किसी भाषा को अमरत्व प्रदान कर सकते हैं। ऐसी अमर शक्ति केवल लोक-शब्दों में ही हुआ करती है। लोक-शब्द ही साहित्य-स्रष्टाओं की लेखनी पर आसनारूढ़ होकर गौरव प्राप्त किया करते हैं। जिस भाषा का परिनिष्ठित साहित्य लोक-जीवन से अपना नाता जोड़ता रहेगा, वह निश्चित रूपेण जीवन्त और प्राणवन्त बना रहेगा। ब्रजभाषा का काव्य-साहित्य इसीलिए प्राणवन्त और गौरवशाली है कि उसने लोक-जीवन से ही ज्योति लेकर सदा अपने को आलोकित किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई भी साहित्यिक भाषा एक साथ आकाश से धरती पर नहीं उतरती। उसका किसी न किसी लोक भाषा से विकास हुआ करता है। जिस दिन साहित्यिक भाषा अपनी जन्मदात्री लोक-भाषा से नाता तोड़ देती है अथवा यों कहिये कि जब साहित्यिक भाषा में लोक-शब्दों का व्यवहार बन्द हो जाता है तब उसकी प्राणशक्ति समाप्त हो जाती है और फिर वह कृत्रिम एवम् अस्वाभाविक सी बनकर एक दिन मृतप्राय हो जाती है। यदि ब्रजभाषा को हमें सबल और प्राणवन्त बनाये रखना है तो ब्रजलोक जीवन के शब्दों को हमें अबाध गति से लेना होगा। इतना ही नहीं आज के लोक-साहित्य को और प्राचीन ब्रजभाषा-काव्य को हम तभी समझ सकते तथा उसका आनन्द तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हम ब्रज-लोक जीवन के शब्दों की अर्थमयी आत्मा के साक्षात् दर्शन करें। 'कृष्ण' की अपेक्षा 'कान्हा' या 'कन्हैया' हमारा असली ब्रजलोक-जीवन का शब्द है। इसमें जैसी माधुरी भरी हुई है, वैसी संस्कृत के 'कृष्ण' शब्द में कहां ? हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि 'कृष्ण' को 'कान्हा' या 'कन्हैया का रूप जनता-जनार्दन ने ही तो दिया है। अतः लोक-मानस को पहचानने वाले आज के साहित्यकार को भी 'कन्हैया' और 'कृष्ण' के पीछे अन्तर्निहित अर्थ-छवि के दर्शन अच्छी तरह कर लेने चाहिये। उसे समझ लेना चाहिये कि भाव-भावना की जिस विच्छित्ति को अपने चारों ओर 'कन्हैया' शब्द लपेटे हुए है, उस विच्छित्ति का लेश मात्र भी 'कृष्ण' शब्द में नहीं है।

हमारे मनोभावों की बारीकी जितनी लोक-शब्द में रहती है, उतनी गढ़े हुए साहित्यिक शब्द में नहीं मिल सकती। ब्रज की संस्कृति, ब्रज की धरती, ब्रज का आकाश, ब्रज की कुंजें, ब्रज के वृक्ष, ब्रज की लताएँ, ब्रज के पशु-पक्षी आदि क्या कहते हैं, क्या अनुभव करते हैं ? वह सब कुछ ब्रज के लोक-शब्दों के माध्यम से ही सुना जा सकता और कहा जा सकता है। किसी प्रदेश के आकाश और धरती के बीच में बसने वाला लोक-जीवन ही उस प्रदेश को वाणी प्रदान करके मुखर बनाता हैं। धरती क्या गाती है ? सरितायें क्यों नाचती हैं ? आकाश क्यों हँसता है ? ऊषा की मुस्कान का क्या अर्थ है ? इन सबके मर्म को हमें लोक-जीवन के शब्द ही बता सकते हैं।

साहित्यिक हिन्दी में 'इच्छा' शब्द के समानान्तर अनेक शब्द मिल सकते हैं, जो 'इच्छा' के आस-पास और लगभग वैसा ही अर्थ व्यक्त करते हैं। 'चाह' और 'अभिलाषा' उसी प्रकार के अर्थव्यजक शब्द हैं। 'एषा' और 'एषणा' भी वैसा ही अर्थ देते हैं। ये शब्द मनोविकार के सूचक हैं। इसी तरह से ब्रज-लोक-जीवन में भी मनोविकार सूचक दो शब्द प्रचलित हैं-एक 'हौंस' और दूसरा 'हुड़क'। ब्रज की लोक-सुरसरी में बहकर आये हुए ये दोनों ही शब्द अपनी अर्थव्यंजकता में स्वतन्त्र, निराले और एकाकी हैं। अर्थात्मा के पारखी पंडित अच्छी तरह जानते हैं कि ब्रज के 'हौंस' में यदि बाह्य वृत्ति का संकेत है तो 'हुड़क' में आन्तरिक वृत्ति की सूचना है। किसी अभीष्ट सुन्दर आभूषण को पहनकर तो 'हौंस' बुझाई जाती है, लेकिन तम्बाकू खाने वाले को तम्बाकू न मिलने पर 'हुड़क' लगा करती है। ब्रज-लोक-जीवन से प्राप्त इन दोनों शब्दों में से किसी एक के भी स्थान की पूर्ति साहित्यिक हिन्दी के 'चाह', 'इच्छा', 'अभिलाषा' या 'एषणा' शब्द नहीं कर सकते। उपर्युक्त भावाभिव्यंजना के लिए हमें आवश्यकतानुसार 'हौंस' और 'हुड़क' शब्दों को ही लेना पड़ेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरदास के एक पद की टेक "नन्द ब्रज लीजै ठोकि बजाय" में भाव-शबलता को व्यक्त किया है। ब्रज के लोक-जीवन में ऐसे सैकड़ों शब्द हैं जो हमारी भाव-शबलता के उत्तम उदाहरण बन सकते हैं। जो बालक ऊधमी, चंचल, शैतान और कुछ उद्दण्ड सा होता है, उसे ब्रज के लोक-जीवन में 'ईतरौ छोरा' कहते हैं। 'ईतर' शब्द से ही 'इतराना' सामान्य क्रिया बनी है। इतराने में कुछ घमंड का भाव भी छिपा हुआ है। सूर ने अपने 'सूरसागर' में इसी भाव के साथ 'ईतर' शब्द का प्रयोग किया है—

"खेलत खात रहे ब्रज भीतर।
न्हाने लोग तनक धन ईतर॥" —(सूरसागर १०/६२४)

नेत्रों से व्यक्त होने वाली एक प्रकार की क्रोधमयी चेष्टा 'घुन्नाना' कहलाती है। क्रोधावेश में किसी के ऊपर प्रहार करने को दौड़ना 'अर्राना' कहलाता है। ये दोनों शब्द ब्रज के जनजीवन के अपने ही शब्द हैं। इनमें जो भाव भरे हुए हैं, उन भावों को उसी प्रकार से व्यक्त करने के लिए साहित्यिक परिनिष्ठित हिन्दी में उन शब्दों को खोजें तो मिल नहीं सकते। यदि गढ़ना चाहें तो गढ़े भी नहीं जा सकते। ऐसी स्थिति में राष्ट्रभाषा हिन्दी को भी इन शब्दों को प्रेम-पूर्वक ग्रहण कर लेना चाहिये। इस उदार आदान-भावना से हमारी राष्ट्रभाषा भी सबल, समृद्ध और व्यापक बनेगी।

मनुष्य कभी-कभी ऐसी अन्तर्द्वन्द्वमयी स्थिति में फँस जाता है कि न चाहते हुए भी कोई काम करने के लिए उसे विवश होना पड़ता है। ऐसे समय में वह मनुष्य उस काम को करने के लिए शरीर से तो आगे बढ़ता है, लेकिन मन से पीछे हटता है। तन और मन की इस विरोधी क्रिया के लिए लोक-जीवन ने 'कुसमुसाना' शब्द प्रयुक्त किया है। ब्रज के लोक-जीवन से प्राप्त इस शब्द के समानान्तर कोई दूसरा शब्द नहीं रखा जा सकता। शिष्ट साहित्य में तो इस भाव का अभिव्यंजक शब्द कदाचित् ही मिले।

किसी-किसी पेड़ के तने के गर्भ में काले रंग की पकी हुई लकड़ी होती है। उसे ब्रज-लोक जीवन में 'पक्का', 'सीकुर', 'राच' या 'सार' आदि नामों से पुकारते हैं। 'सार' भाग बड़ा पक्का और मजबूत होता है। सार को घुन भी नहीं लगता। रीतिकालीन कवि सेनापति ने भगवान् राम की खड़ाउओं को कल्पवृक्ष के सार से निर्मित बताया है। ब्रज-लोक के 'सार' शब्द को सेनापति ने अपने ग्रन्थ 'कवित्तरत्नाकर' में लेकर उसे साहित्यिक आसन प्रदान किया है और अपने कथन को सार्थक बनाया है। सेनापति कहते है:—

"सुरतरु 'सार' को सँवारी है विरंचि पचि।
कञ्चन खचित चिंतामनि के जराय की॥" —(कवित्तरत्नाकर)

ब्रज के लोक-जीवन ने हमें कुछ तद्भव शब्द ऐसे रूप में प्रदान किये हैं कि उनकी वंशावली की खोज करते हुए उनके पुरखों का पता लगायें तो वे हमारे वैदिक साहित्य के आश्रम में निवास करते हुए मिलेंगे। 'दराँत', 'जूनौ', 'बर्त', 'गूल' आदि शब्द ऐसे ही हैं, जिनके पुरखे वैदिक ऋषियों के साथ जीवन बिताया करते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रज के लोक-जीवन का एक शब्द 'दराँत' है, जिसे 'हँसिया' भी कहते हैं। फल, साग, भाजी आदि काटने में काम आने वाला एक औजार 'दराँत' नाम से पुकारा जाता है। ऋग्वेद में इसके लिए 'दात्र' शब्द आया है। ऋग्वेद में ऋषि कहता है—"हस्ते दात्रं च नाददे।" निरुक्त-कार यास्क ने लिखा है—"दातिर्लवनार्थे प्राच्येषु दात्रमुदोच्येषु।" अर्थात् उदीच्याभाषा में जिसे 'दात्र' कहते हैं, उसे ही प्राच्याभाषा में 'दाति' कहते हैं।

घरों में बर्तन साफ करने में काम आने वाला रस्सी का गुंजलकनुमा एक टुकड़ा 'जूना' कहलाता है। कात्यायन श्रौत सूत्र में इसी के लिए 'यून' शब्द है। ब्रज-लोक-जीवन का 'जूना' वास्तव में 'यून' का ही विकसित रूप है।

कुएँ में से पानी भरा चरस जिस मोटे रस्से की सहायता से ऊपर खींचा जाता है, उसे 'बर्त' कहते हैं। अथर्ववेद में 'वरत्रा' शब्द आया है। अन्तर इतना है कि ब्रज-क्षेत्र में जिस मोटे रस्से से चरस खींचा जाता है उसे 'बर्त' कहते हैं और अथर्ववेदकाल में जिस पतली रस्सी से कुत्ते बांधे जाते थे, उसे 'वरत्रा' कहते थे। अर्थ की दृष्टि से 'बर्त' सिजल है और 'वरत्रा' निबल है। अथर्ववेद में लिखा है:—

"शुनं वरत्रा बध्यन्ताम्।" — (अथर्व —३/१७/६)

बम्बे के पानी को एक छोटी नाली द्वारा बाहर निकाला जाता है और उस पानी से खेत सींचे जाते हैं। बम्बे की उस नाली को 'गूल' कहते है। वैदिक निघण्टू में यास्क मुनि ने नदी के सैंतीस पर्यायवाची शब्द दिये है, जिनमें बाइसवाँ नाम 'कुल्या' है। कालान्तर में इस 'कुल्या' में हेठा भाव आ गया और ब्रज-भाषा-काल में आकर वही 'कुल्या' शब्द 'गूल' नाम से पुकारा जाने लगा।

ऐसे सैकड़ों तद्भव शब्द हमारे ब्रज-लोक-जीवन में मिलेंगे जिनके पुरखों की जन्मकुंडली हमारी वैदिक संहिताओं के पन्नों पर लिखी हुई मिलेंगी। ऐसे शब्द वास्तव में ऋषियों की आयु वाले होते हैं। इनके चारों ओर हमारी संस्कृति लिपटी हुई दृष्टिगोचर होती है। इन्हीं से साहित्य सहज और सम्पन्न रूप प्राप्त करता है।

लोक-मानस अर्थ की सूक्ष्मता को पकड़ने वाली पैनी निगाह रखता है। ब्रज के लोक-मानस ने ही भैंस, गाय, घोड़ी, भेड़ और हिरनी के बच्चे को क्रमशः 'पड़रा', 'बछरा', 'बछेड़ी', 'मेमना' और 'छौना' नाम देकर भाव की अभिव्यंजना में स्पष्टता उत्पन्न की है। ऐसी सूक्ष्मदर्शिनी शब्द-समर्थता के प्रमाण ब्रज-लोक-जीवन के सैकड़ों शब्दों में मिल सकते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कविवर अखैराम

(डा० भगवान सहाय पचौरी, एम. ए., पी. एच- डी.)

कविवर अखैराम हिन्दी की ऐसी अज्ञात विभूतियों में से एक हैं, जिनके विषय में साहित्य का इतिहास मौन साधे हुए है। खोज रिपोर्टों में इनके ८ ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इनके एक उपलब्ध ग्रन्थ "सिंहासन बत्तीसी" में इनका परिचय लिखा मिलता है। इसके अनुसार वे मथुरा मंडल में यमुना नदी के निकट भूतनगर नामक ग्राम के निवासी थे। इनकी वंश परम्परा इस प्रकार है:— भीषम कवि, मूलक मिश्र, गोविन्द मिश्र, दामोदर, नाथूराम, जगतमणि मिश्र, अखैराम ग्रन्थ का अन्तंसाक्ष्य निम्नलिखित है:—

भूतनगर जमुना निकट, मथुरा मंडल मांझ।
वहाँ भए भीषम जु कवि, कृष्ण भक्ति दिन सांझ॥
ताके मिश्र मलूक पुन, अति सुन्दर सब अङ्ग।
खोजत वेद पुरानने, कियौ नांहि चित्त भंग॥
तिहि घर गोविन्द मिश्र जू, परसराम सम तेज।
तेज त्याग अनुराग में, नवहि सदा मद तेज॥
दामोदर ताके प्रगट, जोतिस अधिक प्रवीन।
नवत रहे नित छत्रपति, विविध सुखानन दीन॥
तिहि घर नाथूराम जू, प्रगटे दीन दयाल।
जाचक जन सब देस के, धन दे किये निहाल॥
मिश्र जुगत मनि औतरे, तिहि घर अधिक प्रवीन।
ब्रज मण्डल विख्यात जस, विद्या भूषन कीन॥
अखैराम ताके भए, सहस कविनु अनुसार।
जो कुछ चूक्यौ होय सो, लीजो ग्रन्थ सुधार॥

ऊर्ध्वोक्त अवतरणों में अखैराम जी ने अपने पूर्वजों को विद्या-तेज-सम्पन्न अति समादृत जन बताया है। इतिहास के पृष्ठों को उलटने-पुलटने पर कवि की उक्तियों में सत्य का आभास मिलता है। भीषम कवि का उल्लेख मिश्रबन्धु विनोद भाग २ में सं० ३५६ पर मिलता है। इन्होंने बाल मुकुन्द लीला शीर्षक से श्रीमद्भागवत का सुन्दर पद्यानुवाद लिखा था। इनका कविता काल सं० १७१० वि० लिखा मिलता है। इनके पश्चात् अखैराम जी के पूर्वजों के नाम के सन्दर्भ साहित्य में अनुपलब्ध है। पर इतना अनुमान है कि ये गुणीजन रहें होंगे।

अखैराम जी की जन्मतिथि और निधन तिथि नहीं मिल सकी है। परन्तु इनके कविता काल (सं० १८००–१८३२ वि०) का अनुमान अन्तर्साक्ष्य देता है। सिंहासन बत्तीसी का रचनाकाल श्रावण कृष्णा तृतीया सं० १८१२ वि० है और गंगामाहात्म्य की रचना सं० १८३२ में हुई थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अठारे से बारह गिनहु, सम्वत घनसूर।
सावन वदि की तीज को, कियौ ग्रन्थ परिपूर ॥

दूसरे अन्तर्साक्ष्य के अनुसार भी इनका कविता समय सं० १८१२ के आसपास ही ठहरता है। ये भरतपुर नरेश महाराज सूरजमल उपनाम–सुजानसिंह के आश्रित रहे थे, जिसका सन्दर्भ उक्त सिंहासन बत्तीसी में इस प्रकार दिया गया है:—

वदनेश श्री जदुवंश भूपति, सकल गुननिधि जानियौ।
अरिन के बल खण्ड कीन्हे, कृष्ण भक्ति बखानियौ ॥
तिहि सुवन लाल सुजान सिंह, विलास कीरति गाइयौ।
कवि अखैराम सनेह सों, पुतरी सिंहासन गाइयौ ॥

राजा बदनसिंह के पुत्र सुजानसिंह थे। जो इतिहास प्रसिद्ध सूरजमल के नाम से विख्यात हुए। इनका राज्यकाल सं० १८१० से १८२० वि० है। इससे इतना तो निश्चित ही है कि इन्होंने इस अन्तराल में राज्याश्रय सुख भोगा होगा। अखैराम भरतपुर मंडलान्तर्गत डीग में रहते थे। डीग सुजानसिंह के भाई की राजधानी थी। ऐसा अनुमान होता है कि सुजान-सिंह की मृत्युपरान्त ये डीग में आ बसे थे और आजीवन यहीं रहते रहे। खोज रिपोर्टों में इनको चूननगर वासी लिखा है। परन्तु भूतनगर ही लिपि की अस्पष्टता के कारण कदाचित् चूननगर पढ़ लिया प्रतीय होता है। मथुरा में चूननगर नाम का कोई गाँव नहीं मिलता। हां भूतिया (राया से ५ किलोमीटर यमुना तट पर) ग्राम वर्तमान है, जो भूमनगर का ही विकसित स्वरूप ज्ञात होता है। सन् १६०१ की खोज रिपोर्ट में एक और अखैराम का उल्लेख मिलता है, जिनको सं० १८३२ वि० के लगभग वर्तमान बताया गया है। सुप्रसिद्ध स्वामीचरनदास के शिष्य गुरू छौना इनके गुरू बताये गए हैं। इन दोनों का समय प्रायः मिलता है और ये दोनों एक ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं। अखैराम जी गर्ग गोत्रीय ब्राह्मण थे और मिश्र इनकी अल्ल थी। जो भी हो, इनके विषय में गम्भीर खोज अभी अपेक्षित है।

अखैराम जी के लिखे हुए ग्रन्थों के नाम अधोलिखित हैं:—

१. प्रेम रस सागर, २. मुहूर्त चिन्तामणि, ३. रत्नप्रकाश, ४. लघुजातक, ५. सिंहासन बत्तीसी, ६. वृन्दावन शतक, ७. खरोदय, ८. हस्तामलक वेदान्त, ९. गंगा माहात्म्य और १०. कृष्णचन्द्रिका।

अखैराम जी ज्योतिष, वेदान्त, धर्मशास्त्र और काव्यशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। विद्वता इनकी पैतृक सम्पत्ति थी। इनकी कविता पारम्परिक थी और इसमें विविध विषयों का समाहार मिलता है। इनको अपने गुणों के कारण पर्याप्त यश प्राप्त हुआ। राजसभाओं और विद्वत्सभाओं में इनका पर्याप्त समादर था। अन्तर्साक्ष्य के अनुसार इनकी युवावस्था तक का जीवन अच्छे ठाट-बाट से व्यतीत हुआ। जीवन के अन्तिम चरण में ये विरक्त हो गये थे और अपने आपको स्वामी अखैराम लिखते थे। यह सम्भवतः गुरू परम्परा का प्रभाव था। सहस्रोपरि अन्यायन्य तत्कालीन विद्वानों और कवियों की भांति ये बहुदेव वाद के अनुयायी थे। गंगा भक्ति इनमें थी। किन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपासक ये श्री कृष्ण के थे । अपने ग्रन्थों में इन्होंने वृन्दावन महिमा का बड़ा प्रशस्त वर्णन किया है । नखशिख वर्णन में ये सिद्धहस्त थे ।

इनके काव्य के कुछ आदर्श यहाँ उद्धत किये जाते हैं:—

गंगा महात्म्य:—

नमो मात गंगे, अखिल पाप भंगे । जनम अन्तकारी, धरे वपु मुरारी ।।
सुबोध प्रकासं, तिमिर अज्ञनासं । निवारन विकारा, तुमी गंगधारा ।।
नतो अलखनंदा, अखै पुष्पवृन्दा ।

नख शिख वर्णन:—

दसनावलि कुन्दकली सजि के । छवि देखि अनार रहेल जिके ।।
चिबुकी तिल विंदु कनी चमकी । दुति मानहु चंदकली दमकी ।।
कुच कञ्चन के गुटिका गसिकें । जन द्वे विस बांधि दिये कसिकें ।।
उदरावलि प्रेम की घूमथली । कि अली अवली अरविंद चली ।।
कटि किंकिनी जाल जराव जरी । सुमनौं गजराजसु ढार ढरी ।।
पगनूपुर ज्यौं झनकार बजें । जनु तोतर पीजंरा मांहि गजें ।।

वेदान्त-—

जैसे एक सूरज की किरनि अनेक राजैं,
फैलत सकल जग विविध बखानियै ।
निश्चल स्वरूप एक राजत अकास मांझ,
दसों दिस करत प्रकास नीकैं मानियै ।।
जैसे एक आतमा अनेक लखें जगमाहिं,
ताहै जू अनेक मायावाद मन जानियै ।
नित्य उपलब्ध है स्वरूप जो जगत मांझ,
सोई हम जान्यों नहिं दूजौ उर आनियै ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हरिदास कृत भक्त सुखमंजरी

(श्री उदय शंकर 'शील' एम. ए.)

भक्तिकाल का आधे से अधिक हिन्दी साहित्य कृष्णाश्रयी कवियों द्वारा लिखा गया है। नाम के अनुरूप यह साहित्य राधा-कृष्ण और उनके लीलाक्षेत्र ब्रजमण्डल से सम्बन्धित है। पुष्टिमार्ग के प्रवर्त्तक महा प्रभु वल्लभाचार्य को यदि हिन्दी साहित्य (कृष्णाश्रयी) का जनक कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। यद्यपि बल्लभाचार्य जी ने स्वयं हिन्दी में किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की; किन्तु इनके शिष्यों ने जो मधुर राग अलापा उससे आज भी हिन्दी साहित्याकाश गुंजायमान है। हरिदास भी उनके एक शिष्य थे जिन्होंने अपने काव्य का विषय वल्लभाचार्य जी के 'नित्य-प्रति-चरित' को बनाया और उसे भक्त सुख मन्जरी का नाम दिया।

विषय — पुष्टिमार्गीय संप्रदाय में होने वाले नित्य प्रति कार्यों का वर्णन ही भक्त सुख-मन्जरी[२] का मुख्य विषय है। प्राप्त प्रभावों में हरिदास ने श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित पुष्टिमार्ग की नित्य-सेवा विधि का क्रमशः वर्णन किया है। महाप्रभु के यमुना स्नान का वर्णन देखिये :—

एडी भरच बेठि आचमन करि पेंठि जल नाभि लों, छुवाइ पाछें प्राणायाम कीने हैं।
तव जूरा खोलि कैं आवर्त्त जल मांह करें, कान नेन मूंदि तीन बूडक जू लीने हैं।।
कोऊ-कोऊ भक्त जाय धार बस पीछें माहें, मोद न समाय मन अति रस भीने हैं।
कीने नित नेग वेग फिरि उपकंठ आये भाये, हरिदास ज्यों रसिक दान दीने हैं।।[३]

यमुना स्नान के अतिरिक्त इस पञ्चम प्रभाव में आरती प्रसंग, राजभोग, डोल, सुबोधिनी पर टीका-टिप्पणी आदि प्रसङ्ग वर्णित हैं। इसके बाद चटाई माहात्म्य का वर्णन है—

प्रभु आवत जानि के भक्त बहू जगमोहन ठाढ़े रहे सबही।
निहारन हे जु निमेष बिना पिय वल्लभ आवत हैं अबही।।
कोटि प्रकास जु तेजमयी महि आंखिन आगें रहे तबही।
हों बलिहारी कहें हरिदास चले निज मन्दिर को जबही।।[४]

इस समय विभिन्न प्रान्तों के भक्त महाप्रभु जी का दर्शन करते, दान देते और आशीर्वाद पाते थे :—

महाराष्ट्र तैलंग द्रावड़ दक्षिण तें आवहि,
ब्रह्मचारि सन्यासि नारि बालक संग लावहि।

१—द्रष्टव्य-अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय-डा० दीनदयाल गुप्त, भाग १, पृ० ७३।

२—'भक्त सुखमंजरी' के मात्र ६ प्रभाव उपलब्ध हैं। इसमें रचनाकाल का निर्देश नहीं है।

३—भक्त सुखमंजरी, पञ्चम प्रभाव, पत्र संख्या ३।

४—भक्त सुखमंजरी-पत्र संख्या ७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर दिशि ते आवहि पंछी गुर्जर के वासिहि,
पूरब ते जु कनोज के पंडित रहे तजु काशिहि ।।
गोबर्द्धनादि ब्रजवास के मथुरीआ पाये मान,
हरिदास कहे कैसें कहों जु चटाई समें दे दान ।।[1]

ब्रह्म सभा के मध्य महाप्रभु द्वारा सुबोधिनी पर व्याख्यान दिया जाता था—

श्री वल्लभ बैठे ब्रह्म सभा यहाँ चले चरचा जु अनेक प्रकार हैं ।
कहें भलीभांति सुनें सब शांति जु ठाढ़ी हे पांति बहे रसधार हैं ।
सुबोविनो के रस नेह प्रमेह के मेह बढ़े कोऊ पावें न पार हैं ।
पास सुनें हरिदास निवास हुलास बढ़े जू बहूतिहि बार हैं ।।[2]

सप्तम प्रभाव में महाप्रभु के भोजन, शेज्या शयन का वर्णन है । अष्टम प्रभाव में उत्थापन लीला के अन्तर्गत महाप्रभु विश्रामोपरांत उठते हैं, जलपान करते हैं, तदुपरांत रसमय प्रसङ्ग चलता है—

नयो रस नवला नवेली भांति आई हैं
ज्यूं जानि के एकांत पिया सोहे ही सुहाति हैं ।
हरे हरे उगु भरे छाती धुक धुक करे क्यों हू
क्यों चरन जु छोहें भली भांति हैं ।।
वल्लभ रस की रीति पूछत परम प्रीति
भाजी सब जब तब मुसिकाति हैं ।
कहें हरिदास पूरी आस निज दासन की
अतिही मुदित अङ्ग-अङ्ग झलकति हैं ।।[3]

फिर श्री गुपाल, श्री विट्ठलराय तथा अन्य बालकों को आचार्य जी बड़े स्नेह के साथ सुबोधिनी, भागवत और पुष्टिमार्ग का रहस्य बताते हैं । इसी प्रसङ्ग में कवि ने श्री विट्ठलराय के सम्बन्ध में दो छन्द विशेष रूप से लिखे हैं । पाठ समाप्त होने पर सभी बालक आचार्य जी को प्रणाम कर अटारी पर जाते और पाठ-चिंतन करते हैं । अन्त में उत्थापन लीला का प्रसङ्ग शुरू होता है ।

नवम प्रभाब का विषय है—भोग, डोल, संध्या आरती, ग्वाल भोग, छैया-प्रसङ्ग, जसुदा भोग, संध्या वंदन, पुनः आरती प्रस्ताव, स्वभवना गमन, स्वरूप वर्णन प्रस्ताव आदि । निशा भोजन के साथ यह प्रभाव समाप्त होता है ।

सुख सेज्या समय से दशम प्रभाव प्रारम्भ होता है । इसमें महाप्रभु के भोजनोपरांत पान खाने तत्पश्चात् पुष्टिमार्ग पर प्रवचन, विहार आदि का सविस्तार वर्णन है । 'रैनि-रस-रास' का वर्णन इसी प्रभाव में है ।

---

१ — भक्त सुखमंजरी–पत्र संख्या ७ ।

२ —वही ।

३ — भक्त सुखमंजरी, पत्र संख्या–पत्र १५ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समस्त भक्त सुखमंजरी में एकादश प्रभाव अधिक आकर्षक है। 'प्रेम विरह वर्णन' का यह प्रसंग अद्भुत है। विरहिणी की दशा जलती अंगीठी के समान हो रही है, कवि कहता है—

छिनु फिरि ताती भई देह सब दाहु दही
कहा कीजे दई ए अङ्गीठी ज्यों जरत हैं।
देखें सब गात गात छुयो कैसें जात है
जु कही परति बात न प्रात जु हरत हैं।।
लाय लागी हैं जु तन आंच तवे सखी गन
धीर न धरत मन साहस करत हैं।
कहे हरिदास लेति दीरघ उसाँस अब विरह
की ज्वाल कापे टारी जु टरत हैं।।[1]

द्वादश प्रभाव में 'ऋतुराज' का वर्णन है। यह प्रभाव विभिन्न छन्दों और रागों में लिखा गया है। राग बसन्त में एक पद द्रष्टव्य है—

नव नागर नव रङ्ग रङ्गीले।
नव नव रुचि जु खिलावें आज।।
नव नायक नव भाँति विराजे गोकुलेश महाराज राज।।१।।
नव केसरि रंग नवल कुंम कुंमा नवल अरगजा नवल सु साज।
नवल अवीर सुवास नये रङ्ग नवल गुलाल जु नवल समाज।।२।।
नव नागरि नव नवल रूप नव भूषन वसन धरें नव वाल।
नव ज्योवन नव नवल नेह अति, अंजन नेंन तिलक नव भाल।।३।।
नवल नाहु नव वल्लभ के हित सोंज नवल ले चली पांति।
नवल बसंत पंचमी को दिनु वागे धरावति नव भांति।।४।।

× × ×

नवल कुसुम की माल धरावति नवल थाक राजत नव रङ्ग।
नव नव शोभा निरखि भक्त सब फूले हैं जु नवल अंग-अंग।।७।।
नवल आरती साजि सोहे कर नवल चित्र नब ज्योति प्रकास।
नव नायिका को वारति आरति जे जे शब्द हरिदास।।८।।[2]

तेरहवें प्रभाव में आचार्य जी का जन्म उत्सव वर्णित है। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का जन्मोत्सव वैशाख कृष्ण एकादशी[3] को मनाया जाता था—

१—भक्त सुखमंजरी, पत्र संख्या—पत्र ५१।
२—भक्त सुखमंजरी—पत्र ५६।
३—"वैशाख कृष्ण एकादशी" की पुष्टि के लिए देखिये—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय—डा० दीनदयाल गुप्त, भाग १, पृष्ठ २१२, तथा सूर निर्णय—प्रभुदयाल मीतल—पृ० ५१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैशाख कृष्ण एकादशी आचार्य्य प्रागट्य लीयो ।
हरिदास मर्य्याद छोड़ि के पुष्टिपथ उज्वल कीयो ।।[1]

चतुर्दश प्रभाव में बाग विहार वर्णन है । कवि ने रूपक के माध्यम से बाग का चित्रण किया है । कवि के शब्दों में "बाग के वृक्ष महाभक्त हैं । उनकी पत्तियाँ नेत्र हैं जो लीला दर्शन के लिये उत्पन्न हुई हैं ।" रूपक के बाद कवि ने परिगणनात्मक शैली में बाग का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है ।

छन्द——भक्त सुखमन्जरी में दोहा, सोरठा, चौपाई, सवैयों, कवित्त, छप्पय किती, प्रमाणिका आदि छन्दों का तथा बसन्त, धन्याशी, ध्रुवपद, मारु, गोडी, धमार रागों का प्रयोग है । प्रमाणिका छन्द का उदाहरण प्रस्तुत है—

रसात्मकं स्वरूप कंज्य शोमलं अनूपकं ।
श्री गोकुलेश भूपकं सुवेश रुचिर रूपकं ।।१।।

तुलसी माल धारनं सुपक्ष रक्ष कारनं ।
परम्परा उधारनं सु अधम सृष्टि तारनं ।।२।।

× × ×

मनसा सुनिरोधनं सुचित चतुर बोधनं ।
सुजाग्रत कुल गोधनं सुतन सम्पक शोधनं ।।७।।

परिधान यो सुवासमं सर्वांग यो रस रासमं ।
सुवास यो मृदुहासमं किं वर्णयं हरिदासमं ।।८।।[2]

भाषा—'भक्त सुख मन्जरी' ब्रजभाषा में है । इसमें तत्सम शब्दों का बाहुल्य है । फारसी या उर्दू एकाध शब्द प्रयुक्त हुये हैं । कहीं-कहीं ब्रज के घरों में बोली जाने वाली बोली का रूप भी देखा जा सकता है । 'ग्वालिन जोवन गर्व गहेली' पद ऐसा ही है ।

अपूर्ण होते हुए भी सुखमन्जरी पुष्टिमार्ग की एक अच्छी रचना है । भक्तों के लिये तो यह कंठहार है । कवि ने इस ग्रन्थ में पुष्टिमार्ग और उसके स्वरूप का विवेचन किया है । ग्रंथांत में वह घोषणा करता है कि—

"पुष्टि मारग को भूषण जोई । मर्य्यादा को दूषण सोई ।।
मर्य्यादा को भूषण जोई । पुष्टि मारग को भूषण सोई ।।"[3]

---

१ — भक्त सुखमंजरी—पत्र संख्या ८१ ।
२—भक्त सुखमंजरी – पत्र संख्या ७२ ।
३—भक्त सुखमंजरी – पत्र संख्या ७५ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रज की होरी की साखी और चौपाई

(श्री मोहन लाल शर्मा एम० ए०, साहित्यरत्न)

ब्रजलोक जीवन में होरी की साखी और चौपईन कौ अपनौ अद्भुत रंग होय है। ब्रजमंडल कौ ऐसौ कौन सौ क्षेत्र होयगौ जो होरी के रागात्मक आनन्द से आपूरित नाँय होय। ब्रज में होरी और होरी में ब्रज ऐसौ एकाकार है जाय है कै ब्रजलोक जीवन की आत्मा हुलसित ह्वै कें छलकी ही परै है। श्री नागरीदास जी ने या लैंया तौ कही है—

"ब्रज ते शोभा फाग की, ब्रज की शोभा फाग।"

समस्त ब्रजमंडल में होरी अपने अपने ढंगन ते बड़ी मस्ती के संग मनाई जाय है। या होरी की हौंस में ब्रजवासी बड़े रंगीले ह्वै जांय हैं। याही हुलास में ब्रज में साखी और चौपई गाईं जांय हैं।

साखी और चौपाई ब्रज के ग्रामीण अंचल में विशेष लोक प्रिय हैं जिनकूँ ब्रज के किसान गामें हैं। फागुन में कृषक ब्रजवासीन की मस्ती कौ कहा ठिकानौ। प्राणपन ते जोते बोए भए खेतन में मूंड़, मूड़, तक ठाड़ी गदराई भई गेहूँ जौ की अधपकी बार जब सीरी-सीरी ब्यार के झोंकान ते लहर लहर लहराय कें सनन सनन सन्नामें हैं तौ किसानन के हिये हिलोर लेय हैं और बरबस उनके कंठन ते अनेक प्रकार की राग रागिनी सहज रूप ते फूटि परें हैं। ई समै धरती माता की सेवा के बदले मेवा मिलिबेकौ होय है। सो प्राय: ब्रज में फागुन लगत ही साखी गाइबे कौ क्रम चालू ह्वै जाय है।

साखी एक प्रकार कौ छन्द होय है जो दोहा के समान मानौ जाय है। 'साखी' कौ तात्पर्य 'साख्यी' यानी गवाही ते मान्यौ गयौ है। सुप्रसिद्ध विद्वान डा० गुलाबराय जी के शब्दन में— "तत्व का साक्ष्य प्राप्त कर लेने के कारण गुरु को साक्ष्यी कहा गया और उसके उपदेश साख्यी या साख्य कहलाए। साखियाँ किसी भी छन्द में रची जा सकती थीं पर आरम्भ से ही दोहा छन्द की प्रधानता रही और आगे चलकर तो वे एकमात्र दोहा छन्द में ही रची जाने लगी।"

प्राय: साखी गायकन की दो टोली होय हैं। उनमें एक पुरुषन की होय है और दूसरी महिलान की। ब्रज बालाएं नए नए लहंगा फरिया पहिर कें सजधज के संग कौड़ीन ते सजी भई लठियान नें लैकें एक पंक्ति में आयकें ठाड़ी होंय हैं और उनके सामईं पुरुष वृन्द एक पंक्ति में कछू दूरी पै ठाड़े है कें साखी गामत भए उन महिलान की पंक्ति के पास धीरे-धीरे आमें हैं और व्हाँ ठाड़े है कैं गामें हैं। जैसे—

> ब्रज चौरासी कोस में, चार गाम निज धाम।
> बिन्दावन औ मधुपुरी, बरसानौ नन्दगाम ॥ हरे ॥
> लाली तेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
> लाली देखन मैं गई, मैं हू ह्वै गई लाल ॥ हरे ॥
> पत्ता टूट्यौ डार ते, लै गई पौन उड़ाय।
> अबके बिछुरे को कहै, कबन मिलिंगे जाय ॥ हरे ॥

ता पीछें जैसे ही पुरुषन की टोली गाइकें मुड़े है, महिलान की पंक्ति अपनी अपनी लठियान कूँ अपने सामईं के पुरुषन की पीठन ते छिवामत भई चलते भए गामे हैं। उनके बोल या प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के होय हैं—

"चूँदरिया रंग में बोरि गयौ, ऊ कान्हा बंसी वारौ ।
मो पै केसर गागर फोरि गयौ, ऊ कान्हा बंसी वारौ ।।"

फिर महिलान की टोली के पीछे पुरुष गामते भए आमें हैं और या प्रकार ते साखी गाइबे कौ क्रम रात कूँ बड़ी अमेर तक चलतौ रहै है । इन साखीन में वा समै अद्भुत समा बंधि जाय है जब लोक काव्य के माध्यम ते पारस्परिक सम्भाषण होय है । उदाहरण के ताँई प्रस्तुत है एक अंश—

महिला वृन्द—गुर मीठौ, घ्यौ चीकनौ, खांड़ दरदरी होय ।
मैं तोय पूछूँ हे सखी, कान्हा रस कैसौ होय ।।
पुरुष वृन्द— कान्हारस चाख्यौ नहीं, यों कहा बढ़ाई देह ।
कान्हारस यों होय है,ज्यों धरती पै बरसै मेह ।।
महिला वृन्द—काजर करुए तेल कौ, जनम न सारूँ तोय ।
कान्हा नैननि उड़ि गयौ,क्यों लजै, लजावै मोय ।।
पुरुष वृन्द— काजर दै कारी भई, लोंगन जरि गई देह ।
पान खाय पीरी भई जुर्यौ न स्याम सनेह ।।

होरी की इन साखीन की सर्वाधिक विशेषता इनकी अतिशय रागात्मक अनुभूति और वाकी शालीनतापूर्ण सहज अभिव्यक्ति है । ब्रज के अन्य काहू लोककाव्य में या प्रकार ते पुरुष और महिलान कौ ऐसौ संवादात्मक सहगान सुनबे कूँ नांय मिलै ।

साखीन की भांति ही वीरतापूर्ण कृत्यन कौ बखान करिबे के ताँई, कै काहू वीर कौ गुणगान करिबे के ताँई साखा हू गाए जाय हैं । या प्रकार के साखे जिला भरतपुर के लोककाव्य में बहु प्रचलित हैं । जैसे—

दोऊ ओर ते चले मोरचे, जंगी तोप शमसेर चलें ।
धुँआ घन घुमंड बद्दल में, प्रलय काल के से बदलें ।।
गुब्बारे गोले बज्जर वे तीर तमंचे चले चलें ।
शक्ति शूल तलवार हजारों, वार सूर सनमुख झेलें ।।
गढ़ ते बाहर निकरि लड़ै, जहां की सेना मरदानी ।
डीग भरतपुर वैर विकट वाकी ब्रजभूमि रजधानी ।।

होरी की चौपाईन में ब्रज लोक काव्य कौ प्रबन्धात्मक स्वरूप देखिबे कूँ मिलै है । ई चौपाई नगारेन कूँ, जिन्हें 'बम्ब' कहैं हैं, बजाय कें गाई जाय है । संग में झांझ, मजीरा, खरताल, थारी आदि कूँ हू बजायौ जाय है । संग में नृत्य कौ हू समावेश ह्वै जाय है । प्रायः चौपाईन में महाभारत के कथानक कूँ कथ्यौ जाय है । बीच बीच में चुटकला, पटुका, रसिया और साखी के गीतन ते मनोरंजन कियौ जाय है । गाम या नगर की काहू सामाजिक या राज-नैतिक घटना कौ हू बखान इन चौपाईन की लोकधुनन में खूब कियौ जाय है । रसिया प्रायः दुम्याने अर्थात् द्वि अर्थक होंय हैं । चौपई की गायकी के धार्मिक कथानक बड़े चमत्कार पूर्ण होंय हैं । इन चौपाईन कौ लोक काव्य बहुत बड़ी मात्रा में ब्रज ग्राम लोक में बिखर्यौ पर्यौ है और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपेक्षित दशा में है। चौपई प्राय: मथुरा, अलीगढ़, आगरा और गुड़गांवा जिलेन में बहुत प्रचलित हैं।

चौपईन में जिकरी, लामनी, गाहे आदि छन्दन कौ प्रयोग होय है। महाभारत में पाण्डव बनवास के समै कौ एक प्रसंग यहां प्रस्तुत है—

तेरह बरस बिपत के काटे ॥ टेक ॥
लामनी— जब खेती बवै किसान बीज लाई वै।
नांय इन्दर बरसा करै बड़ौ दुखियावै ॥
सब रहि जाय आस निरास बिना बरसा के।
तैंनें ऐसेहि अरजुन आज पंडवा राखे ॥
जा दिन तू पैदा भयौ मात कुन्ती कें।
हम करि करि पिछली याद दुखन कूँ झीकें ॥
महाराज, महाराज,
सातए दिन की यही कहानी।
कुन्ती माँ ने सुनी, भई जब सुरग लोक बानी ॥

चौपईन कौ एक दूसरौ रूप मथुरा में चतुर्वेदीन की होरी में मिलै है। ई चौपई संगीतमय होरी कौ ही एक रूप है। याकी लोकधुनन कूँ 'तान' कहैं हैं। अलग-अलग अखारेन की अलग-अलग चौपई होय हैं। इन चौपईन में प्राय: श्रीकृष्ण की सनेह लीलान कौ गुनगान कियौ जाय है। सर्व प्रथम श्री गणेश जी की भेंट गाई जाय है—

"मन सुमरौ प्रभु परमेश।
हाँ, पहलें, हाँ पहलें, श्री गणपत गणेश।।"

फिर सामूहिक रूप ते ढप, ढोल और नगारेन की थापन के बीच भूमि भूमि कें नांच कूदिकें गीत गामें हैं—

"आए री श्याम चलो कुंजन में।
होरी खेलें, रस पुंजन में ॥

वास्तव में ब्रजलोक संस्कृति कौ रूप ऐसे लौकिक और अलौकिक तत्वन ते गुथ्यौ भयौ है कै ब्रजलोक जीवन के लौकिक आवरण में हू अलौकिक आनन्द की अनुभूति होय है। ब्रज की होरी, वाकौ हुलास ब्रज की चिदानन्दमय भावना कूँ व्यक्त करै है और होरी की साखी और चौपईन में तौ ब्रज संस्कृति कौ सामूहिक उल्लास अपने राष्ट्रीय परिवेश में ओजपूर्ण ढंग ते व्यक्त होय है। ब्रज में होरी की साखी और चौपई ब्रजग्राम-संस्कृति की सांची प्रतीक हैं। ब्रज के या अनोखे रूप में लोक काव्य, लोक संगीत, लोक धुन, लोकपरिवेश, लोकनृत्य और लोक जीवन कौ ऐसौ अद्भुत समन्वय भयौ है कै उनकौ रूप ही निरालौ बनि गयौ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनसुखा पर एक दृष्टि

(श्री गौरी शङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर')

भारतीय-स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् देश में नव-निर्माण का युग प्रारम्भ हुआ है। यत्र-तत्र सर्वत्र नव-जागरण और नवीन स्पंदन के दृश्य दिखलाई दे रहे हैं जिससे समूचे राष्ट्र में नयी उमंगें और मानव-मानव में नवीन उत्साह आ गया है, जो सर्वथा सामयिक और उचित ही है।

देशवासी अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और साहित्यिक स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए जागरूक हो उठे हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी का जनपदीय कार्यक्रम उन आयोजनाओं का का ही एक अंग है।

भारतवर्ष गाँवों का देश है। हमारे नव्वे प्रतिशत भाई-बहिन गाँवों में ही निवास करते हैं। युग की यह सबसे अधिक आवश्यक माँग है कि गाँवों का स्तर ऊँचा उठाया जाय, ग्राम-वासियों की समस्याओं पर विचार करके सुधारने का यत्न किया जाय और हर संभव साधनों द्वारा गाँवों से दरिद्रता तथा निरक्षरता दूर कर दी जाय।

हमारे साहित्यकार, जो कि युग-परम्परा से अनुकूल क्षेत्र तैयार करने में अग्रगण्य रहे हैं, इस दिशा में यथेष्ट पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं।

ग्राम-वासियों की आर्थिक-स्थिति सुधारने के लिए गाँवों में कृषि तथा सिंचाई की सुविधायें कृषकों को विशेष रूप में देने के लिए हमारी जनप्रिय सरकारें यत्न कर रही हैं। विकास-आयोजनाओं द्वारा जन-जन का ध्यान लघु-उद्योगों को अपनाने की ओर भी खींचा जा रहा है। शिक्षा-प्रसार द्वारा उनके नैतिक-स्तर को भी ऊँचा उठाने की आवश्यकता है। और इस कार्य में हमारे साहित्यकार अपना-अपना योगदान देकर उनकी भरपूर सहायता कर सकते हैं।

राष्ट्र-पिता विश्व बंद्य बापू के रामराज्य की कल्पना का वास्तविक-आधार ग्राम-सुधार समस्या ही थी, उन्होंने जीवन भर अपने संदेशों में सदैव देशवासियों को इस ओर प्रेरित किया था। उन ने बार-बार यही कहा था, "कोई कितनी ही परोपकार या उदार बुद्धि से हमें अच्छी से अच्छी स्वराज्य पद्धति दे, तथापि यदि हमारे मन में उस भाषा के विषय में आदर भाव न हो जिसे हमारी माताएँ बोलती हैं तो हम सच्चे स्वराज्य भोगी कभी न हो सकेंगे।"

बापू का स्पष्ट मत था कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी को सर्वप्रिय बनाने के लिए जन-पदीय-भाषाओं को अपनाया जाय।

लोक-गीत, लोक-कहावतें, लोक-गाथायें और अन्य लोक-साहित्य का उद्धार, प्रचार और और प्रसार नितांत आवश्यक है। गाँवों में बोले जाने वाले शब्द, जो कि हमारी सांस्कृतिक-धमनियों के प्रबल रक्त-कण हैं, प्रचुरता से अपनाकर व्यवहृत किए जाना चाहिए तब ही हमारी राष्ट्र भाषा-हिन्दी सर्वप्रिय और बलवती बन सकेगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ वर्ष पूर्व अवधी के सुकवि बलभद्रप्रसाद दीक्षित 'पढ़ीस' ने अवधी भाष में कवितायें लिखी थीं। 'माधुरी' ने 'पढ़ीस अङ्क' भी प्रकाशित किया था।

बुन्देली-जनपद में देवरी (सागर) के स्व० श्री शिवसहाय चतुर्वेदी ने 'बुन्देलखंड की ग्राम्य-कहानियां', 'पाषाण नगरी' और 'गौने की बिदा' पुस्तकें प्रकाशित की थीं और सम्पादकाचार्य श्री पं० बनारसी दास चतुर्वेदी जी का प्रोत्साहन प्राप्त कर पाक्षिक पत्र 'मधुकर' में कितनी ही बुन्देली कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं। स्व० डा० श्री वासुदेवशरण अग्रवाल और श्री कृष्णानन्द गुप्त ने भी बुन्देली-लोक-साहित्य के प्रचार और प्रसार में भरपूर योग दिया था।

ब्रज-भाषा के लोक साहित्य की ओर डा० सत्येन्द्र ने सर्वप्रथम ध्यान दिया था। 'ब्रज-भारती' द्वारा भी इस सम्बन्ध में समय-समय पर प्रकाश पड़ता रहा किन्तु ग्रन्थ के रूप में श्री सुमन जी कृत 'मनसुखा' ही सबसे पहले प्रकाश में आया है।

श्री सुमन जी ने पुस्तक में, श्री कृष्ण के सुपरिचित सखा मनसुखा को नायक बना कर चतुराई का काम किया है। ब्रज तथा यत्र-तत्र जहाँ-जहाँ भी रास-लीलाओं में श्री कृष्ण का गुण-गान किया जाता है वहाँ प्रत्येक लीला में हास्य और व्यंग के लिये मनसुखा सदैव ही श्री कृष्ण के साथ रहता है और दर्शकों का मनोरंजन किया करता है।

'मनसुखा' में श्री सुमन जी ने क्रान्तिकारी योगीश्वर श्री कृष्ण के सखा को रास लीला और ब्रज-संस्कृति तक ही सीमित नहीं रक्खा उसके द्वारा वर्तमान समस्याओं पर भी भरपूर प्रकाश डाला है। आजकल कृषि को प्रधानता क्यों मिलनी चाहिए, समाज-सुधार में अस्पृश्यता-निवारण क्यों अनिवार्य अङ्ग है, परिवार-नियोजन करना परिवार तथा राष्ट्र को क्यों हितकर है ? वास्तविक देश-भक्ति और देव-पूजा का क्या तात्पर्य है इत्यादि सामयिक-विषयों पर उत्तमता पूर्वक प्रकाश डाला है।

ब्रज-भाषा की माधुरी का आनन्द तो इसमें मिलता ही है साथ ही साथ आधुनिक विषयों की जानकारी भी हो जाती है। मनोविनोद तो पुस्तक में है ही किन्तु विचारकों के लिए गम्भीर विवेचन भी हैं। 'सुमन' जी बधाई के पात्र हैं कि उन ने ब्रजभाषा में प्रथम हास्य रस पूर्ण उपन्यास भेंट करके उसकी श्री वृद्धि की है।

अन्य जनपदीय भाषाओं के साहित्यकारों को श्री सुमन जी का अनुकरण कर अपनी-अपनी भाषाओं में इस प्रकार की ही पुस्तकों को प्रकाशित करने की व्यवस्था करनी चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेदों में प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री और उसका महत्व

(श्री वृन्दावनदास)

वेदों के रचना काल के विषय में मतभेद है। धार्मिक भावना के वशीभूत होकर हमारी मान्यता है कि वेद अनादि हैं। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि वे प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। परन्तु इनका निर्माण काल तो इन्हीं में दिए हुए विवरणों से विदित है। ऐसे अनेक दृष्टांत हैं जिनमें मन्त्रकार मन्त्र के निर्माण के विषय में स्वयं कहता है। वैदिक ऋचाओं में मनुष्यों और घटनाओं का वर्णन है। यदि वेद अनादि काल से चले आते हैं तो आगे पीछे वाले मनुष्य कहाँ से आ गए। घटनाओं का भी तो कालक्रम है इससे स्पष्ट है कि वेदों के निर्माण का भी एक काल है।

ऋग्वेद सबसे पुराना है। वेदों का सविस्तर वर्णन ऋग्वेद से ही प्राप्त होता है। ऋग्वेद में दस मण्डल हैं। इनमें पहला और दसवां मण्डल बड़े हैं। प्रत्येक मण्डल में बहुत से सूक्त हैं और प्रत्येक सूक्त में अनेक ऋचाएं हैं। अधिकतर सूक्तों में १२ से १५ तक ऋचाएं हैं। छोटे-छोटे सूक्त ऐसे भी हैं जिनमें प्रत्येक ४–६ ऋचाओं का ही है। एक सूक्त में ५२ ऋचाएं हैं। सूक्त छन्दों में लिखे गए हैं। इन छन्दों में गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती, वृहता, सतो वहती, द्विपदी, विराज और अन्येष्टि अधिकतर प्रयुक्त हुए हैं। कुछ अन्य प्रकार के छन्द भी हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में १९१ सूक्त हैं। इन १९१ सूक्तों के २५ कवि हैं। इनमें केवल २ कवि एक के और ५ कवि एक अन्य सूक्त के हैं। इस प्रकार मुख्यतया इस मण्डल के १८ कवि ही कहे जा सकते हैं।

इस मण्डल में जितने मन्त्र हैं उनमें कथायें नहीं हैं केवल विनतियां हैं और उन बिनतियों में ही मनुष्यों के नाम आ गए हैं। देवताओं ही के वर्णन हैं। इन वर्णनों में पुनरावृति बहुत है परन्तु प्रत्येक पुनरावृत्ति में कुछ नूतनता है। प्रथम मण्डल के १९१ सूक्तों में पृथक-पृथक देवताओं आदि के विषय में मन्त्र संख्या इस प्रकार है:—

अग्नि ४५, आप्री २, वायु १, मरुत १२, अश्विन १५, इन्द्र ४३, विश्वेदेवास ८, वृहस्पति २, ऋभु ४, वरुण १, पूषन् २, रुद्र १, उषा ६, सूर्य १, सोम २, स्वनय २, विष्णु २, अश्व २, रति १, इन्द्रवरुण १, अग्निमरुत १, इन्द्र अग्नि ३, अग्निसोम १, वायुइन्द्र १, मित्र-वरुण ५, विष्णुइन्द्र १, आकाश पृथ्वी ३, इन्द्रमरुत ३, इन्द्र विश्वेदेवास १, इन्द्रइन्दु १, इन्द्रपर्वत १, वरुण अग्नि सविता १ और सूर्य १।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में मन्त्रकार ऋषियों के अतिरिक्त निम्नलिखित मनुष्यों का नामोल्लेख है:— मनु, नहुष, इला, ययाति पुरूरवस्, दिवोदास, रस, तृसोक, मान्धाता, उग्रदेव, यदु, तुर्वसु, अनु, पुरु, द्रुह्यु, भृगु, वृहद्रय, तुर्वीति, अतिथिग्व, सर्यात, सुश्रव, तुर्वयान, नरय, पुरुवंशी, भरद्वाज, पुरुमीथ, सतवनि, पुरुकुत्स, बन्दन, अथर्वण, दधीचि, ऋजिस्वन, अन्तक, भुज्यु, करकन्ध के पुत्र, वय्य, सुवन्ति, पृश्निमु, परावृज, वशिष्ठ, वभ्र, श्रुतर्य, विस्पला, वसु, कलि, पृथि, सयु, सुदेवी (सुदास की पत्नी), अध्रिगु, सुमर, रितस्तुत, कुत्स, ध्वसान्ति, पुरुशान्ति,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अघास्व, च्यवन, हिरण्यहस्त, सेलाराज, जह्नु, ऋचत्क, सर, विश्वक. विश्नायु, घोषा, नृश, कण्व, स्वनय, मसरसार, आयावस, भाव, पुरुमील्ह, दीर्घतमस्, तृणस्कन्द। इन मनुष्यों के विषय में कोई कथाएं नहीं हैं परन्तु विनतियों में प्रसङ्गवश इनके नाम यत्र-तत्र आये हैं। इनमें से अनेक व्यक्ति पौराणिक कथाओं के पात्र भी हैं। जो नाम वेद और पुराणों में सामान्य हैं वे इतिहास-निर्माण की दृष्टि से एक उत्कृष्ट समन्वय प्रस्तुत करते हैं।

आर्यों के शत्रुओं के अथवा जिनसे आर्यों को लड़ना पड़ा था उनके नाम भी ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में आये हैं यथा वृत्त, वृत्त की माता दनु, पिप्रु, सुश्ना, सम्बर, अर्बुद, नमुचि, करंज, परनय, वगृद, बल, पणि, ९९ वृत्त, व्यंस, अहि, रौहिनि, कुप्व, तुग्र और त्रैतन। इनमें से वंगृद के सौ दुर्ग इन्द्र ने तोड़े थे। ९९ वृत्तों को इन्द्र ने दधीचि की हड्डी से बने वज्र से मारा था। त्रैतन ने दीर्घ तमस के साथ द्वन्द्व युद्ध किया था।

वेदों के मन्त्रों से तत्कालीन सामाजिक स्थिति का वर्णन भी उपलब्ध होता है और ऐतिहासिक तथ्य भी। इस मण्डल में यह बात आई है कि आर्यों के पाँच मुख्य दल थे जिनके प्रधान पुरुष थे यदु, तुर्वसु, अनु, द्रुह्य और पुरु। ये पाँचों ही सम्राट ययाति के पुत्र थे ऐसा पुराणों में लिखा है।

ऋग्वेद के अनार्यों के प्रति कटुभाषा का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद काल में आर्यों को भारत के आदिवासियों से बड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था। आदिमवासियों ने एक-एक इञ्च पर संघर्ष किया था। आर्यों के शत्रुओं से युद्धों का उल्लेख विद्यमान है। आर्यों के शत्रु वेदों को नहीं मानते थे। परन्तु इनकी सभ्यता काफी उन्नत थी। इनके पास सौ-सौ किले होने की बात आई है। ये लोग दास, दस्यु, सिम्यु आदि नामों से कहे जाते थे। सदैव इन लोगों की हार ही दिखाई गई है। सुश्न, पिप्रु, वृत्त, कुयव और सम्बर के दुर्ग थे जिन्हें इन्द्र ने नष्ट किया। कुयव के मरने पर उसकी दोनों स्त्रियों ने विलाप किया परन्तु आर्यों को दया न आई। वे फिर भी यही चाहते थे कि ये स्त्रियाँ नदी में डूबकर मृत्यु का आलिंगन कर लें तो अच्छा है। उनकी कुयव से विकट शत्रुता थी। अनार्य लोग आर्यों को नदी पार करने में बड़ी बाधायें डालते थे। अतः आर्यों को नदी पार करने के लिए जलयान बनाने पड़े। ऋग्वेद में उल्लेख है कि सौ पतवारों के जहाज होते थे।

उस काल में जङ्गलों की बहुतायत थी। अग्नि द्वारा जङ्गलों को जलाकर जङ्गली भूमि को कृषि योग्य बनाये जाने के उल्लेख हैं। इन्द्र दुर्गों के विध्वंस कर्त्ता थे। रथों पर बैठकर युद्ध होते थे। ऋत्विजों को भी लूट का माल मिलता था। सेनाओं का वर्णन है। अश्वमेध यज्ञ, सर्प-दंश पर साबर मन्त्र आदि का उल्लेख है। नदियों का जहाँ कहीं वर्णन आया है वहाँ सतलज, व्यास, रावी, चिनाव, झेलम, सरस्वती और सिन्धु नदियों में से ही किसी न किसी का उल्लेख है। इससे सिद्ध होता है कि वैदिक काल में आर्य लोग पञ्जाब में ही रहते थे। गंगा, यमुना, कृष्णा, नर्मदा आदि का उल्लेख नहीं है।

प्रथम मण्डल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि का उल्लेख नहीं है। असुर शब्द का प्रयोग देवताओं के लिए किया गया है। आर्य और दस्यु दो ही प्रकार की जातियों का वर्णन है।

ऋग्वेद के प्रथम मंडल के बाद उसके अन्य मंडलों पर भी संक्षिप्त रूप से विचार करना समीचीन है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऋग्वेद का दूसरा मण्डल

इसमें प्रधानतया इन्द्र की विजयों का वर्णन है। इससे विदित होता है कि इस मण्डल के काल में आर्यों के राक्षसों, असुरों और दस्युओं से अनेक युद्ध हुए। अनेक दुर्गों के ध्वस्त किये जाने के वर्णन हैं। इस मण्डल के मन्त्रकार हैं गृत्समंत, सोमाहुत और कूर्म। कूर्म गृत्समत के पुत्र थे।

तीसरा मण्डल

यह विश्वामित्र का मण्डल है। इनके अतिरिक्त कुछ सूक्त अन्य ऋषियों के भी हैं। जैसे ऋषभ के २, उत्कील २, कठ २, गाथिन् ४ तथा देवश्रमण, देवव्रत और प्रजापति का एक-एक। ये ऋषिगण विश्वामित्र के ही वंशज पुत्र पौत्रादि थे। विश्वामित्र और वसिष्ठ की शत्रुता, जमदग्नि का विश्वामित्र को सहायता देना, विश्वामित्र का सुदास के साथ रहना, विश्वामित्र के मन्त्रों से भरतों के वंश को प्रसन्नता होगी आदि वर्णन इस मण्डल में आये हैं। इस मण्डल के विश्वामित्र और जमदग्नि सम्बन्धी उल्लेखों से पौराणिक गाथाओं की पुष्टि होती है।

चौथा मण्डल

इस मण्डल के ऋषि गोतम पुत्र बामदेव हैं। इसमें ५८ सूक्त हैं। इसमें त्रसदस्यु, पुरमील्ह और अजमील्ह ने भी सूक्त बनाये हैं। अग्नि और इन्द्र की स्तुति है। इन्द्र ने मृगय और पिप्रु के ५०००० सहायकों को मौत के घाट उतारा। सरयू के किनारे अर्न और चित्ररथ को भी मारा। इन्द्र ने अहि को मार कर सातों नदियाँ खोल दीं। इस मण्डल में राजा पुरु और त्रसदस्यु का उल्लेख है।

पाँचवाँ मण्डल

इसके सूक्तों की संख्या ८७ है। इस मण्डल के सूक्तकार अत्रिवंशी ऋषि गण हैं। इस मण्डल में अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेवस, मरुत, मित्रावरुण और आश्विन का वर्णन है। अग्नि ने शुनःशेप की रक्षा की। पुराणों में सूर्यवंशी राजा हरिश्चन्द्र के काल में शुनःशेप की कथा का उल्लेख है। पृथ्वी घूमती है यह इस मण्डल में लिखा है। पुरुमीढ़ के विषय में लिखा है कि ये एक ऋषि थे। इस मण्डल में सुचद्रथ के पुत्र सुनीथ और भारतों का वर्णन आया है। त्रसदस्यु कई राजाओं के लिए आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कुछ राजाओं की उपाधि थी। अत्रि उसिज के पुत्र कक्षीवान के पुरोहित थे। परुष्णी (रावी) नदी और उसके किनारे रहने वाले पारावत लोगों का वर्णन है। काबुल नदी उस समय कुम्भी कहलाती थी। सरजू नदी का भी नाम आया है परन्तु उस समय पंजाब में भी सरजू नाम की नदी थी।

छठा मण्डल

इस मण्डल के ऋषि मुख्यतया भरद्वाज हैं। कुछ अन्य ऋषि भी इस मण्डल के सूक्तकार है। सूक्तों की संख्या ७५ है जिनमें ४३ अकेले भरद्वाज ने गाये हैं। इसमें पुनः इन्द्र, अग्नि, विश्वेदेवस, पूषन, उषस् आदि की स्तुतियाँ हैं। इस मण्डल में भी प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री है। एक सूक्त में गौओं का वर्णन है। उसमें कहा गया है कि वे अवध्य हैं और भग, सोम और इन्द्र के सदृश हैं। अश्न के विषय में कहा गया है कि वह एक राक्षस था। अथर्वण ने अग्नि को बाहर निकाला और उनके पुत्र दधीचि ने अग्नि प्रज्वलित की। दिवोदास का दूसरा नाम तूर्यवान है। कुत्स, आयु और अतिथिग्व इन्द्र से पराजित हुए। इन्द्र ने नमि और पुरुकुत्स की रक्षा की,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनु को दस्युओं से अधिक बलशाली बनाया तथा नहुष और दिवोदास को बल प्रदान किया। इस मण्डल में गंगातट का उल्लेख है तथा राजात्रसी, दक्ष, द्रुह्यु और पुरु के नाम आये हैं। शम्बर के दुर्गों का जिक्र है। नहुष वंशी पराक्रमी कहे गये हैं। प्रस्तोक दिवो दास, अतिथिग्व, आश्वथ और सृंजय पुत्र एक ही व्यक्ति के नाम कहे गये हैं। सरस्वती और पंजाब की अन्य नदियों का उल्लेख है।

सातवाँ मण्डल

इस मण्डल में १०४ सूक्त हैं इनमें २६ मैत्रा वरुणि ऋषि के तथा शेष वशिष्ठ के हैं। इस मण्डल में सुदास की महिमा बहुत गाई गई है।

जरूथ ने अग्नि को जलाया, नहुष वंशियों को हरा कर उन्हें सुदास को कर देने को बाध्य किया। सुदास की अनेक विजयों का इस मण्डल में उल्लेख है। सुदास इक्ष्वाकु वंश में ५२ वीं पीढ़ी पर अयोध्या के राजा थे। इस मण्डल में तुर्वसु, परोदास, भृगु और द्रुह्युगण को सुदास का बशवर्ती लिखा है। पक्थ, भलान, अलिन, शिव, निशात, लोगों ने एका करके सुदास से युद्ध ठाना परन्तु पराजित हुए और रणक्षेत्र को छोड़कर भागे। नहर निकालने के प्रयास में सुदास के शत्रु नदी में डूब गये। डूबने वालों में द्रुह्यु वंशी भी थे। भृगु, द्रुह्यु, तुर्वसु आदि ने परुष्णी नदी को पार कर उस नदी के दो भाग करने चाहे परन्तु सुदास ने अचानक आक्रमण कर दिया और उनमें से अधिकांश नदी में डूब गये। सुदास की आर्यों ने मदद की। अनु को हरा कर उसका राज्य त्रस्यु को दिया। अनु और द्रुह्यु वंशियों के छः हजार योद्धा और ६६ वीर पुरुष मारे गये। युध्यामधि की मृत्यु सुदास के हाथ से रणक्षेत्र में हुई। दश राजाओं के युद्ध में सुदास की इन्द्र ने सहायता की। राजा वर्चिन के युद्ध में एक लाख आदमी मौत के घाट उतार दिये गये। पराशर वशिष्ठ आदि ऋषियों को सुदास ने प्रभूत दक्षिणा दी। अनेक राजाओं ने सुदास को कर दिया। सुदास के पिता दिवोदास थे। दस राजा जो सुदास से हारे थे वे पूजन न करते थे। नहुष और सरस्वती के नाम भी आये हैं। अनार्यों को राक्षस, यातुधान, जादूगर, बेईमान आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है।

सुदास के युद्ध के समय पुरु वंशी सरस्वती के दोनों तटों पर रहते थे। सुदास अयोध्या के राजा थे। उनके पिता का नाम दिवोदास था। पुराणों में सुदास के पिता का नाम सर्वकाम लिखा है। प्रतीत होता है सत्यकाम दिवोदास का उपनाम या विरुद होगा।

आठवाँ मण्डल

इस मण्डल में ९२ सूक्त हैं। इसके बहुत से ऋषि हैं। इनके अतिरिक्त बालखिल्यों के ११ सूक्त हैं। कुल मिलाकर १०३ सूक्त हैं। इस मण्डल में गाय को निष्पापिनी कहा है। उसको कष्ट न देने को कहा गया है। इस मण्डल में आसंग, विभिन्दु, पाकस्थामा, कुरुंग, कशु, तिरिन्दिर, त्रसदस्यु, चित्र, पृथुश्रवा, श्रुतर्वण आदि के लिए कहा गया है कि वे बड़े उदार थे। राजा परमज्या, निन्दिताश्व, प्रपथी, आसंगपुत्र स्वद्रय और यदुपुत्र बड़े उदार थे। आसग प्लयोग के पुत्र थे। ३३ देवताओं के नाम का उल्लेख है। युवनाश्व के पुत्र मान्धाता का नाम आया है। राजा विभिन्दु ने यज्ञ किया। जिन भार्गव लोगों का सुदास से युद्ध हुआ वे इन्हीं भृगुवंशी राजाओं में से कोई होंगे। वेदों में परशुराम का नाम नहीं आया है। तुर्वसु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और यह प्रशंसा के योग्य हैं। राजा कुरुंग का नाम आया है। तुग्रपुत्र भुज्यु को अश्विनीकुमारों ने बचाया। चेदि लोग उदार थे। नहुष वंशियों के पास अच्छे घोड़े थे। कुकुर लोग यादवों के समान थे। वश और दशव्रज की त्रसदस्यु ने मदद की। अथर्वण एक ऋषि थे। कक्षीवन्त और दीर्घतमा के भी नाम आये हैं। वेन पुत्र पृथु का वर्णन है। आयु पुरूरवा के पुत्र थे। प्रदाकु साम यज्ञ का कर्ता था। क्रवि ने युद्ध किया था। चिनाव नदी के चन्द्रभागा और अक्सिनी आदि नाम आये हैं। पक्थ, अध्रिव, बभ्रु और वित्र राजा थे। अगस्त्य एक ऋषि थे। गोमती नदी का नाम आया है। दक्ष के दो पुत्रों का वर्णन है। उक्षतयान, हरयान और सुषामन को एक-एक घोड़ा मिला।

श्रुतर्वण ने रावी नदी के किनारे यज्ञ किया। इस मण्डल में जहाज का वर्णन कई स्थानों पर आया है। इस मण्डल में इन्द्र को कई स्थानों पर राम कहा है। पृथ्वी के दस देश कहे गये हैं। २७ वें सूक्त से ३२ वें सूक्त तक पाँच सूक्त वैवस्वत मनु विरचित हैं। मनुओं के वर्णन पौराणिक वर्णनों के अनुकूल हैं।

नवाँ मण्डल

इसमें ११४ सूक्त हैं। इस मण्डल के मुख्य ऋषि हैं, मधुच्छंदा, मेधातिथि, शुनःशेप, हिरण्यस्तूप, असित, देवल, विन्दु, गौतम, रहूगण, कवि, उचथ्य, अवत्सार, काश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि, पवित्र, रेणु, ऋषभ, हरिमन्त, पवित्र, कक्षीवान्, वसु, प्रजापति, वेन, वसिष्ठ, कण्व, शक्ति, पराशर, अम्बरीष, ऋजिश्व, ययाति, नहुष, मनु, नारद, शिखण्डी, अग्नि, चक्षु आदि। इनमें अम्बरीष, ययाति, मनु और नहुष की विशेषता समझी जानी चाहिये। इस मण्डल की ऋचाएं लगभग सभी सोमपवमान के विषय में हैं। इस मण्डल में मुख्य उल्लेख इस प्रकार आये हैं।

ध्वस्र और पुरुषान्ति राजा दानी थे। सोमपवमान ने दिवोदास के लिए तुर्वश और शम्बर को मारा। इस मण्डल में जमदग्नि वंशियों का वर्णन बहुतायत से है। उत्तर पश्चिम में जो अनार्य जाति रहती थी उसका नाम आर्जीक था। उशना को अत्यधिक बुद्धिमान कहा गया है। इस मण्डल में सिंह, धनुष और सप्तर्षि के वर्णन आये हैं। मख नाम के एक व्यक्ति का उल्लेख है जो राक्षस था। दधीचि अथर्वण के पुत्र थे। अथर्वण ने सबसे पहिले अग्नि पाई और उन्होंने उसे सोमपान कराया। ब्राह्मण का काम है कि पूजा करने वालों को ढूंढे। चाक्षुष मनु के वेदर्षि होने से यह सिद्ध है कि चाक्षुष मन्वन्तर वैदिक काल में ही हुआ था।

दसवाँ मण्डल

इस मण्डल के १६१ सूक्त हैं। लगभग इतने ही इन सूक्तों के ऋषिगण हैं। कितने ही राजागण जी इनमें सूक्तकार हैं। जिन राजाओं के नाम आये हैं उनमें विवस्वान्, गय, अदिति, पुरूरवा, देवापि, अप्रतिरथ, राम, लव, कुशिक, सुदास, मान्धाता, पृथुकेतु, ऋषभ, चाक्षुष, ध्रुव, शिवि, और जय प्रमुख हैं। ऋषियों में कई देवताओं के नाम भी हैं। सम्भव है अग्नि, प्रजापति और विश्वकर्मा नाम के मनुष्य भी हों। ये नाम ऋषियों में लिखे हैं।

मन्त्रकारों में राम और लव के नामों के सम्मिलित होने से कुछ इतिहासकारों का मत तो यह है कि इक्ष्वाकु वंशी भगवान राम और उनके पुत्र लव के अतिरिक्त ये दोनों महानुभाव उन्हीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के नाम के अन्य ऋषियुगल हैं परन्तु कुछ अन्य इतिहासकारों का मत है कि ऋग्वेद का निर्माण एक लम्बी प्रक्रिया है जो शताब्दियों तक चलती रही थी और समय समय पर उसमें विषय वस्तु का समावेश होता रहा था। सम्भव है राम के समय के कुछ मन्त्र भी उसमें पीछे सम्मिलित किये गये हों।

इस मण्डल में देवताओं की स्तुतियों के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी सूक्त हैं। ये विषय ऐसे हैं जिनसे तत्कालीन सामाजिक दशा का अध्ययन बखूबी हो सकता है। उदाहरण के लिए जिन विषयों पर सूक्त हैं वे विषय हैं :—जल, पितृ, मृत्यु, गाय, द्यूत, कृषि, जीवात्मा, वनौषधि, सुबन्धु का पुनर्जीवन, सावर्ण्य की उदारता, सूर्या के विवाह पर आशीर्वाद, इन्द्र के अश्व, अरण्य, श्रद्धा, नव जीवन, दुर्भाग्य से रक्षा, गर्भपात और दुःस्वप्न।

यह मण्डल भी दस्युओं के अस्तित्व की चर्चा करता है। दस्युओं के विषय में कहा गया है कि वे अन्य धर्मावलम्बी हैं और यज्ञों को नहीं करते।

इस मण्डल के कुछ अन्य इतिहास-सूत्र इस प्रकार हैं। दुहश्शासु एक शत्रु राजा था जिसने त्रसदस्यु के पौत्र कुरुश्रवण को परास्त किया था। दिवोदास से युद्ध में गांगव परास्त हुए और मारे गये। श्रुतर्वण ने मृगय और सास्व को पराजित किया। मध्यदेश में उशीनर रहते थे। इक्ष्वाकु के राजा होने और मनु के दानी होने का उल्लेख है। ययाति नहुष के पुत्र थे। पहिले मण्डलों में तो पंजाब की नदियों का ही उल्लेख है परन्तु दसवें मण्डल में गंगा और यमुना के भी नाम आये हैं। पुरूरवा की स्त्री उर्वशी थी और राजा उससे बहुत प्रेम करते थे यह वृत्त आया है। उर्वशी के विषय में कहा गया है कि उसका प्रेम राजा के प्रति उतना न था। शान्तनु को देवापि ने यज्ञ कराया। वैदिक काल के शान्तनु महाभारत काल के शान्तनु से भिन्न हैं कारण वैदिक काल के शान्तनु के पिता का नाम ऋसत्सेन लिखा है और महाभारतकालीन शान्तनु और देवापि दोनों भाई थे जिनके पिता का नाम प्रतीप था।

इस मण्डल में जल की महिमा गाई गई है। उसे शक्तिप्रदायक, पुत्रोत्पादक और स्वास्थ्य-कारक कहा गया है। यह भी आया है कि पानी में सब ओषधियों का सार है। ऋग्वेद के ऋषियों का आयुर्वेदिक ज्ञान बहुत ऊंचा था।

ऋग्वेद में वर्णित घटनाऐं महान् ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध कराती हैं। यद्यपि इनसे क्रमबद्ध इतिहास लिखा जाना सम्भव नहीं है तथापि इनसे पुराणों में उपलब्ध सामग्री की पुष्टि होती है। वेद और पुराणों की ऐतिहासिक सामग्री को समन्वित करके शुद्ध इतिहास का निर्माण सम्भव है। कुछ विद्वानों ने इसका प्रयास किया है परन्तु जितनी अधिक गवेषणा की जायगी उतने ही उसके शुभ परिणाम निकलेंगे।

सामवेद

इसके दो भाग हैं। पहिले में ६ काण्ड और दूसरे में ९ हैं। एक एक काण्ड की कई कई काण्डिकाऐं भी हैं जिन्हें सूक्त कह सकते हैं। सामवेद में कुल ४५९ सूक्त हैं। कुछ को छोड़ कर सभी ऋग्वेद से लिये गये हैं।

सामवेद में विशेषतया सोमपवमान का वर्णन है। इन्द्र, अग्नि, उषा, आश्विन के भी कुछ वर्णन हैं। जल, वात और वेन के विषय में भी कहा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस वेद की कुछ ऋचाऐं वैवस्वत मनु की भी हैं। जिन दधीचि की अस्थियों से वज्र बनाया गया था वे वेदों में अथर्वण ऋषि के पुत्र और पुराणों में एक राजा के रूप में वर्णित हैं। कुछ ऋचाऐं नहुष, ययाति, मनु, अम्बरीष की भी हैं। सोमपवमान के कारण अथवा उस ही की कृपा से दिवोदास ने शम्बर यदु और तुर्वश को पराजित किया।

ईश्वर का वर्णन विश्वकर्मा, स्कन्द प्रजापति और पुरुष के नाम से आया है। कहीं कहीं इन्द्र, अग्नि और सूर्य से भी ईश्वर का भाव प्रगट किया गया है। पवीरु रुसमों के नायक थे। सुनीथ के पिता का नाम सुचद्रथ था। मनुष्य का जीवन १०० वर्ष का कहा गया है परन्तु कहीं कहीं उसके १२० वर्ष तक होने के उल्लेख हैं।

यजुर्वेद

यजुर्वेद में यज्ञ सम्बन्धी ज्ञान की विशेषता है। प्रारम्भ मे ऋग्वेद सामवेद, और यजुर्वेद इन तीन वेदों की ही गणना थी। यजुर्वेद ऋग्वेद से १००, २०० वर्ष पीछे तक बना प्रतीत होता है। इसके दो विभाग हैं जिन्हें शुक्ल और कृष्ण कहते हैं। इसके ४० अध्याय और लगभग २००० छन्द हैं। कुछ इतिहासकार चारों वेदों की रचना लगभग ४००० वर्ष संवत् पूर्व से शुरू हुई मानते हैं जो लगभग १५०० वर्ष तक चलती रही और लगभग २५०० वर्ष संवत् पूर्व में समाप्त हुई।

इस वेद का बहुत सा भाग ऋग्वेद से लिया गया है। इसका कुछ भाग अथर्व से मिलता है। यदि ऋक् की समाप्ति २५०० वर्ष सम्वत् पूर्व समझी जाय तो यजुर्वेद की २३०० वर्ष सम्वत् पूर्व और अथर्ववेद की २००० वर्ष सम्वत् पूर्व समझनी चाहिये।

यज्ञ आर्यों में आरम्भ से ही होते रहे हैं अतः यजुर्वेद तो प्राचीन ही है। यजुर्वेद में विभिन्न प्रकार के यज्ञ और उनकी विधियो के वर्णन हैं। नवेन्दु, पूर्णेन्दु, अग्निहोत्र, सोमयज्ञ, वाजिपेय, राजसूय आदि के वर्णन पहिले दस अध्यायों मे हैं। ११ से १८ वे अध्याय तक वेदियों के निर्माण के विधान हैं। सौत्रामणि यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, चान्द्र यज्ञ और नरमेध यज्ञों के विधान १९ वें से लेकर ३१ वें अध्याय तक हैं। नरमेध यज्ञ से अभिप्राय नर की बलि देने का नहीं है अपितु एक पुतले की बलि देने से नर-बलि की पूर्ति समझी जाती है। ३२ से लेकर ३५ वें अध्याय तक सर्व मेध और पितृ यज्ञ के वर्णन है। ३६ वे अध्याय में दीर्घ जीवन प्राप्ति के लिए देवताओं की स्तुतियाँ हैं। ३६ से ३९ वें अध्याय तक प्रवर्ग का विधान है। ४० वाँ अध्याय एक उपनिषद् है जिसमें ईश्वर का वर्णन है। यजुर्वेद की ऋचाऐं कुछ ऋग्वेद से ग्रहीत हैं और कुछ अथर्व से।

यजुर्वेद के अन्तिम पाँच अध्याय तो दधीचि के हैं और शेष अधिकतर देवताओं के और और कुछ ऋषियों के है, ऐसा प्रतीत होता है कि यज्ञों और उनके विधानों की महिमा बढ़ाने के अभिप्राय से उनको मनुष्यकृत की अपेक्षा देवकृत बताना अधिक गौरवमय समझा गया। जिन देवताओं के सूक्त यजुर्वेद में हैं उनके नाम हैं प्रजापति, परमेष्ठी, नारायण, पुरुष, स्वयम्भू, ब्रह्म, वृहस्पति, इन्द्र, वरुण, अश्विनी, वशिष्ट, विश्वामित्र, वामदेव, मधुच्छन्दा, मेधातिथि, सूर्य, याज्ञवल्क्य आदि। इनमें कुछ ऋषिगण हैं।

इस वेद में ऋक् और साम दोनों वेदों का उल्लेख आया है। विष्णु की महिमा ऋक् की अपेक्षा अधिक गाई गई है। रुद्र की भी महिमा है। रुद्र को शिवशङ्कर महादेव के नाम से सम्बोधित किया गया है। आयु, पुरूरवा और राजा शर्याति के नाम से आये हैं। शतानीक और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुरमि का भी वर्णन है । अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका के भी नाम आये हैं परन्तु सन्दर्भ से ये महाभारत वाली पात्राऐं प्रतीत नहीं होतीं ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों के नाम आये हैं और इनके लिए कहा गया है इन्हें प्रकाश प्राप्त हो । सुभद्रा कम्पिला के राजा की स्त्री थी । मागध का नाम आया है जिससे प्रतीत होता है कि मगध उस समय तक अस्तित्व में आ चुका था । आर्य और दास दोनों ही ईश्वर के हैं । इससे प्रतीत होता है कि ऋग्वेद काल की अपेक्षा अब दासों के प्रति सहिष्णुता का भाव आने लगा था । सातों नदियों और सप्तर्षियों का भी उल्लेख है ।

अथर्व वेद

अथर्व वेद में जहाँ ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है वहाँ उसमें मन्त्रादि का भी वर्णन है । उससे आर्यों की दिनोंदिन विकासमान सभ्यता का भी पता चलता है । सूर्य, इन्द्र और अग्नि में ईश्वर का भाव देखने की प्रवृत्ति का उल्लेख है । गाय की महिमा बढ़ी है । गाय की पूँछ और खुर भी पूजे जाने लगे । स्त्री के लिए लिखा है कि वह गृह की स्वामिनी है, उसका पति पर ही नहीं सास, श्वसुर और पति के भाइयों पर भी स्नेहाधिकार है । वह घर की सम्पत्ति की रक्षक कही गई है । स्त्रियों की जो स्थिति अथर्व वेद में वर्णित है वह हिन्दुओं में आज तक चली आती है ।

ऋग्वेद में प्राकृतिक शक्तियों की स्तुतियां हैं तो अथर्व वेद में जादू टौना मन्त्र आदि का उल्लेख है । अथर्व वेद आंगिरस वंशी ऋषियों द्वारा भाषित है, इसी कारण अथर्वाङ्गिरस अथवा भृग्वाङ्गिरस भी कहा जाता है । अथर्वण एक ऋषि भी हो गये हैं जिन्होंने लकड़ी की रगड़ से अग्नि उत्पन्न की थी । ऋग्वेद में ब्राह्मणों की वह महिमा नहीं थी जो अथर्व वेद में निश्चित हुई । आयुर्वेद की उत्पत्ति भी अथर्व वेद से हुई है । ऋग्वेद में लिखा है कि अंगिरस वंशी मायावी थे । चूँकि अथर्व के ऋषि अंगिरस आदि के परिवार के हैं अतः मन्त्रादि की विद्यमानता उन ऋषियों की तद्विषयक विशेषज्ञता के कारण ही समझनी चाहिये ।

अथर्व वेद में २० काण्ड ७६० सूक्त और ६०१५ छन्द हैं । झाड़ने फूँकने के मन्त्र, द्यूत में जीत किस प्रकार हों उसके भी मन्त्र हैं । जान पड़ता है आर्यों की सभ्यता में द्यूत क्रीड़ा मनोरंजन का बहुत पुराना साधन है । द्यूतक्रीड़ा भले ही निन्द्य हो परन्तु युधिष्ठिर नल आदि का द्यूतक्रीड़ा के परिणामस्वरूप सर्वस्व त्याग वचन निर्वाह के महान् आदर्श की ओर इङ्गित करता है ।

कौटुम्बिक जीवन में ऐक्य और मैत्री पूर्वक रहने के सूक्त भी हैं । ब्राह्मणों की स्थिति में सम्मान भाव व श्रेष्ठता इसी सूक्त से प्रकट होती है जिसमें कहा गया है कि यदि किसी स्त्री को दस अब्राह्मण चाहें और उसी को एक ब्राह्मण चाहे तो वह ब्राह्मण की होगी ।

ज्वर के लिए आह्वान किया गया है कि वह भुज्यु वनों, बाल्हीकों, महावृषों, आंगों और मागधों में जाकर प्रवेश करे । इससे प्रतीत होता है कि अग मगध देशों का अस्तित्व उस समय था और उनमें अनार्य रहते थे । अथर्व वेद में ब्राह्मण, गाय और ऋषि की महिमा गाई गई है । इनको विशेष सम्मान के साथ स्मरण किया गया है ।

इन्द्र द्वारा अनेक राक्षसों के मारे जाने का उल्लेख है । इन्द्र ने दधीचि की हड्डी से बने अस्त्र से ९९ वृत्तों को मारा था ऐसा वर्णन है । सौभरि ऋषि का नाम आया है । विष्णु पुराण में सौभरि ऋषि के विषय में बड़ी लम्बी चौड़ी कथाऐं हैं । महाराज मान्धाता की सभी कन्याओं का विवाह सौभरि ऋषि से हुआ था ।

—:*:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल की स्मृति

(श्री रघुनाथ गुप्त अध्यक्ष चम्पारन शोध संस्थान)

विद्वत्ता को परिभाषित करने वाले भारतीय वाङ्गमय के अन्यतम विद्वान् डा० वासुदेव शरण अग्रवाल जीवन पर्यन्त, भारतीय इतिहास के आलोक में संस्कृति एवं सभ्यता के विकास की वैज्ञानिक रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए अपनी रचनाओं से मां भारती की श्री वृद्धि के साथ ही साथ समाज को अमृतवाणी प्रदान करते रहे।

डा० अग्रवाल ने विषयों का सूक्ष्मतम अध्ययन करके नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन जिस ढङ्ग से किया है, अन्यों के द्वारा वह सम्भव नहीं। विस्तृत क्षेत्रों में कार्य करने वाले डा० अग्रवाल की जिज्ञासा शक्ति अत्यन्त ही प्रबल थी जो निःसङ्कोच मामूली से मामूली उपकरणों द्वारा अपने को लाभान्वित करने में जरा भी हिचक महसूस नहीं करती थी।

डा० अग्रवाल को खोकर भारतीय वाङ्गमय ने अपने उस अमृत-पुत्र को खोया है, जिसकी पूर्त्ति सम्भव नहीं।

अप्रैल १९६४ में भोजपुरी-संसद् वाराणसी द्वारा आयोजित भोजपुरी सांस्कृतिक सम्मेलन में भाग लेने वाराणसी गया था। १२ अप्रैल को प्रातःकाल लगभग १० बजे डा० अग्रवाल से मिलने उनके काशी हिन्दू विश्व विद्यालय स्थित निवास स्थान पर गया। देखा डा० साहब के सर पर पट्टी बँधी हुई है और वे सोफे पर लेटे अपने आदमी से कुछ लिखा रहे हैं। ज्ञात हुआ कि दुर्बलता वश आज प्रातःकाल बाथ रूम में गिर गये थे जिसके कारण उनका सर फूट गया था। जाने पर उन्होंने यथोचित सत्कार करके बिठाया तथा लस्सी से स्वागत किया। पूछा कि काशी कैसे आना हुआ तो उन्हें बता दिया कि भोजपुरी साँस्कृतिक सम्मेलन में भाग लेने आया हूँ। डा० साहब ने मुझसे भोजपुरी कविता सुनाने का आग्रह कर दिया; यद्यपि कविताएँ लिखता अवश्य हूँ पर आयोजनों में पढ़ता नहीं, लेकिन उनके अति आग्रह होने पर सुनाना ही पड़ा। मेरी कविताओं को सुन कर डा० साहब ने कहा कि यदि इस तरह की रचनायें भोजपुरी में आने लगे तो भोजपुरी का साहित्य अवश्य ही उच्चकोटि का साहित्य हो जायगा। डा० साहब से लगभग एक घण्टे तक बातें होती रहीं। बातचीत के क्रम में मेरे मुँह से एक भोजपुरी का मुहावरा निकल गया (जो भोजपुरी का भाषा भाषी होने के कारण मुँह से निकल आया करता है।) डा० अग्रवाल ने तुरन्त उठकर उसे नोट कर लिया जो उन्हें काफी पसन्द आया था। यह थी डा० अग्रवाल की जिज्ञासा शक्ति; जिसने मेरे जैसे आदमी के मुँह से सुनकर पीड़ा में भी उन्हें लिखने को बाध्य कर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुस्तक समीक्षा

(डा० रामस्वरूप आर्य एम. ए., पी-एच० डी)

कर्म—सिद्धान्त : एक अध्ययन (संक्षिप्त संस्करण)
मूल लेखिका—डा० श्रीमती एनीबेसेंट
अनुवादिका—हिंदी—श्रीमती माधुरी विहारी एम० ए०
प्रकाशक—इंडियन बुक शौप, थियौसोफीकल सोसाइटी, वाराणसी—१
पृ० सं०—७२ मूल्य एक रुपया

प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका हैं स्वनामधन्या श्रीमती एनीबेसेंट। इस पुस्तक में ३३ शीर्षकों के अन्तर्गत 'कर्म-सिद्धान्त' की विस्तृत वैज्ञानिक विवेचना की गई है। इस विवेचना में प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों ही मान्यताओं का विश्लेषण किया गया है। इस विश्लेषण में हमको दार्शनिक की अन्तर्द ष्टि एवं वैज्ञानिक की तार्किकता दोनों का समन्वय दिखाई देता है। परिणामतः जिज्ञासु अध्येता इस विवेचन के द्वारा पूर्ण सन्तुष्टि का अनुभव करता है।

सामूहिक कर्म की चर्चा एक अभिनव दृष्टिकोण है। इसकी कसौटी पर लेखिका ने भारतवर्ष की पराधीनता, फ्रांस की क्रान्ति सदृश विश्व इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं का आकलन किया है। यथा—लुई चौदहवें तथा लुई पन्द्रहवें के समय बरती गयी अत्यधिक स्वार्थपरता तथा नृशंसता के कारण फ्रांसीसी क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ जिसके फलस्वरूप राज्यशाही और कुलीनता का सत्यानाश होगया।

अनुवादिका ने अक्षर-अनुवाद की अपेक्षा भावानुवाद पर अधिक दृष्टि रखी है। इसी कारण पुस्तक की भाषा सरस, सरल एवं रोचक है तथा उसमें मूल ग्रन्थ का आनन्द प्राप्त होता है।

पुस्तक की छपाई एवं सज्जा इण्डियन बुक शाप वाराणसी के अनुरूप है पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया रखा गया है, जिसमें पुस्तक सर्व साधारण को सहज उपलब्ध हो सके। जीवन और जगत के प्रति रुचि रखने वाले प्रत्येक जिज्ञासु के लिए इसका अध्ययन लाभकारी होना चाहिए।

अध्यात्म-ज्योति, वर्ष २ : अंक ३ (मार्च १९६९ ई०)

सम्पादक—डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी एम. ए., डी. लिट्।

'अध्यात्म-ज्योति' उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, राजस्थान तथा मध्य-प्रदेश की थिओसिफ़िकल सोसाइटी की संयुक्त मुखपत्रिका है। थिओसिफिकल सोसाइटी का प्रमुख उद्देश्य है—जाति, धर्म, वर्ण अथवा नर-नारी का भेद किए बिना विश्वबन्धुत्व का एक सक्रिय केन्द्र स्थापित करना। इस पत्रिका के अधिकांश लेख इस उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। इनमें मानव-धर्म की अच्छी व्याख्या की गई है। डा० जे० पी० अवस्थी ने 'हिन्दू प्रार्थना का महान दार्शनिक सत्य' लेख में पुरुष सूक्त पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। पत्रिका, कलेवर में लघु होते हुए भी उपयोगी लेखों से भरपूर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शोकांजलि

रचयिता स्व० श्रीजयकृष्ण चतुर्वेदी; प्रकाशक, चतुर्वेदी प्रकाशन समिति, कमतरी आगरा
प्राप्ति स्थान—भारतीय पुस्तक भण्डार, बेगम बाजार, हैदराबाद (आ० प्र०)
मूल्य एक रुपया।

शोकांजलि अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि ग्रे की सुन्दरतम कविता 'एलिजी' का मूल-सहित हिन्दी पद्यानुवाद है, जिसे कवि श्री जयकृष्ण चतुर्वेदी ने सन् १६८८ में रचा था। पुस्तक में हमारे कवि की कतिपय मौलिक कवितायें भी संग्रहीत हैं। दैवदुर्विपाक से जयकृष्णजी का निधन २३ वर्ष की अल्प आयु में सन् १६२४ में होगया। उनकी प्रतिभा की उठान, उद्यमशीलता और देशभक्ति की लगन को देखते हुए यह सहज ही कहा जा सकता है कि यदि वे उम्र पाते और उन्हें यथोचित अवसर मिलता तो वे निश्चय ही एक अत्युत्तम कवि तथा सच्चे जनप्रिय लोकसेवक होते। पुस्तक में उनके मित्र श्री ओंकारनाथ पाण्डेय ने उनकी बड़ी मार्मिक संक्षिप्त जीवनी लिखी है, जिसे पढ़ कर हृदय में एक टीस होती है कि देशप्रेम के नशे में उन्मत्त इस होनहार तरुण कलाकार को भगवान् ने कुछ अधिक आयु क्यों नहीं बख्शी ! पुस्तक में सहृदय शिरोमणि पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने प्राक्कथन लिखा है, जिसमें उन्होंने जयकृष्णजी की गणना उन वीर और साहसी सैनिकों में की है जो अपने सेनापति की एक आज्ञा पर अपने शरीरों से खाई पाट कर दुर्गम दुर्ग पर आक्रमण करने का मार्ग प्रस्तुत कर देते हैं और विजय प्राप्त करने का सुयश अपने सेनापति को दिलाकर स्वयं अज्ञात बने रहते हैं। जयकृष्णजी की प्रस्तुत साहित्यिक कृति उनके स्वर्गवास के ४५ वर्ष बाद उनके मित्रों की कृपा से अब प्रकाश में आई है, अन्यथा यह भी अज्ञात ही रहती। अंग्रेजी कविता का शब्दशः (literal) पद्यानुवाद करना अत्यन्त कठिन है, परन्तु जयकृष्णजी ने वही किया है, और अच्छा किया है। तिस पर तारीफ यह कि यह अनुवाद उनका प्रथम प्रयास है। उन्होंने पादटिप्पणी में कठिन शब्दों के अर्थ दे दिए हैं और साथ ही मूल पदों के भाव तथा आशय समझा दिए हैं। परिशिष्टों में ग्रे की जीवनी और कवितागत ऐतिहासिक व्यक्तियों के परिचय भी दे दिए हैं। स्थानाभाव के कारण अनुवाद का केवल एक नमूना मूल सहित यहाँ दिया जा रहा है—

Full many a gem of purest ray serene
The dark unfathomed caves of ocean bear;
Full many a flower is born to blush unseen
And waste its sweetness in the desert air.

बहु रत्न सुन्दर प्रभा जिनकी शुद्धतम तेजोधरा
धारण किये हैं जलधि की तममय अमापित कंदरा,
बहु सुमन उगते हैं अदृश्य स्व-रंग भरने के लिये,
मरु मरुत में माधुर्य अपना नष्ट करने के लिये।

मुखपृष्ठ पर न जानें क्यों शोकांजलि को 'ब्रजभाषानुवाद' की संज्ञा दी गई है जब कि समस्त पद्यानुवाद खड़ी बोली में है ! मुद्रण और सम्पादन में कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं, जो कि क्षन्तव्य हैं। आशा है काव्यानुरागियों और विद्यार्थियों में इस पुस्तक का यथोचित आदर होगा।

—श्यामसुन्दर खत्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रन्थालोचन

(श्री राजेन्द्र रंजन एम० ए०)

महाकवि सूरदास और उनका कृतत्व

आ० जवाहर लाल चतुर्वेदी, सूर स्मारक मण्डल, आगरा।

मिश्रबंधु और आ० रामचन्द्र शुक्ल से लेकर आज तक के विद्वान् समालोचकों ने महाकवि सूर के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। विद्वानों ने जहाँ सूर-जीवन की अंतरंग बहिरंग परीक्षा कर उसे उजला बनाने का प्रयत्न किया है, वही अपनी खोज के बढ़ते कदमों से सूर-कृतियों की नामावली को विस्तृत बनाया है। किन्तु भारत के अनेक ग्रंथागारों और 'किताब कोठरियों' में बिखरे होने के कारण सूरनाम विभूषित इन कृतियों की कथा नामोल्लेख के आगे न बढ़ सकी, परिणामतः ये 'दीर्घ कृति तालिका' अपने प्रामाण्य के लिये किसी पारखी खोजनहार की प्रतीक्षा करती ही रही। आ० जवाहरलाल ने इसी चिर प्रतीक्षित कार्य को प्रस्तुत पुस्तक के रूप में सम्पन्न किया जो उनकी दीर्घकालीन सूर तीर्थ यात्राओं का अर्जित पुण्य है। इसमें सूरसागर, साहित्य लहरी और सारावली से लेकर अक्रूर लीला, अर्जुन गीता, अष्टपदी, एकादशी माहात्म्य, गोपालगारी, गोवर्धन लीला, चीर हरण दशम स्कंध भागवत, दानलीला, द्रौपदी भजन, नल दमयंती, नागलीला, प्रानप्यारी, बाँसुरी लीला बारहमासौ, बिसातिन लीला, बैनी माधौ की बारहमासी, ब्याहुलौ, भ्रमरगीत, महादेव लीला, मान सागर, मोरध्वज लीला, राधाकृष्णमंगल, राधाखेल, राधानखशिख, राधामंगल, रामजन्म, राम विवाह रासलीला, रुक्मांगद कथा, रुक्मिणी विवाह, विष्णुपद, सुदामा चरित्र, सूरसहस्र नामावली सेवाफल, हरिवंश पुराण, कबीर, रागमाला और सूरगीता आदि तक की परीक्षा करके प्रामाणिक सूर-साहित्य एवं उसके अतेपते का विवेचन किया है। ग्रंथ में आदि से अन्त तक 'कृतत्व' शब्द का प्रयोग अपने स्वरूप-औचित्य की माँग करता प्रतीत होता है।

सूरदास की वार्त्ता

डॉ० प्रेमनारायण टण्डन, नन्दन प्रकाशन रानी कटरा लखनऊ – ३।

सूर-जीवन के विश्वसनीय गवाहों में 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भले ही उसका उद्देश्य इतिहास-लेखन न होकर साम्प्रदायिक जीवन का नियमन हो, तथापि उसका साक्ष्य कल्पना से कहीं अधिक साधार है। अब यह विवेकी समालोचक की कसौटी है कि वह वार्त्ता के साम्प्रदायिक आवरण को भेद कर यथार्थ को पहिचाने। श्रीयुत डॉ० प्रेमनारायण टण्डन ने इसी लक्ष्य के साथ प्रस्तुत पुस्तक का सम्पादन किया है जिसका आधार काँकरोली की 'अष्टछाप की वार्त्ता' है। श्री डॉ० टण्डन ने स्थान-स्थान पर टिप्पणी करके जहाँ साम्प्रदायिक गुत्थियों को सुलझाया है, वहीं अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिका में सूरसम्पादन की अन्य अनेक समस्याओं का समाधान किया है। सूर की छापों के सम्बन्ध में आलोचकों के कचरकूट को टण्डनजी ने स्पष्ट कर दिया है; विशेषकर 'सूर स्याम' छाप के सम्बन्ध में उनके तर्क, अकाट्य हैं।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि सूर स्याम कोई छाप है ही नहीं, जहाँ भी यह आया है वहाँ 'स्याम' शब्द काव्य के अनिवार्य और सार्थक अंग रूप में प्रयुक्त है।

भूमिका में जहाँ डॉ० टण्डन ने लिखा है कि 'साम्प्रदायिक आचरण का सूक्ष्म व्यवहार पक्ष सामने रखने के लिये महाप्रभु ने वार्त्ता का माध्यम अपनाया और महाप्रभु अपने शिष्यों की गोष्ठी में पुष्टि सम्प्रदायी भक्तों के आचरण-आदर्श प्रस्तुत करते थे वहाँ उन्होंने अपने कथन की पुष्टि में कोई मजबूत-सबूत नहीं दिया। मान्यता तो यही है कि गोकुलनाथजी से वार्त्ताओं की परम्परा विकसित होती है और हरिरायजी से उनके भाष्य। इसी प्रकार सूर को उन्होंने श्रीनाथजी का सर्व प्रथम कीर्तनियाँ लिखा है जब कि कुम्भनदास और कृष्णदास का प्रवेश उनसे पहले हो चुका था। मेरे इस कथन का अभिप्राय डॉ० टण्डन की उक्ति को काल्पनिक या अयथार्थ मानना नहीं अपितु वार्ताओं में ही ऐसी अनेक दुविधाऐं हैं जिनका समाधान प्रामाणिक सुसम्पादित संस्करण की बाट जोह रहा है। सम्भवतः डॉ० टंडन ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया यह तो स्वयं उन्होंने भूमिका में ही स्पष्ट कर दिया है। (पृ० ८) पर प्रश्न यह है कि जब तक पाठ प्रामाणिक तौर पर प्रस्तुत नहीं होता तब तक इन दुविधाओं का समाधान कैसे सम्भव है? जैसे पृष्ठ ४० पर। तब सूरदासजी को सम्पूरण भागवत स्फुर्तना भई। पाछें जो पद कीये सो श्रीभागवत प्रथम स्कन्ध तें द्वादशस्कंध ताईं कीये। तामें अनेक दानलीला मानलीला आदि वर्णन किये हैं। पाछे जो पद किये सो भागवत-अनुसार किये।" अब यहाँ दूसरे और चौथे वाक्य में स्पष्ट दुविधा है। पहले वाक्य में 'भागवत' के स्थान पर 'लीला स्फुर्तना भई' ऐसा भी मिलता है। ये चार वाक्य सूरसागर के संग्रहात्मक अथवा स्कन्धात्मक स्वरूप के निर्णायक हो सकते हैं किन्तु दूसरे वाक्य में जो बात है वह चौथे में आकर सन्देहास्पद बन जाती है। यद्यपि इस प्रसङ्ग की टिप्पणी में डॉ० टंडन ने जो कुछ लिखा है वह सर्वथा मान्य है तथापि समस्या तो वार्त्ता पाठ की है। व्रजी के शब्द और वर्तनी अधिक अनुरूप नहीं बन पाये।

रँगभर बरसै री

आमुख : श्री द्वारकानाथ चतुर्वेदी संपादन मंडल : सर्वश्री खरगराम, रामलाल, जानकीप्रसाद पृथ्वीनाथ, अमरनाथ एवं गिरिजाशङ्कर चतुर्वेदी, माथुर चतुवदी सभा कलकत्ता।

सङ्गीत के समृद्ध अंचल में व्रजी की जो असंख्य, एक से एक अनूठी किन्तु अज्ञात-कुलशील रचनायें हैं, उनके सङ्कलन सम्पादन की ओर साहित्यिकों का अपेक्षाकृत कम ध्यान गया है फिर चाहे वे लोकगीत हों या शास्त्रीय चीजें। 'रँग भर बरसैरी' इसी दिशा में साहित्य की महती उपलब्धि है। सच पूछा जाय तो 'रँग भर बरसैरी' का संग्रह जिस परम्परा में है उसमें तो शास्त्रीय और लोक सङ्गीत दूर-दूर हैं ही नहीं, यही कारण है कि 'रँग भर बरसैरी' ने संग्रह ग्रंथों की हृदय हारी परम्परा में जहाँ अपना स्थान बनाया है वहीं सूर तुलसी छीतस्वामी चन्द्रसखी, हरिश्चन्द्र, आनन्दघन, रसखान आदि के अनेक अज्ञात पदों को प्रस्तुत किया है साथ ही ऐसे अल्पज्ञातनामा अनेक कवियों को भी सम्मुख ला बैठाया है यथा हरिविलास गुन बिलास, भूधर, नारायण, रामप्रताप, किंकर, परमानन्द, मैंन, धौंधी, गुलबा, लच्छीराम, काशी गुदर, नासर, सिरी, चुन्नीलाल, हरिचरन, मारतंड, असरफअली, मोहनदास, ललित किशोरी, छबिनायक,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जानकीदास, हीरासखी, लालदास, सल्लर, बालकृष्ण आनन्द, पुरुषोत्तम प्रभु ख्यालखुसाल, जुगलसखी, कृष्णानन्द, मतोल, तनसुख, जनार्दन, त्रिपुरारी, मधुर अली, रतनहरी रँगीलेलाल, विद्याराम, दामोदर, सालिगराम, रामसखे, माधुरी, गणेशदास, प्रह्लाद आदि । सबसे बड़ी बात 'रँगभर बरसँरी' की यह है कि इसके सङ्कलन का क्षेत्र जनस्मृति है और उसका लाभ लेकर सम्पादकों ने ब्रजी की लुप्त होती थाती को सँजोलिया है । इन पदों में न केवल ब्रजी अपितु बुंदेल खंडी, मारवाड़ी और भदावरी का भी संगम है इससे लोकवाणी के एक निश्चित सत्य पर प्रकाश पड़ता है कि "प्रत्येक व्यक्ति अपने हृदय को भाने वाली रचना को अपने अनुरूप ढाल कर अपनी स्मृति में अँगेजता है ।"

इस संग्रह ग्रन्थ में जनपदीय भाव भरे शब्दों का भण्डार है यथा भ्यासी, गुइयाँ मइकें, लँगर, अलबसिया, अदन, नरवा, सुअना, परदेसीरा आदि । गीतों का सम्हाले न सम्हलता भाव वैभव कैसे सम्हाला जाय यह समस्या बन गई है. एक से एक अद्भुत भाव:

"सुअना मेरे बाँधौ लाल गिलोल सुअना बाल लै लै जाय ।।
चन्द्र पुरुष हम खेती कीन्ही वारी सूरज पुरुष खरिहान ।
दोऊ जुबना के बैल बनाओ सैंयाँ कों करोंगी किसान ।।
नीम के नीचें चौंनरा री वारो, तापै बैठौ सुअना ।
जो जो सुअनें मारि है रे तापै मरौंगी जहर बिस खाय ।।
हरे पंख कौ हरियला रे सौ सौ फेरी देइ ।
सुअना बैठौ डार पै रे कली कली रस लेइ ।।"

इस प्रकार अनेक अलभ्य गीतों का सम्पादन साज सज्जा पूर्ण मुद्रण में वेदनीय है हाँ ब्रजी के अनुरूप वर्तनी में यत्र तत्र भूलें है ।

अमरपद

रचयिता : अमर सिंह 'अमर', भक्ति साहित्य प्रकाशन मंदिर, हाथरस ।

श्री अमर (१९७५ भाद्रपद अवागढ़) की भक्ति भावमयी रचनाओं का सरस सङ्कलन, भक्तिधारा की अविरलता का द्योतक, भाषा मधुर सङ्गीतमयी भाव में प्रेम की तल्लीनता, यथा :

झुकि झुकि परत नैन अनुरागी ।
उनकौ स्याम रंग निरखन कों नित उमंगत बड़भागी ।।
प्रीत सन्देस सुनावत सब दिन होरी खेलन अइहैं ।
काऊ वेष आउ न तु दोऊ चितइ चितइ दुख पइहैं ।।

ब्रज माधुरी सुधा

रच० गो० श्रीद्वारकेशलालजी महाराज, सम्पादक : माधवरायजी, प्रका: द्वारकेश स्मारक समिति मथुरा ।

भक्ति साहित्य धारा अद्यावधि प्रच्छन्न रूप से अप्रतिहत—गति है, यह नित्य लीलास्थ श्रीद्वारकेशजी ने सिद्ध कर दिया । उनके भाव भरे पद अष्टछाप आदि महानुभावों के भाव वैभव के अधिक निकट हैं । उनके पदों का सङ्कलन कर द्वारकेश स्मारक समिति ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया । वस्तुतः ब्रजक्षेत्र की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रगति में गो० माधवरायजी का योगदान सराहनीय है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रजभाषा के अल्पज्ञात कविरत्न—

ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी एवं 'कृष्ण' कवि, प्रका: भारती अनुसन्धान भवन, मथुरा।

ब्रजी के महामहिम साहित्यकोष में ऐसी-ऐसी महर्घ निधियों की बहुतायत ही है जिनकी चर्चा बहुत कम साहित्य जगत् में हो पाई है। भारती अनुसन्धान भवन के इस प्रकाशन में लगभग बीस 'कविर्मनीषी' अपना उजला रूप लेकर उभरे हैं।

पत्र-व्यवहार

प्रिय सम्पादक जी,

अभी ब्रज-भारती में श्री रामस्वरूप जी विशारद का "बिहारी रत्नाकर" में शब्दार्थ सम्बधी भूलें" शीर्षक लेख पढ़ा। विशारदजी का यह कहना बहुत अंशों में सत्य है कि, बिहारी रत्नाकर को हिन्दी के विद्वान प्रमाणित ठहराते हैं किन्तु यह बात कि ब्रज भाषा के मर्मज्ञ भी इसे शुद्ध सही अर्थ वाला और प्रमाणित मानते हैं, ऐसी बात नहीं।

मैं ब्रज भाषा का कोई मर्मज्ञ नहीं परन्तु मैं तो रत्नाकर जी के लगभग २०० दोहो के शब्दार्थ और भावार्थ से सहमत नहीं। इस बात को आगरा निवासी और बाहर के भी मेरे मित्र जानते हैं। यहाँ तक कि गत वर्ष इसी विषय पर मैं मथुरा रेडियो से एक भाषण भी दे चुका हूँ।

इस विषय में मेरे मित्रों ने मुझ से अनुरोध भी किया था कि मैं इन दोहों को अलग से छपवा दूँ, किन्तु मैंने इसे अधिक उचित न समझा क्योंकि श्रद्धेय स्व० रत्नाकर जी अब हमारे बीच नहीं हैं। दूसरे कौन जाने कि मैं ठीक हूँ अथवा वह, अतः इस वाद विवाद में न पड़कर मैंने पूरी "बिहारी सतसई" की ही टीका कर डाली जो मेरे पास सन् ५० से पड़ी है।

विशारद जी ने अपने लेख की पुष्टि में फिलहाल तीन ही दोहे दिये हैं। जहाँ तक "कौन भाँति ••••तारि" वाले दोहे में गीधे का अर्थ लपक पड़ जाना, चसका लग जाना होता है मैं विशारद जी से सहमत हूँ।

किन्तु दूसरा दोहा "लाल •••• झार" वाला है। इसमें शब्द झर के अर्थ से विशारद जी सहमत नहीं। यह ठीक है कि झर के अर्थ मेह की झड़ी भी होते हैं किन्तु इस दोहे में "सरसैं बरसैं नीरहू" के बाद 'झर हूँ' आया है, इससे साफ जाहिर है कि दोनों प्रथक-प्रथक हैं। बरसैं नीरहू में सब कुछ गया, गोलाधार, फुहार, झड़ी लग जाना आदि" अतः मेरी समझ में यहाँ 'झर' का अर्थ गरमी, झरप ही उचित प्रतीत होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में लपट, लूह चलती ही हैं, जब सूर्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताप की तेजी से वायु गरम हो जाती है तो वह 'लपट' कहलाती है अतः विशारद जी का यह कहना कि 'सूर्य की धूप लपट नहीं होती' कम से कम मुझे तो ठीक नहीं जँचता। हाँ दूसरा शब्द 'झार' दोहे के अन्त में आया है जिसका अर्थ मेरी समझ में पतझार होना चाहिये न कि जलन। कारण विरहाग्नि को दोहे में अपार कहा गया है जो केवल बरसात में ही न मिटने से अपार नहीं हो सकती भले ही मेह की झड़ी लगी रहे। यदि 'झर' के अर्थ ग्रीष्म और झार के अर्थ पतझार किये जाते हैं तो इससे वर्षा, गरमी, और जाड़े तीनों आ जाते हैं क्योंकि पतझार शिशिर में प्रारम्भ हो जाती है और अपारता की सिद्धि हो जाती है।

अब लीजिये तीसरा दोहा "जब नाहिं" मैं विशारद जी से सहमत भी हूँ और थोड़ा सा मतभेद भी है, जो विशारद जी ने तर्क दिये हैं उनसे सहमत हूँ परन्तु यह नायिका के नख-शिख सौन्दर्य का वर्णन न होकर केवल नायिका की आँखों का ही वर्णन है, क्योंकि बिहारीजी ने 'आँखनु आंख लगी रहैं' लिखकर आँखों का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है।

मैं इस वाद विवाद में नहीं पड़ना चाहता कि कौन ठीक है और किसने भूल की है, परन्तु विशारद जी ने ध्यान आकर्षण मुख्य रूप से किया है। अतः जैसा कुछ मैं समझता हूँ लिख दिया, मैं स्व० रत्नाकर जी एवं विशारद जी दोनों को आदर की दृष्टि से देखता हूँ, मतभेद होना दूसरी बात है।

१—कौन भाँति रहि है विरद, अब देखनी मुरारि।
बींधे मोसों आइकें गीधे गीधहिं तारि॥

२—लाल, तिहारे विरह की अगनि अनूप अपार।
सरसै बरसें नीरहू झरहू मिटै न झार॥

३—जब-जब वे सुधि कीजिये तब तक सब सुधि जाहिं।
आँखिनु आँखि लगी रहैं, आँखें लागत नाहिं॥

अमृतलाल चतुर्वेदी
आगरा १५-३-६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रज के मन्दिरों की पावन शृङ्खला में—

ललित निकुञ्ज या शाह जी का मंदिर : वृन्दावन

(श्री उमाशंकर दीक्षित एम. ए)

ब्रज भूमि में मन्दिरों का बाहुल्य जितना वृन्दावन में है उतना अन्यत्र कहीं भी नहीं है। भारतीय भवन निर्माण कला की विकास शृङ्खला की सुदृढ़ कड़ियों के रूप में इन मन्दिरों का ऐतिहासिक महत्व है। इनमें 'शाहजी का मन्दिर' भी अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस मन्दिर का वास्तविक नाम है 'ललित निकुञ्ज'। इसके निर्माता थे हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध भक्त कवि श्री 'ललित किशोरी' जी।

इस मन्दिर का निर्माण संवत १९२५ वि० की वसन्त पंचमी को पूर्ण हुआ था और तभी इसमें श्री राधा रमण के युगल विग्रह की प्रतिष्ठा हुई थी। यह मन्दिर हिन्दू शास्त्रीय पद्धति पर निर्मित मन्दिर नहीं कहा जा सकता। यह इसके निर्माताओं को अभीष्ट भी नहीं था। चैतन्य सम्प्रदाय के सखी भाव के अनुरूप इस मन्दिर की कल्पना सखी भाव के अनुरूप ठाकुर श्री राधा-रमण के 'केलि भवन' के रूप में की गई थी। राधा कृष्ण की लीला माधुरी में पगे जिन भावों को भक्त कवि श्री ललित किशोरी ने कविता के माध्यम से स्वरूप प्रदान किया, उन्हीं भावों को यह देवालय अपने संगमरमर के प्रस्तर खण्डों से प्रकट करता हुआ भावुकजनों को भावविभोर कर देता है। इसके एक-एक प्रस्तर खण्ड से ललित किशोरी और ललित माधुरी के भावभीने हृदयों की भक्ति सरिता की तरंगे उमड़-घुमड़ कर भक्तजनों को रस में सरावोर कर देती हैं।

भक्त कवि 'ललित किशोरी' जी सखी भाव के उपासक थे। उनका यह नाम काव्य रचना तथा साधना से सम्बन्धित था। उनका वास्तविक नाम तो शाह कुन्दन लाल था। ये जाति के अग्रवाल वैश्य थे और लखनऊ के सबसे धनाढ्य रईसों में थे तथा वे लखनऊ के नवाब के जौहरी भी थे। नवाब ने उन्हें 'शाह' की उपाधि प्रदान की थी। शाह कुन्दन लाल के पिताजी का नाम शाह गोविन्द लाल था। कुन्दन लाल जी की द्वितीय पत्नी से शाह कुन्दन लाल तथा फुन्दन लाल नामक दो पुत्रों का जन्म हुआ था। बचपन से ही दोनों भाइयों में बड़ा प्रेम था। शाह कुन्दनलाल को फारसी, पंजाबी, बंगला, गुजराती, हिन्दी आदि कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। काव्य प्रतिभा तो उनमें जन्मजात थी। वे गान, नृत्य, वाद्य, चित्रकारी आदि ललित कलाओं के मर्मज्ञ थे। साथ ही रत्नों के पारखी भी बड़े ऊँचे थे। उनकी 'ललित किशोरी' नाम से ब्रजभाषा, खड़ी बोली और उर्दू में कवितायें, ग़जल व शेर आदि बहुत ही प्रसिद्ध हैं जो साहित्य की अनुपम धरोहर हैं। इस प्रकार शाह कुन्दन लाल पर सरस्वती तथा लक्ष्मी की समान कृपा थी।

लगभग २५ वर्ष की आयु में शाह कुन्दन लाल प्रथम बार श्री वृन्दावन में आये। यहाँ की प्राकृतिक श्री की रसमाधुरी से वे अत्यन्त प्रभावित हुए। मन मार कर लखनऊ लौटे। इसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चात् आपने बाबा तथा माता-पिता के देहान्त के बाद वे लगभग ३१ वर्ष की आयु में श्री वृन्दावन में स्थायी निवास हेतु आये और सम्वत १९१७ वि० की बसन्त पंचमी के दिन उन्होंने अपने निवास 'ललित निकुंज' का निर्माण प्रारम्भ कराया। जो सं० १९२५ में पूर्ण हो गया और सं० १९२५ की बसन्त पंचमी को उसमें आपने अपने आराध्य 'श्री राधा रमण' की युगल प्रतिमा को विराजमान कराया। शाह कुन्दन लाल जी अपने अनुज श्री फुन्दन लाल और परिवार के साथ ठाकुर जी की सेवा पूजा बड़ी लगन और राजसी वैभव से करते थे। ब्रज और ब्रजरज से उन्हें अनन्य प्रेम था। इस सम्बन्ध में गो० राधाचरण जी की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं:—

छांड़ि बादसाही वैभव लक्ष्मनपुर त्यागौ,
श्री वृन्दावन वास दृढ़व्रत अति अनुरागौ।
'ललित निकुञ्ज' बनाय राधिका रमन बिराजे,
रास विलास प्रकाश लच्छ पद रचना भाजे।।

ब्रज रज-मध्य समाधि लिय जुगल भ्रात निर्भय निपुन।
(श्री 'ललित किसोरी' ललित माधुरी प्रेम मूर्ति वृन्दा विपिन।।

शाहजी का मन्दिर वृन्दावन के सर्वोत्तम दर्शनीय मन्दिरों में से एक है। यह कुछ बातों में तो अद्वितीय है। इस मन्दिर का मुख्य द्वार गुलाबी रंग के बलुये पत्थर से बना है। जिसकी आकृति विशाल कमल दल के समान है। इसके शीर्ष पर तोरण के रूप में कमल की पंखुड़ियों का ही अलंकरण है। यह द्वार इतना ऊँचा है कि इसमें से उंडे से बड़ा हाथी अम्बारी सहित निकल सकता है। हर बारह वर्ष के बाद कुम्भ के मेले के अवसर पर इस द्वार में एक हजार बत्ती का विशाल झाड़ टाँगा जाता है। इसकी कलाकृति अद्वितीय है। इस द्वार के बाद एक सुन्दर वाटिका है जिसमें अनेक प्रकार के वृक्ष एवं लताएँ हैं। इसमें बीच-बीच में फुव्वारे लगे हैं। जो इस वाटिका के सौन्दर्य को द्विगुणित कर देते हैं।

इस रमणीक लघु वाटिका के पश्चात् ही मन्दिर का मुख्य भाग है। जो बिल्कुल मध्य में है। मन्दिर की ऊँचाई लगभग आठ फुट की है। संगमरमर की सफेद पट्टियों से बनी हुई सुन्दर नालियां और फव्वारे दोनों ओर बने हैं। दोनों ओर संगमरमर और संगमूसा की दो बारहदरियां बनी हैं। बारह दरियों के सामने दो केशरी लेटे हैं। बारहदरियों के पीछे भी दो विशालकाय आक्रमण की मुद्रा में खड़े हैं। फर्श से एक गज ऊँचा चौकोर बरामदा जो तीन भागों में विभक्त है, बना हुआ है। इसका मध्यवर्ती भाग कुछ आगे को निकला हुआ है। जिसकी छत आठ सीधे संगमरमर के सपाट खम्भों पर टिकी है। दाँयें-बाँयें के बरामदों के खम्भे संगमरमर के टेढ़े-मेड़े (बल खाते हुए) हैं, जो इस मन्दिर की अपनी निजी विशेषता है। लगभग दो गज परिधि के बलखाते हुए बिना जोड़ के ये स्तम्भ, जो एक पूरे पत्थर को काट कर बनाये गये हैं, अपनी कारीगरी में अद्वितीय हैं। ऐसे कलापूर्ण खम्भे ब्रज के किसी भी मन्दिर में अन्यत्र नहीं हैं। इसीलिए ब्रज भर में इस मन्दिर को 'टेढ़े खम्भों का मन्दिर' के नाम से पुकारते हैं। वास्तव में संगमरमर की स्थापत्य कला में इन स्तंभों की वक्रता नयनों और मन को मोहित कर लेती है। बरामदों के शिखर त्रिकोणाकार मत्स्यों, बुर्जियों और गोपियों की कलापूर्ण प्रतिमाओं से अलंकृत है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन बरामदों के उपरान्त तीन विशाल कमरे हैं। बायीं ओर मन्दिर का गर्भगृह है। मध्य का कमरा मन्दिर का जगमोहन है। यहीं से ठाकुर जी के दर्शन होते हैं। ये सब संगमरमर के हैं। जगमोहन में रंग-बिरंगे पाषाण-खण्डों से सखियों के बड़े सुन्दर चित्र बनाये गए हैं। किसी में तबला और मृदंग बजाती हुई सुन्दरियां हैं तो किसी में कबूतर उड़ाती हुई। आराध्य के ठीक सामने ही एक अपूर्व सुन्दरी का चित्र है जिसके दुपट्टे की महीन पच्चीकारी अत्यन्त दर्शनीय है। इसके दुपट्टे के एक छोर पर लिखा है 'ललित किशोरी'। इससे उपासक की भावना का पता सहज ही में मिल जाता है। इतना कुशल चित्रण अन्यन्त्र दुर्लभ है।

दाहिनी ओर का कक्ष श्रावण और वसन्त पंचमी के विशेष उत्सवों में जन साधारण के लिए खोला जाता है। यह 'वसन्ती कमरा' के नाम से विख्यात है। इसकी सभी दीवालें, छत आदि वसन्ती रंग की हैं। जिन पर लखनवी शैली के सुन्दर बेल-बूटे अङ्कित हैं। बड़े-बड़े कीमती झाड़ फानूस और मानवाकार दर्पणों से पूरा कमरा भरपूर सजाया जाता है। बिजली के रंग-बिरंगे वल्बों का प्रकाश, दर्पणों को उनके प्रतिविम्ब, फव्वारे की अगणित धाराओं में रंगीन इन्द्र-धनुषी आभा बिखर जाती है। वसन्त पंचमी को दर्शकों की भीड़ इसको देखकर भाव विभोर हो जाती है।

मध्य वाले कमरे की कार्निस पर चारों ओर चौदह गोपियों की मूर्तियां हैं। ये पकाई हुई मिट्टी की हैं। इनका आकार पूरी स्त्री के बराबर है। इन मूर्तियों में एक मूर्ति लखनऊ के तत्का-लीन नवाब वाजिद अलीशाह, जो दुपल्ली टोपी लगाये, सखी वेष में 'श्री राधारमण' का पंखा झाल रहे हैं। हिन्दू मन्दिर में आराध्य के समक्ष मुसलमान नवाब की मूर्ति की स्थापना नवाब वाजिद अलीशाह के साथ श्री ललित किशोरी की घनिष्टता के साथ-साथ स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम के आसपास के समय में हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द का स्पष्ट संकेत है।

मन्दिर के मुख्य भाग के पश्चात् एक अन्तःपुर उद्यान है जो मुगल शैली का है। इसमें लाल और सफेद बलुये पत्थर की नहरें, जल चादर और जाली का काम दर्शनीय है। नालियों में फव्वारों की पंक्तियाँ हैं। जलयात्रा और सावन के हिंडोलों में श्री ठाकुर राधारमण जी इसमें विराजते हैं। बिजली की आलोकित जलचादर है कलकल करता हुआ जल, फव्वारों की रंग-बिरंगी आड़ी-तिरछी जल धारायें और जल बिन्दुओं का एक अपूर्व दृश्य देखते ही बनता है।

मन्दिर के ठीक पीछे श्री यमुना जी का एक पक्का घाट तथा सीढ़ियाँ हैं परन्तु यमुना जी आजक : यहाँ से बहुत दूर बहने लगी हैं। इस प्रकार यह मन्दिर अपनी कला प्रियता एवं लखनवी फैशन के झाड़ फानूस की सजावट के द्वारा सभी आगन्तुकों का मन हर लेता है। 'ललित किशोरी' के "राधारमण" इस ललित कुंज में विराजकर अवश्य मोहित हुए होंगे क्योंकि इसके थोड़े से सामीप्य से ही दर्शक भाव विभोर हो जाता है। सखी भावना की पूजा सेवा मन्दिर की अपनी निजी विशेषता है। वस्तुत: टेढ़े खम्भों का यह मन्दिर ब्रज का तो महान गौरव है ही साथ ही देश की महान निधि है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"स्वर्गीय गोस्वामी श्री केशवाचार्य"

(श्री राधेबिहारीलाल सक्सेना 'राकेश')

स्वर्गीय केशवाचार्य जी का जन्म गोपाचल (ग्वालिअर) के निकट एक ग्राम में हुआ था। आप के पिता का नाम श्री मोहन मिश्र एवम् माता का नाम भागवती देवी था। आप बाल्य काल से ही श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। शिशुओं के साथ श्री कृष्ण लीला करते, कभी हँसते, कभी उन्मुक्त होकर आत्मज्ञान मून्य हो जाते थे। माता पिता की आज्ञा लेकर आप ब्रज में आये। अनेक लीला दर्शन कर श्री गोवर्धन की तलहटी में पधार कर तत्कालीन विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी श्री रोहिणाचार्य जी से मंत्र दीक्षा ली। तत्पश्चात् एकनिष्ठ होकर गोवर्धन में वास कर शेष जीवन श्री हरदेव जी की सेवा में लगाकर समय व्यतीत करने लगे। श्री केशवाचार्य जी ने अपने भजन के प्रभाव से श्री हरिदेव जी को प्रगट किया था।

श्री केशवाचार्य जी राजा भगवानदास के समकालीन थे। उक्त आमेर (जयपुर) नरेश का निधन सं० १५८९ में हुआ था। इससे पूर्व ही श्री केशवचार्य जी की लीला का समय है। मरमर प्रस्तर के मन्दिर का निर्माण महाराज मानसिंह ने टोडरमल के द्वारा संवत् १६२७ में कराया था। श्री हरिदेवनारायण स्वरूप का दर्शन अति मनोहर है। श्री गौराङ्ग चैतन्यमहाप्रभू ने गोवर्धन में आकर हरिदेव विग्रह का दर्शन किया था एवम् प्रेमावेश में नृत्य भी किये। उस समय श्री केशवाचार्य जी गोवर्धन में ही थे ऐसा कहा जाता है। श्री महाप्रभू का विशेष आदेश था कि कोई व्यक्ति कभी गोवर्धन के ऊपर न चढ़े क्योंकि श्री गोबर्धन साक्षात् श्री कृष्णरूप तथा कृष्ण भक्तों में श्रेष्ठ है। सभी वैष्णव भक्तों को यही चाहिये कि श्री गोवर्धन के ऊपर न चढ़े। श्री केशवाचार्य जी के वंशजों में श्री हरिदेवजी की पूजा अब तक चली आरही है। श्री हरदेवजी के गुसाई स्वर्गीय श्री जगनलाल जी द्वारा संस्थापित संस्था श्री आनन्द भवन पुस्तकालय गोवर्धन में आज भी आचार्य जी के कई हस्तलिखित ग्रंथ सुरक्षित हैं।

श्री हरिदेवजी का मंदिर श्री गोवर्धन में परम प्राचीन है। सामयिक उत्सवों के अतिरिक्त श्री आचार्य जन्म दिवस (श्री केशव द्वादशी) प्रतिवर्ष कार्तिक सुदी द्वादशी को सम्पन्न होता है। चैतबदी द्वितीया होली को (श्री हरिदेवजी के प्राकट्य दिवस पर) श्री हरिदेवजी का डोला बिछुआ कुन्ड पर जाता है। यह उत्सव भी मंदिर में सम्पन्न होता है।

इनके प्रकाशित ग्रन्थों में श्री केशवयश चन्द्रिका और गोवर्धन शतक अति प्रसिद्ध हैं। श्री केशवयश चन्द्रिका की रचना संवत् १८६६ में हुई। इसमें श्री आचार्य जी के पावन चरित्र का साङ्गोपांग वर्णन है जो काव्य शास्त्र से परिपूर्ण है। अयोध्या वासी बाबा गणेशदास शास्त्री ने इसका सम्पादन कर इसे भक्त जनों के हितार्थ प्रकाशित किया है। श्री हरिदेव जी प्राकट्य तथा उनका परत्व तो इस ग्रंथ का प्राण है। सभी पद महाभाव मग्न श्री आचार्य जी के उदगार है। भक्ति रस से युक्त यह एक परम सुन्दर काव्य है। श्री कृष्ण भक्ति का माधुर्य रस इस में प्रधान है। **"बिन वृन्दावन भक्ति न आवै। भक्ति बिना नहीं प्रभू पद पावै॥"** आदि वाक्यों द्वारा नाम रूप लीला, धाम, भक्ति तथा गुरु महिमा इस रहस्यमयी विधि से वर्णित है कि पाठ करने में मन विश्राम पाता है। यह वैष्णव सिद्धान्तचन्द्रिका भक्तिलता को पुष्ट कर दुर्लभ प्रेम की प्राप्ति में सहायक है। साहित्य प्रेमी एवं ब्रज के रसिक चकोरों को परमानन्द प्रदान करने वाली है।

श्री गोवर्धन शतक संस्कृत ग्रन्थ में १०१ श्लोकों में गोवर्धन की प्राकृतिक छटा, महत्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रौर भगवान श्रीकृष्ण का राधिका जी के साथ की गई रासलीला का वर्णन बहुत ही सुन्दर विधि से किया गया है । इसका हिन्दी अनुवाद डीग निवासी स्वर्गीय श्री वैद्यराज हरिकृष्ण 'कवलेश' ने प्रचुर परिश्रम के साथ किया है । इसे बाबा कृष्णदास कुसुम सरोवर वालों ने प्रकाशित किया है । श्री केशवाचार्य जी को गोवर्धन नगर के आदि कवि होने का भी सौभाग्य प्राप्त है ।

एक बार श्री आचार्य जी के भंडारे में समस्त ब्रज के सन्त एकत्रित हुए । सत्सङ्ग भगवत लीला तथा नाम संकीर्तन के पश्चात पङ्गति की तैयारी हुई । एक शुष्क हृदय सन्त बोले "यहाँ तो सब खडियाशाही काम है" सम्प्रदाय की मर्यादानुसार द्वारका की छाप लेनी चाहिये । श्री केशवाचार्य महापुरुष हैं उन्हें भगवान ने दर्शन दिया है वे न भी लें तो कोई आपत्ति नहीं परन्तु रसोइया, पुजारी, जलभरीया आदि में से किसी ने छाप नहीं ली है । अन्य लोगों ने आचार्य जी से कहा महाराज ! आपने तो अवश्य ही छाप ली होगी क्यों कि सन्त हैं माचार्य जी क्या उत्तर दें उनके मन पर गहरी छाप के योग से शरीर भी दिव्य है । किसी सन्त के मुख से निकला कि श्री अंग पर से अचला हटा कर दर्शन ही क्यों न कर लीजिये । चहुँ ओर रसिक प्रेमियों ने देखा कि केवल भुजा ही नहीं अपितु सर्वाङ्ग में "नन्द सुवन नन्द सुवन" अङ्कित था । परम विस्मृतसभी लोगों ने यह दृश्य देखकर आचार्यजी के पैर पकड़ लिये व क्षमा याचना की । रसिक मंडली ने इन्हें 'नन्द सुवन की छाप कवित्त केशव को नीको" की छाप प्रदान की जिसका उल्लेख नाभाजी ने श्री भक्तमाल छप्पय संख्या १०२ में किया है । हिन्दी के सभी पद परम गंभीर आशययुक्त हैं । इनमें वात्सल्य और माधुर्य का एक साथ वर्णन परम मनोहर है । शिक्षाष्टक, पदषोडसी, श्री हरदेवजी के अष्टक, श्री मानसीगंगा स्तोत्रन्, उत्सव रत्नावली, स्फुट पदावली इनकी अप्रकाशित पुस्तकें हैं । उत्सव रत्नावली में श्री आचार्य जी के जन्म दिवस पर गाये हुए गीतों का संकलन है । गीतावली के पदों में श्री केशवाचार्य जी की महिमा का वर्णन है । जिनके मुख का अवलोकन कर हृदय में ध्यान रखने से अपार सन्तोष प्राप्त होता है ऐसे अमृत रूपी रस का पान करने वाली हीरा सखी की विह्वलता इस पद में कितनी सजीव हो उठीं है ।

हमारे ये दोउ जीवन प्रान ।
कुमरि किशोरी गोरी भोरी श्री हरिदेव सुज़ान ।।
इन ही को मुख देखे जीवत इन ही को उर ध्यान ।
हीरा सखी इन्हीं को चाहत रूप सुधा रस पान ।।

श्री हरिदेव जी के दर्शन में नेत्र, वाणी, प्राण, मान सबके त्यागने पर भक्त को श्री हरदेव जी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दृष्टिगत होता । भगवान की रूप माधुरी पर वह मुग्ध है जैसा कि इस छन्द में परिलक्षित हो रहा है ।

सवैया : — नैंन वही हरिदेवल है अरु बैन वही हरिदेव उचारै ।
प्रान वही हरिदेव पै वारिपे मान वही हरिदेव सौं धारै ।।
साथ वही हरिदेव सों श्रीधर हाथ वही हरिदेव सिगारै ।
शुद्धि वही हरदेव समर्पित बुद्धि वही हरिदेव विचारै ।।

साहित्य के अध्येताओं से निवेदन है कि वे इस इस अज्ञात कवि पर अवश्य ही शोध करायें जो अब तक उपेक्षा के विषय बने हुए हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीमान् वित्तमन्त्री श्री लक्ष्मीरमण आचार्य के प्रति निवेदन

(श्री बनारसीदास चतुर्वेदी)

एक ब्रजवासी के नाते मैं आपका इस नगर में, जो ब्रजभूमि का ही एक अङ्ग है, हार्दिक स्वागत करता हूँ। चूँकि ५१ वर्ष तक अन्य प्रदेशों में भटकने के बाद मुझे अपनी इस प्रिय जन्मभूमि में आने का मौका मिला, इसलिये मैं शुद्ध ब्रजभाषा बोलना भूल गया और मजबूरन खड़ी बोली में ही बोल रहा हूँ !

मुझे संक्षेप में कई बातें निवेदन करती हैं। पहली बात तो यह है कि हमारी उत्तर प्रदेशीय सरकार को जनपदीय बोलियों या भाषाओं के विकास के लिये भरपूर उद्योग करना चाहिये। ब्रजभाषा तो कभी अन्तर्प्रान्तीय भाषा रह चुकी है, पर उसके सिवाय हमारे प्रदेश में अवधी, बुन्देलखंडी तथा भोजपुरी के बोलने वालो की संख्या भी पर्याप्त है। ये बोलियाँ खड़ी बोली राष्ट्र-भाषा की सौत नहीं बल्कि माताएं हैं। इन बोलियों में जो कुछ सर्वोत्तम है उसकी विधिवत् रक्षा होनी ही चाहिये।

इस अवसर पर मुझे बन्धुवर आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल की याद आती है, जो जन-पदीय आन्दोलन के प्रवर्तक थे और जिनका महत्वत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'पृथिवी पुत्र' हमारा पथ प्रदर्शक है।

हमारी केन्द्रीय तथा प्रदेशीय सरकारों द्वारा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की तो सहायता मिल रही है वह सर्वथा न्याययुक्त है—उसे बढ़ा देना चाहिये—पर साथ ही साथ ब्रज-साहित्य मंडल, मथुरा तथा नागरी प्रचारिणी सभा आगरा इत्यादि संस्थाओं को भी यथोचित मदद मिलनी चाहिये।

आपको यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि स्व० पं० श्रीधर पाठक की शिक्षा हमारे इस नगर में ही हुई थी। मैंने खेद पूर्वक सुना था कि प्रयाग में उनका पद्मकोट बिकाऊ है। क्या हमारी सरकार उसे खरीदकर संग्रहालय का रूप नहीं दे सकती ? पाठक जी रूसी लेखक चैखब के समकालीन थे, जिनके चार-चार संग्रहालय रूस में विद्यमान हैं, पर यहाँ जोंधरी में स्वर्गीय पाठकजी का घर जीर्णशीर्ण अवस्था में पड़ा हुआ है और उनकी लूकरगज वाली कोठी बिकाऊ है।

धांधूपुर ताजगंज में सत्यनारायण कविरत्न का मन्दिर भी बिलकुल ध्वस्त हो चुका है। हमारी सरकारें करोड़ों के बजट बनाती हैं, पर साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्यों के लिये बहुत ही कम खर्च करती है। जैसा कि श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू ने कहा था "अन्तिम ध्येय राजनीति नहीं, संस्कृति है" मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप अपने साथियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यद्यपि ब्रजभाषा की पोजीशन काफी ऊँची है, तथापि मैं यही कहूँगा कि जितनी आर्थिक सहायता ब्रजभाषा की संस्थाओं को दी जाय उतनी ही बुन्देलखंडी, अवधी तथा भोजपुरी की संस्थाओं को भी दी जानी चाहिये। चूँकि ब्रज साहित्य मंडल अन्तर्जनपदीय परिषद का भी सचालन कर रहा है, इसलिये वह विशेष सहायता का पात्र है।

चूँकि उर्दू भी हमारे देश की ही भाषा है इसलिये हरहालत में उसकी रक्षा तथा उन्नति होनी ही चाहिये! उर्दू न जानते हुए भी मैं उर्दू का घोर समर्थक हूँ और अभी हाल में मैंने अमर शहीद अशफाकुल्ला का जीवन सर्वप्रथम उर्दू में ही छपाया था और किदवई अङ्क उर्दू, हिन्दी तथा अंग्रेजी तीनों में। भाषा सम्बन्धी विद्वेष से हमें अपने मुल्क को बचाना है। हमारे मुसलिम भाई हिन्दी पढ़ें या न पढ़ें, हमें उर्दू पढ़नी चाहिये। मौलाना हाली के इस कथन से मैं सहमत हूँ कि, अच्छी उर्दू लिखने के लिये हिन्दी का जानना जरूरी है और अच्छी हिन्दी के लिये उर्दू का। नजीर अकराबादी को मैं आदर्श लेखक तथा कवि मानता हूँ, जिन्होंने 'कृष्ण कन्हैया का बालपन' लिखकर अपनी स्वस्थ मनोवृति का परिचय दिया था।

अन्त में एक निवेदन और भी। पिछले २०-२१ वर्षों से मेरे क्षुद्र जीवन का सम्पूर्ण समय शहीदों के श्राद्ध में ही व्यतीत होता रहा है और इस विषय पर थोड़ी सी सेवा भी मुझसे बन पड़ी है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि सरकार तथा जनता द्वारा यह पुण्य कार्य उपेक्षित रहा था। अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद की पूज्य माता जी सत्रह वर्ष तक भूँखों मरती रहीं, तब कहीं अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्हें पेंशन मिली।

शहीद आजम अशफाकउल्ला के बड़े भाई रियासतुल्ला खाँ बहुत दिनो तक तकलीफ में रहे, फिर किदवाई साहब की महरबानी से चुंगी में उन्हें नौकरी मिली। उसके छूटने पर उन्हें ७५) की पेंशन करादी गई थी। वे अब स्वर्गबासी हो चुके हैं और उनके कुटुम्ब के पाँच प्राणी अब घोर आर्थिक संकट का सामना कर रहे हैं। अगर उत्तर प्रदेशीय सरकार शहीद अशफाक के भतीजे इस्तियाकुल्लाखाँ को सहारा नहीं देती तो उस कुटुम्ब का खातमा समझ लीजिये। अशफाक ने अपने एक अन्तिम पत्र में वतनी भाइयों से यह प्रार्थना की थी कि वे उनके भाइयों का खयाल रक्खें। जब अशफाक से कहा गया कि अगर वे चाहें तो उन्हें फ्रण्टियर पार करा दिया जाय। उन्होंने साफ साफ कहा था,—"अरे भाई! एक मुसलमान को भी फाँसी चढ़ने दो!" और बड़ी खुशी के साथ वे फाँसी के तख्ते पर झूल गये—कुल जमा २७ बर्ष की उम्र में। अमर शहीद गणेश जी तथा श्रद्धेय टंडन जी अशफाक की आलीशान समाधि बनाना चाहते थे, पर वे ऐसा न कर सके। पर अशफाक के सबसे बड़े स्मारक तो उनके कुटुम्बी है, जिन्हें भूखों मरने से बचाना है।

अस्वस्थ होते हुए भी मैं सिर्फ यही अर्ज करने के लिये आपकी खिदमत में हाजिर हुआ हूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

U. P. Cooperative Bank Ltd.

H. O : LUCKNOW.

Estd. 1944

[State Partnered, Govt. Audited, Apex Bank of the Cooperative movement]

Regional Offices : BAREILLY, GORAKHPUR, KANPUR, LUCKNOW, and MEERUT,

Branches : AGRA, BAREILLY, FAIZABAD, KANPUR Navin Market, KANPUR D. A. V. College, LUCKNOW Nirala Nagar, LUCKNOW M. G. Marg, LUCKNOW Naka-Hindola, RAMPUR, and SITAPUR,

		30 6-68	
Paid up Share Capital	...	Rs. 4.31	Crores
Owned Funds	...	Rs. 7.68	"
Deposits	...	Rs. 20.63	"
Working Capital	....	Rs. 60.68	"

Offers Lucrative rates of interest on all types of deposit.

Current Account	....	½% per nnum
Savings Bank Deposit	...	3½% " "
Fixed Deposit	...	4 % to 6½% per annum.

D. S. Verma
General Manager

Mathura Singh
Vice-President

A. P. Singh
President

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१-हमारे जवानों के शौर्य ने शत्रु के मनसूबे धूल में मिला दिए।
२-हमारे यहाँ बने हथियारों के सामने अमरीकी हथियार कामयाब न हो सके।
३-हमें अपने को अन्नोत्पादन में भी आत्म निर्भर होना है।
४-अमरीका या अन्य देशों का मुँह ताकना धोखा दे सकता है।

देश का हर व्यक्ति राष्ट्र की इस सबसे बड़ी समस्या में अपना योग दे सकता है। जिला सहकारी बैङ्क में अपना धन आप जमा करें जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित है, ब्याज दूसरे बैङ्कों से आपको ज्यादा मिलेगा और किसानों के अन्नोत्पादन के कार्य में आपके धन का उपयोग होगा।

जिला निवासियों के लिये हमारी शुभ कामनाओं के साथ हम आशा भी करते हैं कि आप अपने ही सहकारी बैंक को अपनाकर अपना तथा इस बैंक का और अपने राष्ट्र का सदैव हित करेंगे।

ब्याज की दरें

सेविंग खाता पर	४	प्रतिशत	वार्षिक
कौल डिपौजिट पर	३॥।	,,	,,
६ माह की अमानत पर	५॥	,,	,,
१ साल की अमानत पर	६।	,,	,,
२ साल की अमानत पर	६॥	,,	,,
३ साल की अमानत पर	६॥।	,,	,,
४ साल की अमानत पर	७	,,	,,
५ साल की अमानत पर	७।	,,	,,
७ साल की अमानत पर	७॥	,,	,,

मथुरा जिला सहकारी बैंक लि०, मथुरा

प्रकाशक:-श्री वृन्दावन दास अध्यक्ष ब्रज साहित्य मण्डल मथुरा के लिए
श्री हर्ष गुप्त द्वारा राष्ट्रीय प्रेस, मथुरा में मुद्रित।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रजभारती

भाद्रपद सं० २०२८ वि०

ब्रज साहित्य मंडल
प्रधान कार्यालय मथुरा

सम्पादक :

श्री वृन्दावन दास

बी० ए०, एल-एल० बी०

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा

वर्ष २३] वार्षिक मूल्य ४) [अङ्क २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणिका

क्रमाङ्क शीर्षक	लेखक	पृ०सं०
१–संपादकीय	: श्री वृन्दावनदास	१
२–प्रेरक साधक (श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ)	: सम्पादक मण्डल	३
३–कृष्णानन्द गुप्त	: श्री ब्रजवल्लभ गुप्त	४
४–आवश्यक निवेदन	: श्री वृन्दावनदास	८
५–स्वामी हरिदास जी विरचित केलिमाल	: डा० भगवानसहाय पचौरी, एम० ए०, पी-एच० डी०	९
६–हस्त लिखित प्राचीन ग्रन्थ : श्री राम चन्द्राभरन	: श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'	११
७–गोकर्णेश्वराष्टक	: प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी, एम० ए०	१५
८–टेक सतसई : एक अद्भुत कृति	: श्री उदयशङ्कर 'शील' एम० ए०	१७
९–उद्धवशतक के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता	: श्री वेद प्रकाश गर्ग	२१
१०–तुलसी (कविता)	: प्रो० नरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, एम० ए०	२२
११–भारतीय इतिहास के पहिले छः मन्वन्तर	: श्री वृन्दावनदास	२३
१२–ब्रज लोक साहित्य में सौन्दर्य और शिव भावना	: डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी पी-एच०डी०, डी० लिट्०	३०
१३–हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल [२]	: श्री वृन्दावनदास	३६
१४–पत्र व्यवहार	: श्री अमृतलाल चतुर्वेदी	४३
१५–भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य : एक मूल्यांकन	: श्री रमेश गुप्त	४३
१६–ब्रजभाषा का एकमात्र गोचारण काव्य 'गोधूलि'	: डा० श्याम शर्मा एम०ए०,पी-एच०डी०	४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रजभारती

[अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल की मुख-पत्रिका]

वर्ष २३] मथुरा भाद्रपद सं० २०२६ [अङ्क २

संपादकीय

आजकल एक बीमारी चल पडी है कि व्रजभाषा का नाम लिया और हिन्दी को खतरा दिखलाई देने लगा । व्रजभाषा की उन्नति मे हिन्दी को कैसे धक्का पहुँचता है हमारी समझ में कतई नहीं आता । हिन्दी व्रजभाषा मे और व्रजभाषा हिन्दी से कदापि अलग नहीं हो सकती । भारतीय संस्कृति में विराटस्वरूप की कल्पना है । हिन्दी विराट स्वरूप है उसकी विभिन्न उपभाषाऐं (व्रज, भोजपुरी बुन्देली, राजस्थानी, अवधी आदि) हिन्दी के विभिन्न अङ्ग है । यदि विभिन्न अङ्ग पुष्ट होते हैं तो समग्र रूप से हिन्दी की समृद्धि होती है । जनपदीय भाषाओं से हिन्दी का निरुक्त शास्त्र भरापूरा बनेगा यह स्वर्गीय डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा था । आखिर इन जनपदीय भाषाओं को आप कहाँ ले जाँयगे । ये लोक वाणियाँ हैं और अनादि काल से चली आई हैं ।

हमें आजकल सभी उपभाषाओं की साहित्यिक पत्रिकाओं को देखने का अवसर मिलता है । प्रत्येक उपभाषा के क्षेत्र में वहाँ के विद्वानों का लक्ष्य है कि उपभाषा के साहित्यिक पक्ष को उन्नत किया जाय, पद्य को सामान्य रूप से और गद्य को मुख्य रूप मे परिष्कृत किया जाय, जिन शब्दों की कमी है उसे संस्कृत मे पूरी की जाय आदि । इसमें हमें क्या आपत्ति हो सकती है ? क्षेत्रीय विद्वान उपभाषाओं को समुन्नत बनावें इसमें हिन्दी की कोई क्षति नहीं है ।

हम यह बात साफ-साफ बता देना चाहते हैं कि हिन्दी का वर्तमान परिष्कृत स्वरूप विद्वानों की शताब्दियों की तप:पूत साधना का फल है । इस साधना ने हिन्दी को जो रूप प्रदान किया है वह सर्वाङ्गपूर्ण है और अब उसमें कोई कमजोरी या कमी नहीं है । हिन्दी को राष्ट्रभाषा के उच्च आसन से बोलियाँ (उपभाषाऐं) तो क्या दुनियाँ की कोई ताकत अपदस्थ नहीं कर सकती । अपने अमोघ गुणों के कारण हिन्दी भारत-वर्ष की सार्व भौमभाषा तो है ही वह दिन दूर नहीं जब उसका प्रचलन अन्तर्राष्ट्रीय होगा । हिन्दी विश्व की मुख्य भाषाओं में से एक है और सदा रहेगी । उसकी ख्याति और लोकप्रियता दिन पर दिन बढ़ती ही जारही है ।

एक बात लिखने से रह गई । उपभाषाओं के विद्वानों का हिन्दी के प्रति बड़ा आदर है । वे उसे राष्ट्रभाषा के रूप में शिरोधार्य करते हुए अपनी उपभाषा का उद्धार और उन्नयन करना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहते है। वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने में हिन्दी से कोई बदला नहीं चाहते। उन्हें हिन्दी में पूर्ण आस्था है कदाचित जो हिन्दी का दम भरते हैं उनसे भी बहुत ज्यादा। आज हमें विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन न देकर रचनात्मक दृष्टि से समन्वयकारी निर्णय लेने चाहिये। विघटनात्मक प्रवृत्तियों ने सदैव इस देश की एकता को खण्ड-खण्ड करके बड़ी हानि पहुँचाई है।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ

बड़े हर्ष का विषय है कि श्रद्धेय चतुर्वेदी जी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने की योजना बन चुकी है। वास्तव में यह काम बहुत पहिले ही हो जाना चाहिये था। चतुर्वेदी जी ने अपने लेखों और पत्रों की अजस्र धारा से हिन्दी जगत के साहित्यिक उद्यान को सदैव हरा-भरा रक्खा है। पत्रकारिता पर उनकी सेवाओं के विषय में क्या कहा जाय। हम तो कहेंगे हिन्दी पत्रकारिता चतुर्वेदी जी को पाकर धन्य हो गई। साहित्य निर्माण के साथ-साथ वे पचास साठ वर्षों से लेखकों का निर्माण भी करते रहे हैं। उनकी छत्रछाया में अनेक नवोदित प्रतिभाएँ पुष्पित और पल्लवित हुई हैं।

चतुर्वेदी जी अद्यतन व्रजभूमि के सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ता हैं। व्रजभूमि के पुनरुद्धार के लिए उनके हृदय में एक टीस है। व्रजभूमि के सर्वाङ्गीण विकास पर उनका एक चिन्तन है। ग्रन्थ में व्रजभूमि के सम्बन्ध में भी एक खंड होगा। हमारी महत्वाकांक्षा है कि वह खंड अपनी उस सामग्री के कारण जो उसमें होगी व्रज के विश्वकोष की मान्यता प्राप्त करे। यह सब विद्वानों के सक्रिय सहयोग पर निर्भर है। हम इसी अंक में एक अपील सम्पादक-मण्डल की ओर से तथा दूसरी जन्म दात्री व्रजभूमि खण्ड के सम्पादक की ओर से प्रकाशित करते हुए आशा करते हैं कि विद्वज्जन प्रस्तुत ग्रन्थ के निर्माण में हमें अपेक्षित सहयोग प्रदान करेंगे।

भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य

उपरोक्त शीर्षक से मेरे निबन्धों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। कई सहृदय एवं सम्मान्य मित्रों ने पुस्तक की समीक्षा लिखकर मेरे पास व्रज-भारती में प्रकाशनार्थ भेजी है। अपनी ही पुस्तक की समीक्षा व्रजभारती में छापने में मुझे कुछ संकोच हो रहा था। इसको लक्ष्य करके मित्रवर डा० भगवानसहाय पचौरी ने तो अपनी समीक्षा कई समाचार पत्रों में भेजदी और वह अमर उजाला, आज की आवाज दो दैनिक पत्रों और पटना से प्रकाशित साप्ताहिक योगी में प्रकाशित भी हो चुकी है। विद्वद्वर श्री रमेशचन्द्र जी दुबे ने भी एक बड़ी ही सुन्दर, विस्तृत और भव्य समालोचना लिखी है जो कई महीनों से मेरे पास रक्खी है उनका आग्रह है कि वह व्रजभारती में अवश्य प्रकाशित हो। अतः उनके आदेश की अवहेलना न कर हम उसे व्रजभारती के अगले अङ्क में प्रकाशित कर रहे हैं। इस अंक में श्री रमेश गुप्त की जो कि हिन्दी के एक उदीयमान लेखक हैं और हिन्दी के प्रख्यात विद्वान एवं कोषकार श्री कृष्णानन्द जी गुप्त के पुत्र हैं एक समीक्षा इसी अंक में प्रकाशित कर रहे हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रेरक साधक

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ

(परामर्शदाता-मण्डल)—

सर्व श्री काका सा० कालेलकर, श्रीप्रकाश, हरिभाऊ उपाध्याय, श्रीनारायण चतुर्वेदी, कृष्णानन्द गुप्त, सत्यवती मल्लिक, अक्षयकुमार जैन ।

प्रिय महोदय,

श्रद्धेय बनारसीदास जी चतुर्वेदी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व से आप भली-भाँति परिचित हैं । वस्तुतः वह हमारे देश की उन विभूतियों में से हैं, जो विगत अर्द्ध शताब्दी से विभिन्न क्षेत्रों में निस्वार्थ भाव से सेवा कर रही हैं । उन्होंने लेखक के रूप में जहाँ अपनी रचनाओं से हिन्दी के भण्डार को समृद्ध किया है, वहाँ पत्रकार तथा सम्पादक के रूप में पत्रकारिता को उच्चस्तर प्रदान किया है । इतना ही नहीं, उन्होंने अनेक साहित्यिक तथा लोकोपयोगी आंदोलनों का सूत्रपात एवं संचालन किया है । साथ ही निरंतर प्रेरणा और प्रोत्साहन देकर अनेक साहित्य-सेवियों तथा रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं के निर्माण में सहायता पहुँचाई है । पत्र-लेखक के रूप में तो वह अद्वितीय हैं । उनके पत्र मानों प्रेरणा के स्रोत होते हैं । प्रवासी भारतीयों तथा शहीदों के लिये की गई उनकी सेवाओं को कौन भूल सकता है ।

आपको यह जान कर हर्ष होगा कि चतुर्वेदीजी की सेवाओं के उपलक्ष्य में उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने की योजना बनाई गई है । यह ग्रन्थ २०×३० अठपेजी आकार के लगभग छः सौ पृष्ठ का होगा । उसकी सामग्री निम्नलिखित भागों में विभाजित होगी—

१. शुभकामनायें और संस्मरण	सम्पादक यशपाल जैन
२. संक्षिप्त जीवनी	सम्पादक रतनलाल बंसल
३. चुने हुए पत्र और रचनायें	सम्पादक क्षेमचन्द्र सुमन
४. पत्रकारिता के पचास वर्ष	सम्पादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी
५. जन्मदात्री ब्रजभूमि	सम्पादक वृन्दावन दास
६. प्रमुख आन्दोलन और भावी आकांक्षायें	सम्पादक मन्मथनाथ गुप्त

प्रत्येक विभाग की सामग्री का संकलन विभागीय सम्पादक करेंगे और पूरी सामग्री १५ सितम्बर को प्रेस में चली जायगी । ग्रंथ चतुर्वेदीजी की आगामी वर्ष-गाँठ पर २४ दिसम्बर सन् १९६९ को उन्हें भेंट किया जायगा ।

हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि ग्रन्थ चतुर्वेदीजी की प्रतिष्ठा के अनुरूप निकले । पर यह तभी संभव होगा जब हमें आपकी सक्रिय सहायता प्राप्त हो । चतुर्वेदीजी के प्रति आपकी गहरी भावना है । हमें विश्वास है कि इस यज्ञ में आपका पूर्ण सहयोग मिलेगा । ग्रन्थ के विभागों को ध्यान में रख कर आप जो भी सामग्री भेजना चाहें, अविलम्ब भेज देने की कृपा करें । विशेष कृपा ।

भवदीय—

श्रीमन्नारायण, हजारी प्रसाद द्विवेदी, मन्मथनाथ गुप्त, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी
क्षेमचन्द्र 'सुमन', वृन्दावनदास, रमेशचन्द्र दुबे, रतनलाल बंसल, यशपाल जैन ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसा व्यक्तित्व जिसे लोग कम जानते हैं—

कृष्णानन्द गुप्त

(श्री ब्रजवल्लभ गुप्त)

आइये, हम आपको झाँसी जिले के गरौठा नामक स्थान पर ले चलें, देखिये, यह रहा बस स्टैण्ड। यहाँ से कुछ दूर सीधे चलकर बायीं ओर उस सड़क पर मुड जाइये जो नदी की ओर जाती है। एक इमली का ठूँठ वृक्ष आपको मिलेगा और फिर एक नीमका वृक्ष। वहाँ से दस कदम आगे चलिये और आपको एक बडा मकान दिखायी देगा जिसके दरवाजे के मार्ग से आपको किताबों से सजी अलमारियाँ दिखाई देंगी। हाँ, अन्दर आ जाइये। 'अरे, आप तो मुझे किसी पुस्तकों की दूकान में ले आये हैं। 'जी नहीं, यह पुस्तकों की कोई दूकान नहीं हैं। तब फिर कोई कबाड़ खाना या अजायब घर? 'जी, वह भी नहीं। अरे आप बैठिये तो। हाँ, यह देखिये, सामने दो अलमारियों में विभिन्न भाषाओं के कोश देख रहे हैं। यह रहा, इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, यह इन्साइक्लोपीडिया इथिक्स यह मराठी, गुजराती, संस्कृत, बंगला आदि के शब्द कोश और उसी के नीचे एक छोटी सी रैक में रक्खी हुई है 'चिल्ड्रेन्स डिक्शनरी' की आठ जिल्दें और ये पेलिकन, थिंकर्स लाइब्रेरी, एवरी मेन्स लाइब्रेरी आदि सीरीज की दर्जनों पुस्तकें जो विभिन्न विषयों पर हैं और यह रही एक रैक में रस्किन की 'माडर्न पेन्टर्स' की सात जिल्दें यह अनातोलें फ्रांस, विक्टर ह्यूगो, ड्यूमा, मोपासाँ, स्काट, ओ. हेनरी और यह देखिये बंगला साहित्य तथा उसी के पास रक्खी हुई हैं ज्योतिष विज्ञान, पुरातत्व, नृशास्त्र, इतिहास की हिन्दी, अँग्रेजी संस्कृत बंगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं की पुस्तकें। एक पूरी अलमारी विभिन्न भाषाओं की लोकसाहित्य सम्बन्धी ग्रन्थों से भरी मिलेगी। न जाने कितने कहावत-संग्रह आपको दिखाई देंगे। कुछ पुस्तकें उर्दू की भी मिलेंगी और दो-चार टेलुगू और फ्रेंच की भी। किन्तु इन सभी पुस्तकों से परिचित होने में आपको काफी समय लग जायगा। इसलिये इन्हें छोड़िये। अब आप जरा इस बडे चबूतरे पर दृष्टि डालिये, ढेर सारे कागज-पत्र फैले हुए हैं। जहाँ दृष्टि डालिये वहाँ कागज ही कागज, कुछ पुस्तकें भी बेतरतीब पड़ी हुई हैं। दो-चार डिब्बे रक्खे हुए हैं जिनमें पार्कर, शैफर्स, ब्लैकबर्ड, स्वान से लेकर प्रकाश, ऐरो, प्रेसीडेंट आदि विभिन्न प्रकार की कलमों के नमूने आप देख सकते हैं। आप कहेंगे कि इस घर के मालिक को शायद तरह-तरह की कलमें खरीद कर रखने की कुछ सनक सी है। जी हाँ, इसी स्थान पर बैठ कर हिन्दी के ख्यातनामा लेखक और पत्रकार श्री कृष्णानन्द जी अपने लिखने पढ़ने का कार्य करते हैं। लीजिये, वे आ भी गये। दुबला पतला शरीर, खादी का कुर्ता और पायजामा। यदि सर्दी का मौसम हुआ तब एक जाकेट और शाल, बस। आँखों पर चश्मा। गम्भीर मुद्रा। विचार विमग्न, बात बहुत कम करते हैं, पर जब करते हैं तो फिर तेजी से। चाल फुर्तीली। दोनों भौंहों के बीच बनी हुई सिलवटों से आप सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि उन्होंने काफी अध्ययन किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आप कहेंगे कृष्णानन्द ! यह नाम तो हमने बहुत कम सुना है । जी हाँ, आपका ख्याल ठीक है। किन्तु फिर भी अपने क्षेत्र में उनकी काफी ख्याति है। हिन्दी में अपने विषय के अकेले विद्वान हैं। प्रचार से कोसों दूर रहे हैं। अभी उस दिन श्री बनारसी दास जी ने उन्हें लिखा था— 'आपको कुछ न कुछ लिखते रहना चाहिये जिससे लोगों को यह मालूम रहे कि आप जीवित हैं।' उन्होंने उत्तर दिया—क्या करूँ, मन की अजीब हालत हैं । क्या लिखूँ, किसके लिये लिखूँ, समझ नहीं पाता ।" उनका यह अन्तर्द्वन्द्व पुराना है । इधर पन्द्रह-बीस वर्षों से उन्होंने लिखना बन्द कर दिया है। प्राय: गम्भीर भाव से वे यह सोचते रहते हैं कि आखिर प्रजातन्त्र के इस युग में एक सच्चे लेखक का क्या कर्त्तव्य है । उसे किस प्रकार के साहित्य का सृजन करना चाहिये और क्या उसे शासन का कृपा पात्र बनकर उसकी प्रशस्ति करनी चाहिये ? यह भी सम्भव है कि वे समरसेट माम की तरह यह अनुभव करने लगे हों कि अब उनकी इन्द्रियों में इतनी शक्ति नहीं रही जिससे वे साहित्य जगत् को कोई मौलिक अथवा नवीन रचना प्रदान कर सकें।

कुछ भी हो। हिन्दी जगत भली-भाँति उनसे परिचित है। वे पुरानी पीढ़ी के साहित्यकार हैं। उनकी सेवाओं को भुलाया नहीं सकता । आज से लगभग ३०-३५ वर्ष पूर्व उन्होंने कुछ कहानियाँ लिखी थीं और एक सफल कहानी लेखक के रूप में काफी ख्याति अर्जित कर ली थीं। मोपासाँ और ओ. हेनरी उनकी कहानी कला के आदर्श रहे थे । उसी समय बालकों के लिये वैज्ञानिक साहित्य पर भी कुछ पुस्तकें लिखी थीं जिनमें 'जीव की कहानी' और 'पदार्थ परिचय' बहुत पसन्द की गई और साहित्य सम्मेलन की परीक्षा में पाठ्य पुस्तक के रूप में दीर्घ काल तक रहीं। उसीं समय लगभग सन् २६ में गोर्की के प्रसिद्ध लघु उपन्यास 'शेलकश' का भी अनुवाद किया था, जो हम समझते हैं गोर्की की किसी भी रचना का हिन्दी में पहला अनुवाद था। परन्तु उस समय की उनकी सबसे बहुचर्चित पुस्तक 'प्रसाद जी के दो नाटक' हैं । इसमें प्रसाद जी के 'चन्द्र गुप्त' और 'स्कन्द गुप्त' नामक नाटकों की विस्तृत समीक्षा की गई है। यह पहले 'सुधा' में धारावाहिक रूप से छपी थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह पुस्तक स्वयं अपने आपमें एक कृति बन गई । इसमें कृष्णानन्द जी की निर्भीकता, विस्तृत अध्ययन और उनके ऐतिहासिक ज्ञान के दर्शन होते हैं। ऐसी तीखी और स्पष्ट आलोचना सम्भवत: आज तक हिन्दी में किसी ने नहीं की। गालियाँ बहुत मिलीं। पर किसी ने जवाब नहीं दिया। आज सब लोग प्रसाद जी के नाटककार होने में सन्देह करने लगे हैं। पर उक्त पुस्तक की चर्चा कोई नहीं करना चाहता। कृष्णानन्द जी के एक मित्र ने उन्हें लिखा था—'आपके साथ सचमुच मुझे ईर्ष्या है । जिस चीज के लिखने का विचार मैंने आज से महीने भर पहिले किया था वह आपने 'सुधा' में लिख डाली।" यह पुस्तक आज अप्राप्य है। यद्यपि हिन्दी के वे प्राध्यापक जिन्हें प्रसाद जी के नाटकों को विश्व साहित्य की की श्रेष्ठ कृति के रूप में पढ़ाना-पड़ता है गुप्त जी की आलोचना का नाम लेना पसन्द नहीं करते। किन्तु इनमें से शायद किसी को यह पता नहीं कि इस समीक्षा में प्रसाद जी के नाटकों की जो त्रुटियाँ दिखलाई गई थीं उनके अनुसार अगले संस्करणों में सुधार कर दिया गया।

इस पुस्तक के लिखने के बाद ही संभवत: कृष्णानन्द जी ने साहित्य क्षेत्र से सन्यास ले लिया था। पर, तत्कालीन तथा बाद की पत्र-पत्रिकाओं में—'हंस', 'सुधा', 'माधुरी', 'प्रभा',

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'सरस्वती' ज्ञानोदय', 'नया जीवन' 'सा. हिन्दुस्तान', 'नवजीवन' आदि में वे विभिन्न विषयों पर अनेकों लेख तथा कहानियाँ समय-समय पर लिखते रहे। कानपुर के 'प्रताप' से तो उनका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। पत्रकारिता का प्रारम्भिक ककहरा तो उन्होंने स्व. गणेश शंकर जी विद्यार्थी के निकट बैठ कर ही प्राप्त किया। साहित्य क्षेत्र से उनके इस प्रकार अचानक गायब हो जाने पर लोगों ने उन्हें फिर एक बार सन् ५०-५१ में प्रयाग में 'संगम' का कार्य भार संभालने के लिये बुला भेजा। पर उनका यह साहित्यिक प्रवेश भी बहुत अल्पकाल तक ही रहा।

उनके विस्तृत अध्ययन, ज्ञान गरिमा और पैनी निरीक्षण शक्ति से आप प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे। किसी भी विषय की गहराई में जाना उनकी विशेषता हैं। जब तक किसी विषय पर ठोस और प्रामाणिक अध्ययन नहीं कर लेंगे तब तक उस विषय पर नहीं लिखेंगे। यही कारण है कि वे शीघ्र कुछ लिख नहीं पाते। जब तक किसी विषय की पूरी सामग्री उनके सामने नहीं होती. अपनी कलम नहीं उठाते। किन्तु जो कुछ लिखते हैं ठोस लिखते हैं। श्री शिव सहाय जी की 'बुन्देल खण्ड की ग्राम्य कहानियाँ' नामक पुस्तक की भूमिका लिखने में उन्हें तीन महीने लग गये। पंडित बनारसी दास आज भी कभी-कभी लिख देते हैं—"वह भूमिका आपने कमाल की लिखी थी। उसे केवल आप ही लिख सकते थे। उसे उच्च कक्षा की किसी पाठ्य पुस्तक में सम्मिलित किया जाना चाहिये।" प्रसंगवश हमें उनसे मालूम हुआ कि अभी उनको बहुत काम करने की इच्छा है। कई पुस्तकों और उपन्यासों के प्लाट उनके मस्तिष्क में भरे पड़े हैं। पर जब 'सरस्वती' में हिन्दी विश्वकोश' की आलोचना लिखने में ही उन्हें सात महीने लग गये थे तब उन पुस्तकों और उपन्यासों के उनके मस्तिष्क से बाहर आने में हमें सन्देह है। किन्तु विश्व कोष। की उनकी वह आलोचना विलक्षण और अद्भुत है। अब तक किसी ने उनका कोई जवाब नहीं दिया।

यों उन्हें इतिहास, नृशास्त्र और ज्योतिर्विज्ञान से विशेष प्रेम है। एक अलमारी के तीन खाने ज्योतिः विज्ञान की पुस्तकों से भरे हैं। नक्षत्र दर्शन से उन्हें इतना प्रेम है कि रात्रि में ८-९ बजे आप पहुँचे तो आश्चर्य नहीं भीतर आगन में खडे आकाश की ओर मस्तक उठाये किसी तारे को पहचानने की कोशिश कर रहे हों। पर उनके अध्ययन का मुख्य विषय लोक-साहित्य है। गत ३०-३५ वर्षों से वे बराबर लोकसाहित्य का अध्ययन करते आ रहे हैं। टीकमगढ़ में रहते समय उन्होंने जिस 'लोक वार्त्ता' नामक पत्रिका का शुभारम्भ किया था वह हम समझते हैं अपने विषय की एक अकेली पत्रिका थी। सुनीति बाबू, सरदार किवे, वैरियर एलविन और वासुदेव शरण जी जैसे सुयोग्य पडित उसमें बराबर लिखते रहे। सुनीति बाबू ने उसे भारतीय भाषाओं की अनोखी पत्रिका बनाया था। जहाँ तक हमें मालूम हैं गुप्त जी पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने हिन्दी में ग्राम-साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन पर जोर दिया। परन्तु टीकमगढ़ में रहते समय उन्होंने जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया है वह है 'बुन्देली शब्द कोश' का निर्माण। यह शब्द कोश महाराज ओरछा की प्रेरणा एवं आर्थिक सहायता से तैयार किया गया था। स्वयं महाराज उसमें रुचि लेते रहे थे सप्ताह में एक दिन वे गुप्त जी को इस काम के लिये देते थे। लगभग ५०० व्यक्तियों ने इस कोश की सामग्री भेजी। किसी ने शब्द, किसी ने मुहावरे, किसी ने गीत। टीकमगढ़ से आने के बाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्होंने अनवरत रूप से ५ वर्ष के परिश्रम से कोश तैयार किया। हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने इसे प्रकाशनार्थ स्वीकार भी कर लिया था। किन्तु कुछ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुई कि गुप्त जी ने पाँडलिपि नहीं भेजी। पाँडुलिपि को एक सन्दूक में बन्द करके रख दिया। परिणाम यह हुआ कि उसके आरम्भ के कुछ हिस्से में दीमक ने छेद कर दिये। अब 'ब्रज साहित्य-मण्डल, मथुरा' ने उनके सुझाव और सहयोग से हिन्दी की स्थानीय बोलियों के संग्रह और प्रकाशन की एक वृहद योजना बनाई है जिसके अन्तर्गत बिलकुल नये रूप में उक्त शब्द कोश को वे तैयार कर रहे हैं और यथासमय वह शीघ्र ही छपेगा। उनकी एक पुस्तक 'बुन्देली कहावत कोश' आज से लगभग आठ वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश के सूचना विभाग ने प्रकाशित की थी जो एक महत्वपूर्ण कृति है तथा उनकी एक दूसरी पुस्तक 'हिन्दुस्तान कहावत कोश' अभी हाल ही में (मार्च १९६८) नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली ने प्रकाशित की है।

हमें लगभग एक सप्ताह तक गुप्त जी के निकट सम्पर्क में रहने का अवसर मिला है। इस बीच हमने उन्हें बहुत निकट से देखा है। उनके जीवन की सफलता और असफलता की कहानी तथा अनेक मनोरंजक संस्मरणों को सुना है, साथ ही देखा है विन्ध्या गिरि के समान उनके शिष्ट स्वाभिमान को भी अपने इस स्वाभिमान और सम्मान की रक्षा के लिये उन्हें सदैव आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की। पत्नी की बीमारी के कारण चिकित्सा की सुविधा की दृष्टि से वे विन्ध्य-प्रदेश के सूचना-विभाग में गये। रातों रात गजटेड आफीसर हो गये। किन्तु विभाग के मन्त्री की एक कार्यवाही के कारण जिसे उन्होंने अत्यन्य अनुचित समझा, १५ दिन के अन्दर ही त्याग पत्र दे दिया। उस समय वासुदेव शरण जी ने एक मन्त्री को लिखा कि कृष्णानन्द जी को त्याग पत्र न देने दें। वे हिन्दी में अपने विषय के अकेले जानकार है। साथ ही गुप्त जी को भी लिखा कि त्याग पत्र न दें। अग्रवाल जी के वे पत्र बड़े हार्दिक और मैत्री भाव से भरे हैं। पर गुप्त जी तो त्याग पत्र दे ही चुके थे और वह स्वीकृत भी हो गये। स्वयं महाराज ओरछा की उन पर बहुत कृपा थी। न भी रही हो, तब भी वे चाहते तो उनसे बहुत कुछ लाभ उठा सकते थे। पर महाराज की उस कृपा से गुप्त जी ने अनुचित लाभ उठाने की मन में कभी कल्पना भी नहीं की। स्व० एन. सी. मेहता जब देश के स्वतन्त्र होने के बाद केन्द्रीय सूचना विभाग के सचिव होकर पहुंचे तो उन्होंने कृष्णानन्द जी को बुलाकर तीन दिन के भीतर एक उच्च पद पर नियुक्ति करदी। किन्त कुछ कारणों से उन्हें वह पद पसन्द नहीं आया और जिस दिन नियुक्ति पत्र मिला उसके दूसरे दिन त्याग पत्र देकर चले आये। यह मेहता साहब का सरासर अपमान था, पर उन्होंने इसकी कोई परवा नहीं की। लोगों ने अवश्य उन्हें पागल समझा होगा। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी इनके साथ थे, जब वे डाइरेक्टर के पास त्याग पत्र देने गये, तब उनके शब्द थे -- "मि. गुप्ता, आप यह क्या कर रहे हैं ? यह नियुक्ति तो सरदार (सरदार पटेल) के विशेष आदेश से हुई है।" उनके दो चार मित्र ही इस घटना को जानते थे। इसमें सन्देह नहीं कि वे सदैव अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहे और कभी किसी के आगे अवनत नहीं हुए।

एकान्त उन्हें पसन्द हैं। अध्ययन और अच्छी पुस्तकों का संग्रह ही उनका व्यसन है। वे किसी भी प्रकार की राजनीति से सदैव दूर रहते हैं, यद्यपि सक्रिय रूप से उन्होंने कभी किसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजनीतिक आन्दोलन में भाग नहीं लिया, पर प्रारम्भ से ही वे गाँधी जी के भक्त और राष्ट्रीय विचारों के व्यक्ति रहे हैं। जब वे आठवीं कक्षा में थे तभी स्व०गणेश जी के सम्पर्क में आ गये थे। उनके यह कहने पर कि—देखो सरकारी नौकरी मत करना, गुप्त जी ने अपने सारे प्रमाण पत्रों को जला दिया था और कभी नौकरी न करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। इस बात को कम ही लोग जानते होंगे।

वे एक फरवरी को अपने जीवन के ६६ वर्ष पूरे कर चुके हैं। पर इस आयु में भी हमने उन्हें अनवरत रूप से कई घंटे श्रम करते हुए देखा है। जीवन ही उनका साहित्य है और साहित्य ही उनका जीवन है।

आवश्यक निवेदन

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ

प्रिय महोदय !

श्रद्धेय बनारसीदास जी चतुर्वेदी के अभिनन्दन ग्रन्थ विषयक परिपत्र अन्यत्र मुद्रित हैं। आप्से प्रार्थना है कि आप ग्रन्थ के ब्रजभूमि खण्ड के लिये हमें अपना मूल्यवान् लेख भेजें। लेख १५ सितम्बर तक हमारे पास आ जाय तो बड़ी कृपा हो।

हमें इस खण्ड के लिये १५० पृष्ठ मिले हैं। हम उन्हीं में व्रज की उत्तम झाँकी प्रस्तुत करना चाहते हैं। ब्रज का साहित्य, ब्रज की संस्कृति और उमका विश्व को योगदान, ब्रज के धर्म सम्प्रदाय, ब्रज का दर्शन, उसका लौकिक और आध्यात्मिक तत्व, ब्रज का लोकसाहित्य, ब्रज की लोक कथाओं में जन कल्याण की भावना, ब्रज के लोक गीतों में मर्मस्पर्शी भावनायें, राष्ट्रीयता की भावनायें, भक्ति दर्शन, ब्रज के साहित्यकार, कवि, कलाकार, चित्रकार, पहलवान आदि, ब्रज की कलायें, उद्योग धन्धे, बन-उपवन, वृक्ष पुष्पादि, तीर्दस्थल, ब्रज के मन्दिर देवालय आदि, उत्सव त्यौहार और मेले आदि अनेक विषय हैं जिनसे से किसी एक पर भी लिखा हुआ लेख प्रस्तावित झाँकी का एक विशिष्ट अङ्ग बन सकता है।

श्रद्धेय चतुर्वेदी जी ब्रजभूमि के पुनर्निर्माण और सर्वाङ्गीण विकास के पक्षपाती हैं, अतः इस खण्ड के निर्माण में हमारा यही उद्देश्य होना चाहिये।

कृपा कर अपना महत्वपूर्ण लेख शीघ्र ही भेजने की व्यवस्था करें। आपका सक्रिय सहयोग प्रार्थित है। पत्रोत्तर से बाधित करें।

—वृन्दावनदास
सम्पादक जन्मदात्री ब्रजभूमि-खंड

प्रकाश भवन
मथुरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रसिक अनन्य नृपति स्वामी श्री हरिदास जी विरचित केलिमाल : एक रसास्वादन

(डा० भगवान सहाय पचौरी, एम.ए., पी० एच० डी०)

प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन हिन्दी के उदीयमान साहित्यकार और जगमगाते सम्पादक श्री राजेन्द्र रंजन एम० ए० की प्रातिभ, प्रज्ञ और प्रौढ़ लेखनी ने किया है। श्री रंजन के लिए उक्त विशेषणों का प्रयोग मैं सटीक कर रहा हूँ। मैं केलिमाल जैसे अद्भुत, अपूर्व, सामान्यजन ज्ञानातीत और विशुद्ध आध्यात्मिक रहसि-ग्रन्थ के अवलोकन की भी क्षमता नहीं रखता, उसके भाष्य समीक्षण अथवा सम्पादन की कल्पना भी मेरे लिए क्लिष्ट होगी। केलिमाल सामान्य रचना नहीं और न ही इसका धरातल सामान्य है। श्री रञ्जन को अनेक धन्यवाद सम्पृक्त साधुवाद कि उन्होंने इस रस में निमग्न होकर इस अनूठे ग्रन्थ के रसास्वादन के वातायन अपनी मीमांसक प्रतिभा से उन्मुक्त किये। यही नहीं एक ईमानदार सम्पादक की हैसियत से उन्होंने 'केलिमाल : मीमांसा' शीर्षक से जो भाष्यवत लिखा है, वह अपने में इतना सम्पूर्ण और स्पष्ट बन पड़ा है कि मुझे सहर्ष उनके सम्पादक को पुनः साधुवाद देना अनिवार्य प्रतीत होता है। जब मीमांसा ही इतनी रसोद्रिक्त अथच द्रवणशील है तब मूल केलिमाल कैसा होगा, इसकी सहज ही कल्पना नहीं की जा सकती। एक सम्पादक से जिस तलस्पर्शी ज्ञान की अपेक्षा रहती है, जिस न्याय, निष्कपटता, तटस्थता और सत्य-निष्ठा की अनिवार्यता उसमें वांछनीय है, इन सबकी रञ्जन जी में विद्यमानता अतर्क्य रूप में है। प्रस्तुत सम्पादन इसका सुलभ प्रमाण प्रस्तुत करता है। स्वामी हरिदास जैसे ऋषि-महर्षियों की वाणी को उनके वास्तविक स्वरूप में आज अवतरित करने के लिए उन ऋषियों की आत्मा में प्रवेश करना आवश्यक है। मैं समझता हूँ प्रस्तुत सम्पादन साक्षी है कि सम्पादक इस कार्य में सफल उतरा है। केलिमाल भावुक सिद्ध पुरुषों के मनन-रमण की चिरन्तन स्थली है। इसकी मीमांसा भी कम भावुक नहीं बनी।

आरम्भ में विद्वान् सम्पादक ने स्वामी जी के दो ग्रन्थों की चर्चा कर दी है। केलिमाल 'परम काव्य' है। केलिमाल के प्रतिपाद्य का परिचय देने से पूर्व सम्पादक विषयगत दर्शन की व्याख्या करना नहीं भूला। राधा-नाम्नी पराशक्ति और श्याम नामक परात्पर पुरुष की तत्त्वदर्शिनी व्याख्या प्रस्तुत करता हुआ वह अध्यात्मवाद के रस परिपाकीय विविध विधानों के भक्तिसागर में डूबता उतराता श्यामाश्याम के अभेद, एक रस, एक तत्व, एक रंग, एक सौन्दर्य, एक आभा और एक देव की भक्ति परक मीमांसा प्रस्तुत करता है। आरम्भिक छः पृष्ठों में केलिमाल का विषय-प्रतिपाद्य, दर्शनादि, उसका साहित्यिक-सौन्दर्य-रस, अलङ्कार, भाषा-सौरस्य, कलात्मक सामरस्य, संगीत पक्ष उल्लिखित है। इस सम्बन्ध में मीमांसा स्वयं में सुग्राह्य, सुबोध और सम्पूर्ण है। इतिहास-परकता के चक्कर में सम्पादक ने कदाचित् जानबूझकर नहीं पड़ना चाहा। क्योंकि इससे रस-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्याघात भी पड़ता और मीमांसा भी बढ़ती। स्वामी जी के व्यक्तित्व के अक्षयवट की शीतल छाया में उनके कृतित्व का अवगाहन करना ही सम्पादक का कदाचित् अभीष्ट रहा प्रतीत होता है और इस दुरूह कार्य को करने में वह पूर्ण सफल हुआ है, मेरा ऐसा विश्वास है। श्यामाश्याम के रहसि-केलि-गत नाना रास-विलासों के गतिमय चित्रों के रेखांकन-दर्शन बड़े स्पष्ट बन पड़े हैं। बीच-बीच में नख-शिख-स्वरूपों की मनोहारी-तड़ित झांकियाँ भक्त हृदयों को उद्दीप्त और साहित्यिक हृदयों को उल्लसित करने को पर्याप्त हैं। इतना सब कुछ देखने पर हृदय की जिज्ञासा उछलकर सामने आती है और कहती है कि काश, पूरे ग्रन्थ का भाष्य इसी भाषा, इसी शैली, इसी भावुकता और इन्हीं सात्विक क्षणों में पढ़ने को मिल पाता। पर जो कुछ है वह रसिकों को रसाप्यायित करने में पूरा-पूरा समर्थ है।

इस सुकृति (केलिमाल) के संगीत सौन्दर्य पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। इसके सम्पादन की कथा भी अन्त के पृष्ठों में अङ्कित की गई है।

मूल ग्रन्थ में १११ पद हैं, जो २०″×३०″ के चौबीस पृष्ठों में सुमुद्रित हुए हैं। ग्रन्थ की पुष्पिका इस प्रकार है:—"इति श्री रसिक अनन्य नृपति स्वामी श्री हरिदास विरचित केलिमाल (परम उज्वल सिंगार रस के पद) संपूरन। श्री स्वामी जी की बिना कृपा ये गुह्य रस की बात मन में आवनी दुरलभ है।" प्रत्येक पद के राग का नाम, समय, स्थान या अवसर का उल्लेख आरम्भ में कर दिया गया है जिससे रसोद्रेक के साथ-साथ भावार्थ में भी सहायता सहज ही मिल जाती है।

कुल मिला कर सम्पादन कार्य कुशलता और तन्मयता के साथ सम्पन्न हुआ है, जो नितान्त वैज्ञानिक और वास्तविक है। मीमांसा में कहीं-कहीं भाषा के चिन्त्य प्रयोग हैं यथा तत्वाभिरामिणी, स्वेच्छा विलासिनी, सौन्दर्यातिशयशालिनी (पृष्ठ क) रागनियों, अहर्निश, (पृष्ठ ख) अविना सम्बन्ध सिद्ध (पृष्ठ ग) प्रयलज (पृष्ठ घ) आदि। तत्व+अभिराम=तत्वाभिराम। इसका अभिरामिणी नहीं बनता हां अभिरमणीय हो तो आपत्ति नहीं। 'स्वेच्छा' शब्द 'उच्छृंखलता' के अर्थ में भी आता है अत: प्रसंगगत और कुछ होता तो अच्छा था। 'सौन्दर्यातिशयशालिनी' के स्थान पर अतिशय सौन्दर्यशालिनी अधिक उपयुक्त होता। 'अविना सम्बन्ध सिद्ध' शब्द व्याख्या चाहता है। मेरे विचार में 'बिना सम्बन्ध सिद्ध' में लेखक ने 'अ' उपसर्ग लगाया है, जो नया ही प्रयोग प्रतीत होता है। 'प्रयलज' कदाचित् 'प्रलयज' का विकृत हो गया है। प्रेस सम्बन्धी भी कुछ त्रुटियां प्रवेश पा गई हैं यथा सिंहनी (सिंहिनी) आरंभटी (आरभटी), वारीकियों (बारीकियों—पृष्ठ ध; माष्य (भाष्य), संमवत: (संभवत:) पृष्ठ छ; द्रष्टव्य (द्रष्टव्य), क्रीडा (क्रीड़ा,) प्रे`म प्रेम) पृष्ठ च आदि।

संक्षेप में यह एक बहुगुण सम्पन्न कुशल सम्पादन का आदर्श है। सम्पादक की विनम्रता उपेक्षा की दृष्टि नहीं चाहती। उन्होंने कितनी ही शीघ्रता में सम्पादन किया हो, यह प्रामाणिकता और असंदिग्धता के सर्वाधिक समीप है। इसके सम्पादक 'दिल्ली के' प्रमुख सवारों में से एक हैं। उनसे आशा की जाती है कि वे अग्रिम किश्त में केलिमाल का विद्वत्तापूर्ण भाष्य भी स्वामी श्री हरिदास संगीत समिति के माध्यम से प्रस्तुत करने में सफल होंगे।

मुझे विश्वास है यह अधिकारी विद्वानों की चर्चा का विषय बनेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ : श्रीरामचन्द्राभरन

(श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर' झाँसी)

गोप कवि कृत हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथ, श्रीरामचन्द्राभरन की प्रति सं० १८८६ वि० में लिखित प्राप्त हुई है।

शिव सिंह सरोज में गोप कवि का निम्नलिखित कवित्त हीं प्रकाशित है:—

गनन के आगे पग गुन देखि भाषत हौं,
जैसे होत कूच के नगाड़े की उघट में;
बीरी बीच सीरी तेहि रावरे न जानत हौ,
जानत हौ सोड़ी तुम जोड़ी होत नट में।
एते पर राधिका की मा को नाम चाहत हौ,
देखौ नाहीं सुनौ कहूँ अघट उघट में;
'गोप' चतुराई की जनावत हौ गूढ़ बात,
मजनू की रट में सु साहब के घट में।

मिश्र-बन्धु-विनोद (द्वितीय भाग) में इस प्रकार विवरण है:—

नाम (६६३/३) गोप

ग्रंथ– रामालंकार

रचनाकाल– १७७३

विवरण– महाराज पृथ्वीसिंह ओरछा नरेश के यहाँ थे।

विनोद में न तो कविता के उदाहरण दिए गए हैं और न अन्य ग्रंथ का उल्लेख ही है इससे प्रतीत होता है कि शोध करते समय सुबुध मिश्र-बन्धुओं को न तो उनकी स्फुट कविताएँ मिल सकीं और न रामालङ्कार अथवा श्रीरामचन्द्राभरन की ही प्रति। यदि इनमें से एक भी ग्रंथ उपलब्ध होगया होता तो विनोद में कविता के उदाहरण अवश्य दिए जाते।

ओरछा नरेश श्री पृथ्वीसिंह संवत् १७९२ वि० से १८०६ वि० तक ओरछा राज्य की गद्दी पर रहे। इनके ही राजत्वकाल में गोप कवि ओरछा में आए और राज्याश्रय में रहे। श्रीरामचन्द्राभरन के प्रारम्भ में अपना वंश-परिचय, आश्रयदाता का विवरण और ग्रंथ-निर्माण करना लिखा है:—

दक्षिन ते दिच्छित प्रगट, नंदनाथ अवतार;
राम कृश्न तिनके तनय, गोकुलस्य सिरदार ॥ २ ॥
तिनके सुत बलिभद्र जू, जप तप जग्य सुभाइ;
वल्लभ कुल प्रभु जगत गुर, पूजे जिनके पाइ ॥ ३ ॥
कंचन की पचहड़िदरी, अनुलदाउ कौ ठाम;
भट्टन मन सब ते सरस, महापात्र तुव नाम ॥ ४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तिनके सुत जदुनाथ कवि, पण्डित परम प्रवीन;
रास विलास प्रकास कर, सदा भागवत लीन ॥ ५ ॥
तिनके प्रगटे तीन सुत, जेठे केसव राइ;
मझले सुत कवि गोप जू, बाल कृष्ण लघु भाइ ॥ ६ ॥
नगर औड़छे आई कै, प्रथीसिंध नृप पास;
बैठ जग्य साला सरस, कीन्हौ ग्रन्थ प्रकास ॥ ७ ॥
भुक्त मुक्त जाते बनै, उक्त जुक्ति जस वोय;
रामचन्द्र आभरन कौ, वरन कहै कवि गोप ॥ ८ ॥

उक्त विवरण दे देने के पश्चात् ग्रंथ में अलङ्कार के लक्षण, उपमा, उपमेय, उपमान वाचक लुप्ता, धर्मलुप्ता, वाचक धर्मलुप्ता, इत्यादि विषयों का विवेचन किया गया है ।

पूरे ग्रन्थ में २३२ छंद हैं । अंतिम पृष्ठ पर उल्लेख है:—श्रीसावसदावयनम: सं० १८८६ माघ १ शुक्लपक्षे सोमवासरे संपूरनं लिषतं बाबा गोपालदास..........

ग्रन्थ में अलङ्कारों के लक्षणों पर भरपूर प्रकाश डाला गया है । यथा:—

प्रथम कहत उपमेह को, बहुर कहत उपमान;
वाचक साधारन धरम, भाषत गोप सुजान ॥ १० ॥
जाकौ समता दीजिये, सो उपमेय प्रमान;
जाकी समता कीजिये, ताहि कहत उपमान ॥ ११ ॥
समता सूचक बीच पद, वाचक सो निरधार;
जो साधारण धर्म है, द्वै पद पोषण हार ॥ १२ ॥
जहँ ये चारों पाईये, पूरन उपमा सोइ;
जहँ जाई नहिँ पाईये, लुप्ता कहिये जोइ ॥ १३ ॥

पूरण उपमा

पल्लव से पाणि मृदु, कंज से विसाल नैन,
काम सो सरूप आठौ जाम सरसतु है;
धनुष सी भौहै वंक, बिंब से अधर लाल,
बचन सुधा से मीठे, मंद बिहसतु है ।
दाड़िम के बीज से विराजत दसन गोप,
घन सौ सुतनु घनौ रस बरसतु है;
निरषत संतन के सीतल करत नैन,
रामचन्द्र जू कौ मुष चन्द्र सौ लसतु है ॥ १४ ॥

उपमेय लुप्ता

सोभा के सिँगार मुनि मन के हरनहार,
सुन्दर सुठार अरि भार कौ कराल है;
पल दल गंजन है, निज दल रंजन है,
देह दुख भंजन है, दीन कौ दयाल है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'गोप' कहै सोहत गँभीर गुन नीर भरे,
ऐसे झलकत छलकत छबि जाल है;
करुना निधान सुखधाम रामचन्द्रजू के,
मीन से चपल जुग कंज से विसाल है ॥१५॥

उपमान लुप्ता

ठौर-ठौर भरमत कहा, सीष हमारी मान;
गोप कहै मन मानिये, रामचन्द्र सौदान ॥१६॥

वाचक लुप्ता

गोप सुता बोलत मधुर, मंद-मंद मुसक्यात;
राम काम सुन्दर बनौ, निरषत नैन सिरात ॥१७॥

धर्म लुप्ता

है सरजू तट पीत लसै, पट एक ही ठौर दुवौ अवरेषे;
काहू नरेस के कौन हू देस, के कोमल केस के वेस विसेषे ।
डोलत बोलत बोल अमोलक लोल कलानि कुतूहल लेषे,
हार गरे सुकुमार महा मति, आज कुमार वे मार से देषे ॥१८॥

वाचक धर्म लुप्ता

चन्द्र वदन पंकज नयन, घन तन सुर तर हाथ;
रवि भूषन कवि गोप कहि, ये रतिपति रघुनाथ ॥१९॥

वाचक उपमेय लुप्ता

धनुष बान कर में लिये, मन मोहन अभिराम;
गोप कहै ये काम है, जे पुजवत मन काम ॥२०॥

वाचक उपमान लुप्ता

बरसत सरसत सरस रस, दरसत पुजवत काम;
गोप कहै तन की सबै, तपनि बुझावत राम ॥२१॥

दीपक लक्षणं

धर्म जुदे जहाँ पाईयौ, क्रिया एक ही होय;
सोई दीपक जानिये, गोप कहै कवि लोय ॥७०॥

उदाहरण

गोप कहै कुल सील करि, धन करि सोहतु धाम;
रवि राजत है तेज करि, बहु प्रताप कर राम ॥७१॥

व्याज स्तुति लक्षणं उदाहरण

निन्दा मिस अस्तुति करै, व्याजस्तुत है सोय;
राम पातिकिनि निकर हौ, संतन के सम सोय ॥१०२॥
जहँ औगुन के नाम तें, गुन की गोप प्रतीति;
व्याज स्तुति तासौं कहत, लषि ग्रन्थनि की रीति ॥१०३॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधम उधारन विरद है, दीनबन्धु यह नाम;
गनिका तारन गोप कहि, पतितनि की गति राम ।।१०४।।

अस्तुति निन्दा लक्षण

जबहि बड़ाई के मिसहि, निंदा प्रगटै आय;
अस्तुति निंदा तासौं सबै, कहत गोप कविराय ।।१०५।।

उदाहरण

तूँ हिरनाकुस अति बली, बड़ौ प्रतापी आय;
राम कहत प्रहलाद कौं, गिरि तैं दियौ गिराय ।।१०६।।

स्वभावोक्ति

जाति क्रिया गुन द्रब्य कर, चारौं उक्त सुभाउ;
न्यारे न्यारे भेद करि, वरनत है कविराउ ।।२०४।।

उदाहरण

अति उदंड भुजदंड, मंड को दंड चंड करि;
षंडि षंडि षल मुंड, मुंड मंडित चमुंड हरि ।
लष त्रसुद्ध अरि क्रुद्ध, क्रुद्ध उद्धति विरुद्ध गति;
करत जुद्ध अउद्धउद्ध, आजन्म सुद्धमति ।
वलवंत संत गुनवंत कर,
गोप कहिय पारस परस;
सुष धाम काम तरवर सरस,
रामचन्द्र सुन्दर दरस ।।२०५।।

—इत्यादि

ओरछा राज्य अपने प्रारम्भिक काल से ही कवियों और साहित्यकारों का सम्मान करता रहा है । ओरछा नरेश रुद्र प्रताप ने कवीन्द्र केशव के पितामह कृष्णदत्त मिश्र को अपना गुरु मानकर पौराणिक वृत्ति दी थी । उनके पुत्र अगाध पाण्डित्य से विभूषित, शीघ्रबोध जैसे सुप्रसिद्ध ग्रन्थ के प्रणेता काशीनाथ मिश्र भी ओरछा-दरबार के रत्न रहे । उनके पुत्र बलभद्र, कवीन्द्र-केशव और कल्याण तीनों ही भाई कवि थे और ओरछा दरबार के सम्मानित कवि ।

कवीन्द्र-केशव के पुत्र बिहारीदास और कल्याण के प्रपौत्र हरिसेवक मिश्र भी तत्कालीन ओरछा नरेशों द्वारा सम्मानित हुए । हरिसेवक मिश्र ने तत्कालीन ओरछानरेश उदोतसिंह और युवराज पृथ्वीसिंह के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थ 'कामरूप-कथा-महाकाव्य' में प्रशंसनीय उल्लेख किया है ।

ओरछा-दरबार के राज्य-पुस्तकालय में अब भी सहस्रों हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षित हैं । समूचे राष्ट्र में बिखरे हुए, हमारे ये हस्तलिखित ग्रंथ, हमारी राष्ट्रीय-निधि हैं उनके उद्धार और प्रकाशन की व्यवस्था अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित हो सके तो उत्तम हो । हमारी केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारें भी इस दिशा में सक्रिय सहयोग और प्रोत्साहन दें तो यह निधि धीरे-धीरे प्रकाश में आ सकती है । हिन्दी-भाषा-भाषी इस ओर और भी अधिक संलग्नता से कार्य करें ऐसी आवश्यकता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोकर्णेश्वराष्टक

(प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, सागर विश्वविद्यालय, सागर)

मथुरा के ज्यो० राधेश्यामजी की कुल-परम्परा विद्यानुरागिणी रही है। इसका स्पष्ट प्रमाण हमें इस वंश के उस विशाल 'विद्वद्विलास पुस्तकालय' में उपलब्ध है जो **द्विवेदी-कुल** की एक महती निधि रही है। इस पुस्तकालय के बहुसंख्यक ग्रन्थ अब वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय एवं देश के अन्य अनेक संग्रहों में सुरक्षित हैं।

इस संग्रह में मुझे श्री राधेश्याम द्विवेदी की कृपा से २ पत्रों का एक हस्तलेख देखने को मिला था। इन पत्रों का आकार ४½ इञ्च × ३ इञ्च है। संग्रह की ६१७ संख्या इस पर पड़ी है। पुस्तक का नाम 'गोकर्णेश्वराष्टकम्' दिया है। इसमें मथुरा नगर के उत्तर में विराजमान 'श्री गोकर्णेश्वर महादेव' की स्तुति आठ श्लोकों में दी है। स्तुति के पूर्व एक श्लोक में मंगलाचरण तथा अन्त के चार अनुष्टुपों में माहात्म्य तथा अष्टक-निर्माण की तिथि (सं० १८८१) दी है।

हम यहाँ मूल पाठ दे रहे हैं:—

श्रीगणेशायनमः

यं देवं समुपासते मुनिगणास्सिद्धास्तथापन्नागा-
स्तंशंभु प्रणमाम्यहं च सततं गोकर्णनाथं विभुम्।
आनंदैक निकेतनं सुरवरं पूज्यं सदाभीष्टदं,
संसारांबुधितारिणे च वरदं ज्ञानप्रदं शंकरम्॥
गोकर्णेश, नमामि त्वां पावर्ती वल्लभं सदा।
सर्वावयवसंयुक्तं भव्यांगं च वरप्रदं ॥१॥
मथुरोत्तार भागे च स्थितं देवमुमापतिम्।
परात्परतरं ज्योतिर्ध्यायितं कृष्ण वल्लभम् ॥२॥
सरस्वत्या संगमे यमुना यत्र राजते।
तस्मिन्स्थाने कृतावासं सर्वाभीष्ट प्रदंशिवं ॥३॥
अनेक विघ्नहर्तारं भक्तानां शत्रुनाशनं।
गजानन प्रियंदेवं भक्त्या प्रीतिदं सदा ॥४॥
एकरोदीकरेभ्यास (?) महीन ग्रीवमीश्वरं।
ब्रह्मेन्द्राद्यैश्च संपूज्यं नारदाद्यै स्तुतं सदा ॥५॥
आशुतोषमुमानाथं गोकर्णेश्वर नामकं।
योगिनां ध्यानगम्यं च भक्तानां सुलभं सदा ॥६॥
जयदेव महादेव पार्वतीश सदाशिव।
संसारार्णवमग्नस्य त्वमेवशरणं मम ॥७॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्वतः परतरोदेव त्रिलोक्यां नैव विद्यते ।
इति हेतोर्महादेव कृपां कुरु नमोऽस्तुते ॥८॥

(माहात्म्य)·········

श्लोकाष्टकमिदंयो वै पठेद्वाश्रृणुवात्सदा ।
तस्य शंभोःप्रसादेन किंकरा (:) सर्व सिद्धयः ॥१॥
मथुरानाथ कृतं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयात् सदा ।
तस्य शंभोः प्रसादेन सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥२॥
जेष्ठ शुक्ल शुभे पक्षे तृतीया रविवासरे ।
श्री विक्रम गते राज्ये इंद्वगाष्टकभूमिते ॥३॥
कृतमेतन्मया स्तोत्रंमथुरायां स्थितेन च ।
पठंतु सततं भक्त्या कृपां कृत्वा मनोपरि ॥४॥
इति श्री मथुरानाथ कृतं गोकर्णेश्वराष्टकं समाप्तं ॥

गोकर्णेश्वर महादेव की यह स्तुति उसके रचयिता भक्त कवि के सरस उद्गारों को व्यक्त करती है । अष्टक के श्लोक सं० २ तथा ३ से गोकर्णेश्वर प्रतिमा की स्थिति मथुरा नगर के उत्तर में यमुना तथा सरस्वती सरिताओं के संगम पर बताई गई है । यह संगम आज भी प्रसिद्ध है । कुछ वर्ष पूर्व इस स्थान के समीप मैंने उत्खनन कराया था, जिसके फलस्वरूप गुप्तकाल तथा उसके पूर्व के अनेक कलापूर्ण पाषाण अवशेष वहाँ प्राप्त हुए । इन अवशेषों से पता चला कि कुषाण तथा गुप्त युगों में वहाँ बौद्ध स्तूपों तथा मूर्तियों का निर्माण हुआ । वर्तमान गोकर्णेश्वर-टीला से बौद्ध एवं वैदिक देवताओं की अनेक प्रतिमाएं मिली हैं । जिस प्रतिमा को आज 'गोकर्णेश्वर महादेव' माना जाता है उसके स्वरूप को देखते हुए कुषाण-शासकों का काय-परिमाण प्रतिमाओं का स्मरण हो आता है । कुषाणों के शासन-काल में इस स्थान की बड़ी उन्नति हुई ।

'गोकर्णेश्वराष्टक' स्तोत्र की रचना के समय के बहुत पहले उक्त प्रतिमा को भगवान् शिव की मूर्ति स्वीकार कर लिया गया था । कवि श्री मथुरानाथ द्वारा इस अष्टक की रचना विक्रम सं० १८८१ ज्येष्ठ शु० ३ को की गई ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टेक सतसई : एक अद्भुत कृति

(श्री० उदय शंकर 'शील' एम० ए० दतिया)

टेक सतसई आधुनिक युग में रची गयी ब्रजभाषा की एक अद्भुत कृति है । इसकी रचना टेकचन्द नामक कवि ने सन् १९२३ ई० में की थी । टेकचन्द आधुनिक युग के ब्रजभाषा के कवि रहे हैं । सतसई की परम्परा में यह एक अकेला कवि है जिसने सतसई को एक नई दिशा दी है । यही कारण है कि अप्रकाशित होने पर भी टेक सतसई[1] हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि है ।

टेकचन्द के जन्मादि के सम्बन्ध में कोई विशेष विवरण ज्ञात नहीं[2] किन्तु सतसई के अध्ययन से ज्ञात होता है कि टेकचन्द एक सफल क्रान्तिकारी थे । अपने युग में उन्होंने अपनी वाणी द्वारा ब्रिटिश सत्ता का तख्ता डगमगा दिया था । टेकचन्द या टेक सतसई के विषय में कुछ भी कहते समय हमें हार्दिक वेदना इस बात की होती है कि हम अपने ही युग की महत्वपूर्ण उपलब्धियों से लाभान्वित नहीं हो पा रहे हैं । कवि की जिस रचना ने देश के परतंत्रता काल में जन जीवन में जागरण का मंत्र फूंका; अपने चुभते भावों से उनमें 'स्व' की अनुभूति जगायी और देश तथा भाषा के लिये मर मिटने का साहस भरा आज हम औपचारिक या अनौपचारिक किसी भी दृष्टि से उस कवि को नहीं देख रहे हैं । यद्यपि ऐसे महान क्रान्तिकारी कवियों की कृतियों का मात्र प्रकाशन ही पर्याप्त है ।

टेक सतसई का मुख्य विषय है—भारत को परतंत्रता के चंगुल से छुड़ाने के लिये भारतीयों में वीरता की भावना को जागृत करना । विदेशी शासन में भी युगद्रष्टा कवि काव्य की पंक्तियों से 'मंत्रों' का उद्घोष करता रहा—

जिनके पूर्वज कृष्ण से, गीता सो वर मंत्र ।
गुरु ज्ञानी मुनि व्यास से, सो कि रहे पर तंत्र ।।८३१।।

टेकचन्द ने अपनी सतसई के माध्यम से शृङ्गार के लिये छेड़े गये दोहों में आग की ज्वाला भर दी । टेक सतसई की एक-एक पंक्तियाँ इस बात की साक्षी हैं । कवि ने भारत माता को 'सिंहिनी', भारत और भारतीयों को सिंह तथा अंग्रेजों को स्यार और नीच मृग कहा है—

---

१. टेक सतसई की पाण्डुलिपि लेखक के संग्रह में सुरक्षित है । यह पाण्डुलिपि लेखक को सुप्रसिद्ध साहित्यान्वेषी श्री शिव प्रसाद खरे, कानून गोपुर-वाराणसी निवासी ने प्रदान की थी ।

२. श्री शिव प्रसाद जी खरे द्वारा टेक सतसई की पाण्डुलिपि प्राप्त होने पर मैंने उनसे टेकचन्द के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहा किंतु उन्होंने मात्र इतना बताया कि 'टेकचन्द भारत के सच्चे सपूत थे ।' इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ भी नहीं बताया । दुर्भाग्य कि आज स्वयं खरे जी इहलोक में न रहे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चेतो चेतो सिंह अब, शिर पै रोवत स्यार ।
तोहू उठत न नीदँ तजि, दई खसाय भटार ।।६७३।।
सब सम्पत्ति ये नीच मृग, लै गै दै दै सैन ।
केवल सिंहिन ही रही, ताहू चाहत लैन ।।६७४।।
सबही के तुम मुकुटमणि, अरे सिंह मृगराज ।
सो तुम दाबत स्यार पद, आवत हिये न लाज ।।६७५।।

अंग्रेजी और अंग्रेजियत के विरुद्ध बहुत से दोहे इस सतसई में हैं । सन् १९२३ ई० में अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजों के विरोध में कुछ भी लिखना भीषण अपराध था ऐसे समय टेकचन्द की 'भाषा नीति' देखिये—

जहाँ तनक इँगलिश पढ़े, बोलन लागे वैन ।
आई माई नौट गो, कैट रैट इट मैन ।।७८२।।
हिन्दुन पति काहे गई, जलत सकल जहान ।
पर को गहत सुचाप सोँ, निज भाषा सोँ ग्लान ।।७८५।।
विनु निजु भाषा ज्ञान सोँ, अधर्म ध्रम न जनाय ।
पीवे बिनु कटु मधुर रस, को कब सकत बताय ।।७८६।।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, होति न निज ध्रम प्रीत ।
विनु जाने निज धर्म फिरि, को कब होत सँजूत ।।७६५।।
पढ़ि पढ़ि गोयौ सब जनम, भाषा जगत अनेक ।
सीखि निजी पर सीखिये, टेकचंद तजि टेक ।।७६६।।
निज ध्रम दृढ़ रति विनु भये, पर भाषा के ज्ञान ।
धरत अवा बिनु शुष्क घट, त्यों नर नशत अजान ।।७६८।।
जो जब जग ऊँचो भयो, निज भाषा के मान ।
क्यों भारत गारत न हो, निज भाषा सोँ ग्लान ।।७६६।।

जैसी कि सतसई की परम्परा है कवि ने उसे उतना महत्व न देते हुए अपनी सतसई में ८३१ दोहों को रखा है । वैसे ठीक सात सौ दोहों की सतसई किसी की नहीं है किंतु टेकचन्द ही ऐसे हैं जो सैकड़ों दोहे आगे निकल गये हैं । इस सतसई में अनेक विषयों से संबंधित दोहे हैं। सतसई की इस फुलवारी में कवि ने कहीं शृङ्गार शिरोमणि भगवान श्रीकृष्ण की सरस लीला की झाँकी प्रस्तुत की है, कहीं अपने से पूर्व एवं श्रेष्ठ कवियों को श्रद्धा की दृष्टि से देखा है; कहीं भक्ति कालीन सिद्ध कवियों से मेल खाते नीति बचन सुनाता है तो कहीं एक विरागी की भाँति फकीर बन जाता है ।

कृष्ण लीला के लिये कवि ने सैकड़ों दोहे अर्पित कर दिये हैं जो शृङ्गार और प्रणय की महिमा के लिये अपर्याप्त नहीं प्रतीत होते । बाल लीला से गोपी विरह तक जिस क्रम से वह पहुँचता है कि ऐसा ज्ञात होता है कि सतसई में एक छोटा-मोटा 'कृष्णायन' ही समाया है । श्रीकृष्ण के जन्म अवसर पर गोपियाँ कितनी प्रसन्न मुद्रा में हैं, देखिये—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

षोडस सजि तन दीप युत, कर पै सोरन थार।
मधुर गान कलकण्ठ ज्यों-करतीं फिरती नार ॥२०॥
नृप महलन सब पुर घरनि, बजत ढोल मंजीर।
गैबो अतिही मधुर सुनि, मुनि हू छोरति धीर ॥२१॥
कहिये व्रज में है कहा, चहूँ सु मंगल साज।
भये पूत यशुमति उदर, नन्दराज के आज ॥२२॥
लाल लाल कर पद कमल, लाल अधर मुख लाल।
झूलत पालन में गहैं, लाल खिलौना लाल ॥२३॥
निरखि निरखि तिय होंइ खुश, मन में बहुत सिहाहिं।
कोई मीठो लेय कर, कोई मुँह चुमकाहिं ॥२४॥

श्रीकृष्ण के वियोग में राधा 'सिसक' रही है कितना मार्मिक वर्णन है—

सिसकत सिसकत निशि गई, श्याम न आये हाय।
पाले निर्मोही परे, सजनी कहा बसाय ॥१०६॥

रीतिकालीन कवियों की ऊहात्मक पद्धति को भी इस सतसई में अपनाया गया है—

गहे फिरत नस सोधि, भयो ग्रीव में कहा अलि।
फूल माल के बोझि, गर्दन पीढ़ा अति करति ॥११२॥
सजनी तनक बताय, गहे कलाई क्यों फिरत।
पीड़ा सही न जाय, मालनि हरवा भार सों ॥११३॥
काहे बाँधी आलि, कमल नालि ज्यों कटि नरम।
भार पर्‌यो अलि कालि, रेशम सारी ताहि को ॥११३॥

नीति संबंधी दोहों की संख्या भी इस सतसई में दो सौ के पार है। इन दोहों में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक अनेक विषयों में नीति बर्ताव की चर्चा है। उठना-बैठना, बोलना-चालना और रहना-सहना एक भारतीय बनकर यदि सीखना हो तो टेकचन्द के दोहों से पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो जायगा। नीति वचन अमृत की घूंट नहीं होते फिर भी टेकचन्द ने उसमें कड़वापन नहीं आने दिया। मानव को उसके आदर्शों की स्मृति दिलाते हुए इसमें नीति की बातें बतायी गई हैं।

टेक सतसई में टेकचन्द की प्रतिभा का पूरा निखार हुआ है। वह स्वदेश प्रेमी है, उसे स्वजाति, स्वभाषा की रक्षा की सदैव चिंता है। देश के किसी भी कोने में कुरीति, अनैतिकता या बुराई रहे और टेकचन्द जी देखकर मौन रह जांय यह संभव नहीं था। वह भारत से प्रेम ही नहीं करते थे वरन सदैव उसे आदर्श भारत के रूप में देखना चाहते थे। कुरीतियों और कुनीतियों के प्रति टेकचन्द जी ने जो-जो फटकार सुनाई हैं कि श्रोता या पाठक की अनायास ही आँखें खुल जाती हैं। कवि की पैनी दृष्टि और चुभती वाणी बिना किसी आडम्बर या भूमिका के सीधे-सीधे ही प्रस्फुटित हो जाती है। यथा—भारतवासियों को (जो अंग्रेजों के हिमायती थे।) सचेत करते हुए कवि कहता है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजा को लै पक्ष जो, निज स्वदेश विनसाय।
जेहिं तरु तर नित सुख करत, तन्ही रह्यो कटाय ॥६६६॥

और अंत में वह योगीराज श्रीकृष्ण से विनय करता है कि—

कहि राख्यो मुख जो प्रथम, का भूले व्रजचंद।
भारत भुइँ, गौ, द्विज सकल, सहत करत अब द्वन्द ॥८२६॥
राधा प्रिय, यशुमति सुअन, यदुकुलमणि मैठाट।
जन भव भय हारी वजत, का देखत अब वाट ॥८३०॥

'कहि राख्यो मुख जो प्रथम' कहकर भगवान श्रीकृष्ण को "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः। अभ्युत्थानं तु धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्" की याद दिलाता है।

इस प्रकार टेक सतसई में एक से एक दोहे हैं। युग के अनुरूप इस सतसई के एक-एक दोहे की कीमत आँकना आसान बात नहीं है। दुर्भाग्य है कि अभी तक हमारा हिंदी जगत इस सतसई से अपरिचित है। टेकचन्द ने इस सतसई की रचना अपने सहपाठी की मदद लेकर रात्रि के समय दिनांक ११ जनवरी सन् १९२३ ई० को की थी। संपूर्ण पाण्डुलिपि कवि के स्वाक्षरों में है और कवि ने अपना हस्ताक्षर करते हुए लिखा है कि "आपका निवेदक—भारतसेवक टेकचन्द वि०, ११।१।२३"।

सतसई प्रारम्भ करने के पूर्व दस छन्द भी कवि ने लिखे हैं जिनमें अंतिम छंद यहाँ उद्धृत है—

नैति नैति वर वेद कहैं नित, कथि कथि व्यासपि हारे।
वाल्मीकि तुलसी कवि भूषण, लिखि लिखि थके विचारे॥
'टेकचन्द', मति रंक ग्रसित कलि, कैसे त्वयश लिखाऊँ।
तेरे गुण गण गान करन कूँ, सहज जीभ कहँ पाऊँ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उद्धव-शतक के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता

(श्री वेदप्रकाश गर्ग   मुजफ्फरनगर)

भ्रमर गीत काव्य-परम्रा की कड़ी तथा बा० जगन्नाथ जी 'रत्नाकर' की उत्कृष्टतम कृति 'उद्धव-शतक' पर आलोचनात्मक दृष्टि से लिखे अनेक लेख तथा ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं, किन्तु शोधात्मक दृष्टि से 'उद्धव-शतक' की विचार-दिशा अब तक रिक्त ही रही है। यहाँ तक कि रत्नाकर जी पर शोध करके 'थीसिस' लिखने वाले डा० विश्वम्भर नाथ भट्ट जी इस दिशा में कोई विशेष कार्य नहीं कर पाये।

शोधात्मक दृष्टि से सर्वप्रथम श्री रुद्र काशिकेय ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ७० अङ्क ३ (पृष्ठ १ से २२ तक) में 'रत्नाकर जी का उद्धव शतक' शीर्षक लेख लिखकर 'शतक' की निर्माण प्रक्रिया के सम्बन्ध में एक अनोखा रहस्योद्घाटन किया है।

स्वयं रत्नाकर जी ने 'उद्धव-शतक' के निवेदन में उसकी निर्माण प्रक्रिया के विषय में लिखा है कि—"४० या ४५ वर्ष हुए जब मैंने दो-एक कवित्त उद्धव-सम्बन्धी बताये थे।..... प्रोत्साहित होकर मैंने उद्धव-विषयक ५—७ कवित्त और बनाये और फिर यह विचार किया कि एक उद्धव-शतक की रचना की जाय।..... समय-समय पर दो-एक कवित्त उक्त विषय के बनते रहे। संवत् १९७७ के अन्त तक शनैः-शनैः उद्धव-विषयक ८०—८५ कवित्त बन गये थे।"

इससे आगे रत्नाकर जी ने जो कुछ लिखा है, उसका तात्पर्य यही है कि संवत् १९७७ तक ८०—८५ कवित्त बन जाने के बाद संवत् १९७८ के आरम्भ में ही उनकी चौपतिया चोरी चली गई, जिसमें उद्धव-विषयक कवित्त भी थे। उन्हें 'ज्यों-त्यों स्मरण कर-करके' रत्नाकर जी ने पुनः लिखा और उन्हीं में '४०-४५ कवित्त उद्धव-सम्बन्धी भी स्मरण आये, शेष जाते ही रहे।' उनकी पूर्ति के लिए रत्नाकर जी शनैः-शनैः कवित्त बनाने लगे और संवत् १९८६ (सन् १९२९) तक उद्धव-शतक की रचना उसके वर्तमान रूप में पूर्ण हो गई।

रत्नाकर जी के उक्त 'निवेदन' पर विचार करते हुए श्री रुद्र जी ने लिखा है—"रत्नाकर जी का उक्त निवेदन या तो किसी गोपनीयता की प्रवृत्ति का प्रमाण है अथवा आत्म कर्तृत्व की अद्भुत विस्मृति का अनोखा उदाहरण, क्योंकि जैसा उनके निवेदन से प्रकट होता है, उन्हें यह सर्वथा विस्मृत हो गया था कि उनके उद्धव-शतक के कवित्तों का धारावाहिक प्रकाशन काशी के साप्ताहिक 'भारत-जीवन' के सन् १८९२ के २६ सितम्बर से लेकर १७ नवम्बर[1] तक हुआ था। उसके दो-एक कवित्त काशीकवि समाज के स्वयं रत्नाकर जी द्वारा सम्पादित समस्या पूर्ति संग्रह में भी प्रकाशित हुए थे। यदि उन्हें यह सब याद होता तो तत्तत् स्थानों से उनका पुनः संग्रह सरलता पूर्वक करते हुए अपने समय और श्रम की वे बहुत कुछ बचत कर सकते थे। परन्तु उनकी उस विस्मृति अथवा गोपनीयता की वृत्ति ने उन्हें ऐसा न करने दिया।"

१—७ नवम्बर होना चाहिये। सम्भवतः मुद्रण दोष से ७ के स्थान पर १७ मुद्रित हो गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यद्यपि श्री रुद्र काशिकेय को 'भारत जीवन' के तत्सम्बन्धी समस्त अङ्क उपलब्ध नहीं हो सके, किन्तु जो अङ्क उन्हें उपलब्ध हुए हैं, उनमें प्राप्त अल्प सामग्री (धारावाहिक रूप में उद्धव-शतक शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित कवित्त) भी "इतना बता देने के लिए पर्याप्त है कि नये सिरे से 'उद्धव-शतक की रचना करते समय पूर्व रचित, परन्तु लापता कवित्त उन्हे किस आधार पर स्मरण आये और उनमें सकारण क्या-क्या परिवर्तत और संशोधन हुए। उनके मूल में कौनसी निश्चित् प्रक्रिया काम कर रही थी। अवश्य ही यह 'रत्नाकर-साहित्य' पर शोध की नई दिशा होगी।"

श्री रुद्र काशिकेय जी का इस दिशा में सर्वप्रथम और प्रारम्भिक प्रयास है। अतः आवश्यकता है कि समस्त सामग्री को प्राप्त करके, रत्नाकर जी के 'निवेदन' का आदर करते हुए भी उनकी उस अनोखी विस्मृति को ध्यान में रखकर, उद्धव-शतक के निर्माण की प्रक्रिया पर स्वतंत्र शोध के आलोक में नये सिरे से विचार कर उसका पुनर्मूल्यांकन किया जाय। उक्त सामग्री के तुलनात्मक-अध्ययन से अनेक नवीन शोधात्मक तथ्य प्रकाश में आयेंगे।

श्री रुद्र जी का 'उद्धव-शतक' सम्बन्धी उक्त लेख अत्यन्त उपादेय है और शोध की नवीन दिशा प्रदान करने वाला है। इस विचित्र रहस्योद्घाटन के लिए वे धन्यवाद एवं बधाई के पात्र हैं।

तुलसी

(प्रो० नरेन्द्र नाथ चतुर्वेदी एम. ए. मैनपुरी)

भावुकता सागर के रतन समेंटि कौन,
छंद की छबीली छटा छिति छिटकावतो।
कविता-कला की कला विलसि न पाती रंच,
नव-रस-बुंदन सों सींचि जो न पावतो॥
होति न समाई हरि आई भाव भूमि माँहि,
सारदा सपूत जो न भव्य-भाव लावतो।
कविन की लाज कौ जहाज बूढ़ि जातो ठौर,
हुलसी को पूत जो पै तुलसी न आवतो॥१॥

(२)

घोर कलि काल को कलेऊ बनि जातो जग,
धरा होति धूरि जीउ जीवन न पावतो।
अघ ओघ नासन कों सुकृत प्रकासन कों,
ज्ञान मारतण्ड को प्रकास को दिखावतो॥
राम को सलौनों रूप राखि मन-मन्दिर में,
भगति सुधा की सुर-सरिता बहावतो।
'मानस' जहाज लै उतारन को सिंधु-भव,
हुलसी को पूत जो पै तुलसी न आवतो॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय इतिहास के पहिले छः मन्वन्तर

(श्री वृन्दावन दास, मथुरा)

लोकमान्य तिलक का मत है कि आर्य लोग भारत में ईसा से ६००० वर्ष पूर्व आये। वे ऋग्वेद का निर्माण काल ईसा से ३८०० वर्ष पूर्व आँकते हैं। इससे सिद्ध होता है कि आर्य लोग वेदों के निर्माण से भी लगभग २२०० वर्ष पूर्व भारत में आ चुके थे। ऋग्वेद में यद्यपि तत्कालीन आर्य जीवन की छोटी-छोटी बातें भी लिखी हैं उसमें यह कहीं नहीं लिखा कि आर्य विश्व के अमुक भाग से भारत में आये। अतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि आर्य लोग ऋग्वेद के निर्माण के समय तक इतने अधिक काल तक भारत में रह चुके थे कि वे अपने को भारत का निवासी ही समझते थे और अपने निर्गम स्थान को तो वे कालाधिक्य के कारण भूल ही चुके थे अन्यथा उसका कम से कम उल्लेख तो ऋग्वेद में अवश्य होता।

लोकमान्य तिलक वैवस्वत मनु का समय विक्रमाब्द से ३५०० वर्ष पूर्व का मानते हैं। उनके मत से ६००० वि० पू० से ३५०० वि० पू० तक आर्य लोग भारत में बस गये थे पौराणिक आधार से लोकमान्य तिलक के मत की पुष्टि होती है।

पौराणिक वर्णनों में समय का विभाग मन्वन्तरों में किया गया है। वर्षों की अपेक्षा समय का विभाजन मन्वन्तरों में अधिक युक्ति संगत प्रतीत होता है। मन्वन्तरों की संख्या चौदह है जिसमें कि पूरा भूत, वर्तमान और भविष्य काल बाँटा गया है। वैवस्वत मनु से पहिले छः मन्वन्तर हो चुके थे और पौराणिक आधारों के अनुसार इन छःहों मन्वन्तरो का काल लगभग २५०० वर्ष में समाप्त हो जाता है। इस प्रकार ६००० वर्ष में से २५०० वर्ष निकाल देने पर वैवस्वत मनु को ३५०० वर्ष विक्रम पूर्व हुए।

मन्वन्तरों को पुराणों में वर्ष गणना के अनुसार भी बाँधा है परन्तु उसे देवताओं के वर्षों के अनुसार निर्धारित करने से वह एकदम अतिशयोक्तिपूर्ण एवं संख्यातीत सा प्रतीत होता है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है पूरा काल १४ मन्वन्तरों में विभक्त है। ४४ मन्वन्तरों में से ६ तो हो चुके और सातवां चल रहा है तथा सात मन्वन्तर अभी भविष्य में और आवेंगे। एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगियाँ होती हैं। प्रत्येक चतुर्युगी में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग होते हैं और इन्हीं चारों युगों के सम्मिलित नाम को चतुर्युगी कहते हैं। चतुर्युगियों की काल गणना को हम अपने शब्दों में न कहकर मित्रबन्धुओं के शब्दों में व्यक्त करते है। "सत्युग की संख्या ४००० वर्षों की है और चार-चार सौ वर्षों की उसकी सन्ध्या और सन्ध्यान्श होते हैं। त्रेतायुग ३००० वर्षों का है और उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश में छः सौ वर्ष लगते हैं। द्वापर में २००० वर्ष और २०० वर्ष की सन्ध्या और सन्ध्यांश हैं। कलियुग में १००० वर्ष और २०० वर्षों की सन्ध्या और सन्ध्यांश हैं। प्रयोजन यह है कि जितने हजार वर्षों का युग होगा उतने ही सौ वर्षों की उसकी सन्ध्या होगी और उसी के बराबर सन्ध्यांश होगा। अतः एक चतुर्युगी में १२००० वर्ष होते हैं। यह गणना अच्छी थी किंतु पौराणिक पण्डितों ने इस काल को देवताओं का कह कर बहुत बढ़ा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया है। इस समय पौराणिक मत के अनुसार उपरोक्त प्रत्येक वर्ष हमारे ३६० वर्षों का होता है क्योंकि देवताओं का एक दिन हमारे एक वर्ष के बराबर होता है। अतः एक चतुर्युगी तेतालीस लाख बीस हजार वर्ष की हो जाती है। और एक मन्वन्तर में ऐसी ७१ चतुर्युगियाँ पड़ जाती हैं। इसलिए यह पौराणिक समय-संख्या बिल्कुल बेकार हो गई है।"*

पुराणों में वर्णित युगों के आधार पर क्रमबद्ध इतिहास के निर्माण किये जाने की आशा करना व्यर्थ है। हाँ, मन्वन्तरों और उनके अन्तर्गत राजवंशों के वर्णनों से इतिहास-निर्माण का कार्य अपेक्षाकृत सुलभ एवं सम्भव है।

चौदहों मन्वन्तरों के प्रवर्तक मनु इस प्रकार हैं। १—स्वायम्भुवमनु २—स्वारोचिष ३—उत्तम ४—तामस ५—रैवत ६—चाक्षुष ७—वैवस्वत ८—सावर्णि ९—दक्ष सावर्णि १०—ब्रह्म सावर्णि ११—धर्म सावर्णि १२—रुद्र सावर्णि १३—देव सावर्णि और १४—इन्द्र सावर्णि। इनमें सावर्णि वाले मन्वन्तर तो भविष्य कालीन है अतः इनका वर्णन कर सकना तो असम्भव है। स्वायम्भुवमनु पहिले राजा थे। इनसे वैवस्वत मनु का काल २२०० बर्ष बाद का कूता गया है, अर्थात् चाक्षुस मन्वन्तर तक पहिले छः मन्वन्तर इतने ही काल में समाप्त हो गये। ये बात पुराणों में वर्णित राजवशों के वर्णन से भी पुष्ट हो जाती है। ऋग्वेद का निर्माण चाक्षुष मन्वन्तर से ही आरम्भ हुआ। चाक्षुष और वैवस्वत वेदर्षि थे। चाक्षुष से पहिले वेद तथा उनके मंत्रों की कोई चर्चा नहीं है। बाल गंगाधर तिलक का भी मत है कि आर्य लोग वेद निर्माण से कम से कम २००० वर्ष पहिले भारत में आ गये थे।

स्वायम्भुवमनु

ऋग्वेद का मन्त्र है, "हे इन्द्र, तुमने यह देश मनु को दिया है।" इसका तात्पर्य स्वायम्भुवमनु से है। जहाँ वैवस्वत मनु से अभिप्राय है वहाँ मनु से पहिले वैवस्वत शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में प्राप्त है। स्वायम्भुवमनु का १४ मनुओं में सर्वप्रथम स्थान है। इनकी २७ पीढ़ियों के राज्य का उल्लेख पुराणों मे मिलता है। इस कारण इस मन्वन्तर का भोगकाल अधिक से अविक ७०० वर्ष प्रतीत होता है।

स्वायम्भुवमनु के दो पुत्र थे १—प्रियव्रत २—उत्तानपाद। आर्यों ने सबसे पहिले राज्य-संस्था स्वायम्भुवमनु से ही आरम्भ की। स्वायम्भुवमनु आर्यों के सबसे पहिले राजा थे। प्रियव्रत और उत्तानपाद दोनों ही प्रतापी और भिन्न-भिन्न देशों के अधिपति हुए हैं। उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं। बड़ी से ध्रुव नामक ज्येष्ठ पुत्र और छोटी से उत्तम नामक छोटा पुत्र था ध्रूव को पिता का स्नेह प्राप्त न था कारण उसके पिता छोटी रानी से विशेष प्रेम करते थे। ध्रूव अपमानित होकर वन को चले गये। बनवास के कारण उनके चरित्र गौरव में महान् वृद्धि हुई और वे भक्तों में श्रेष्ठ और अग्रगण्य समझे जाने लगे। जब वे बन से लौटकर आये तो उनकी गरिमा से उनका छोटा भाई परास्त हुआ और उन्होंने पुनः राज्य ग्रहण किया। ध्रुव का शासन न्याय-पूर्ण था, उनके नाम की महिमा से उनके नाम पर ही एक नक्षत्र और एक लोक प्रसिद्ध हुए।

* भारतवर्ष का इतिहास (मिश्रबन्धु) अध्याय ७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रियव्रत के पौत्र नाभि बड़े प्रतापी हुए हैं। नाभि के भाइयों के नाम थे, "किम्पुरुष, हरिर्ष, इलाव्रत, रम्य, हिरण्यवान्, कुरु, भद्राश्व और केलुमाल। इनके पिता अग्नीध्र थे जिनके ६ भाई थे राजा प्रियव्रत ने पृथ्वी के सात भाग करके उसे अपने सातों पुत्रों में बाँट दिया। अग्नीध्र को जम्बूद्वीप दिया जिसका प्रयोजन एशिया से है। नाभि के भाग में वह देश आया जो हिमालय से ससुद्र पर्यन्त है। सम्भवत: यह भारत ही है। नाभि के पुत्र ऋषभदेव और उनके पुत्र भरत थे। भरत के नाम पर यह देश भारतवर्ष कहलाता है। नाभि के भाई किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलाव्रत और कुरु पर इन्हीं के नाम के चार राज्य स्थापित हुए जिनमें क्रमशः ये ही राजा राज्य करते थे।

किम्पुरुष कश्मीर से ऊपर का प्रदेश और हरिवर्ष वर्तमान अरेबिया था। प्रियव्रत के वंश में नाभि, ऋषभ, भरत और गय बड़े प्रतापी राजा हुए हैं। गय महान् यज्ञ कर्ता थे। इस वंश का अंतिम २७वां राजा विषग्ज्योति था। उसके बाद भरतवंश समाप्त हो गया।

उत्तानपाद के वंश में १४ पीढ़ी तक राज्य चला। इन राजाओं में ध्रुव, चाक्षुषमनु, वेन, पृथु, प्रचेतस और दक्ष मुख्य थे। दक्ष इस वंश का अन्तिम राजा था।

राजा वेन ने एक नया धर्म चलाना चाहा और प्रजाजनों को आदेश दिया कि वे उसे ईश्वर-तुल्य समझें और देव भाव से उसकी पूजा करें। उस समय तक यद्यपि जाति भेद न था परन्तु कर्म से लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि हुआ करते थे। ब्राह्मणों ने राजा की इस पैशाचिक आज्ञा का विरोध किया। कुछ ने उसको बहुत समझाने की चेष्टा की लेकिन वह न माना। इस पर ब्राह्मणों ने उसका वध कर दिया।

वेन के अपनी रानी से पृथु नामी पुत्र हुआ और नीचकुल में उत्पन्न एक दासी से उसका बड़ा पुत्र निषाद हुआ। निषाद बड़ा था लेकिन नीच कुलोत्पन्न दासी का पुत्र था इसलिए राजा न बनाया गया। छोटे भाई पृथु को राज्य प्राप्त हुआ। उसने इतनी योग्यता और उत्तम विधि से राज्य चलाया और भूमि की इतनी उन्नति की कि उसका नाम पृथु की कन्या के रूप ने पृथ्वी पड़ गया। इसने जंगलों को अग्निसात करके और टीलों और पहाड़ों को समतल करके भूमि का विकास किया।

स्वायम्भुवमनु के वंशजों ने बहुत धर्म पूर्वक राज्य किया और बड़ी उन्नति की। पृथु वशी प्रचेतस को जंगलों को जलाते समय एक परम सुन्दरी कन्या मिली जिससे उसका दक्ष नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

राजा प्रियव्रत के काल में आर्यों को भारत में आये कुछ ही समय व्यतीत हुआ था। अतः भारत के अतिरिक्त उनका अन्य देशों से सम्पर्क कायम था। प्रियव्रत ने सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्य को अपने सातों पुत्रों में बाँट दिया। एक पुत्र अग्नीध्र को भारत का राज्य मिला। अग्नीध्र ने भी एशिया के महाद्वीप को अपने नौ पुत्रों में बाँटा। नाभि नामक पुत्र भारत का सम्राट हुआ।

प्रियव्रत और उनकी सन्तानों ने भारत से बाहर अनेक देशों पर राज्य किया परन्तु उसका विवरण पुराणों के अतिरिक्त अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। वस्तुतः उन देशों का तत्कालीन कोई इतिहास ही नहीं मिला है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वारोचिष मन्वन्तर

प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता मिश्र बन्धुओं का मत है कि स्वारोचिष मन्वन्तर के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वह कितने वर्ष का था। हाँ, वे यह अवश्य कहते हैं कि स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवतन और चाक्षुष इन पांचों मन्वन्तरों का काल लगभग १५०० वर्ष था।

इस मन्वन्तर में सुरथ नाम के एक चक्रवर्ती सम्राट का उल्लेख है। इसके राज्य में कोला नामका एक अच्छा नगर था जिसे शत्रुओं ने नष्ट कर डाला। सुरथ युद्ध में हार गया किंतु परिस्थिति ऐसी हुई कि वह हारने पर भी राज्य करता रहा। फिर शत्रुओं ने उसकी राजधानी पर चढ़ाई कर दी। युद्ध में उसकी सेना का विध्वंस हो गया जिससे हतप्रभ होकर वह जंगल में भाग गया। परन्तु उसके मंत्रियों ने शत्रुओं पर विजय पाई और उन्होंने पुन: उसको जंगल से लाकर सिंहासनासीन किया। उस समय की परिपाटी के अनुसार बहुत से ऋषि वन में रहते थे। बनवास के समय राजा उन ऋषियों के पास ठहरा। उन ऋषियों ने राजा को कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण सुनाया। इससे प्रतीत होता है कि वे घटनाऐं कुछ पूर्व की इसी मन्वन्तर की थीं।

दक्षिण की महिष जाति से जिसका नेता महिषासुर था आर्यों का बड़ा संघर्ष हुआ। आर्यों की ओर से लड़ने वाली उनकी नेत्री देवी नाम की एक बड़ी शौर्यशालिनी महिला थी। उसने महिषासुर को युद्ध में पराजित कर दिया और मार डाला।

उन्हीं दिनों शुम्भ और निशुम्भ नामी दो अनार्य राजा बड़े बलशाली हो गये थे। उन्होंने आर्यों को कई युद्धों में हराया। परंतु जब उनकी टक्कर आर्यों की नेत्री देवी से हुई तब वे अपने दोनों सेनापतियों चण्ड और मुण्ड सहित उसके हाथों मारे गये।

वेदों में महिषासुर और शुम्भ निशुम्भ के नाम नहीं आये हैं। ऋषियों ने सुरथ को मधु कैटभ का हाल सुनाया था। मधु कैटभ दोनों ही प्रलय के समय विष्णु भगवान से लड़े थे। कुछ इतिहासकारों का मत है कि महाप्रलय स्वारोचिष मन्वन्तर में हुई थी। कुछ कहते हैं कि महाप्रलय होने की बात काल्पनिक है। उनके अनुसार महाप्रलय जैसी कोई घटना हुई ही नहीं थी। कुछ पुराणों में महाप्रलय का समय स्वायम्भुवमनु के काल में वर्णित है। उन्होंने लिखा है कि मनु के हवन से इड़ा नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई जिससे मनु ने सृष्टि की। परंतु यह कथन इसलिए गलत है कि स्वायम्भुवमनु की पुत्रियों के नाम तो आकूति, प्रसूति, और देवहूति थे। महाप्रलय यदि हुई भी तो वह स्वायम्भुवमनु के मन्वन्तर में अमान्य है। हो सकता है प्रलय स्वारोचिष मन्वन्तर में हुई हो। कुछ इतिहासकार उसका होना इसी मन्वन्तर में मानते हैं। प्रलय का उल्लेख मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी आदि के धमग्रन्थो में भी है अत: उसकी पुष्टि तो होती ही है।

उत्तम और तामस मन्वन्तर

उत्तम और तामस मन्वन्तरों में केवल गजेन्द्रमोक्ष की घटना का ही वर्णन है। एक ग्राह द्वारा एक हाथी का पानी में खींचा जाना और जब वह डूबने को हुआ तब उसका विष्णु भगवान द्वारा मुक्त किया जाना कोई ऐतिहासिक महत्व की घटना नहीं है। परन्तु फिर भी इसका ऐतिहासिक निष्कर्ष यह है कि तामस मन्वन्तर में ही आर्य लोग अवध में पहुंच गये थे। कारण जंगली हाथी पूर्वी अवध से लेकर बंगाल तक पाये जाते थे और गजेन्द्रमोक्ष की घटना पूर्वी अवध की है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रैवत मन्वन्तर

इस मन्वन्तर में वैकुण्ठ निर्माण का वर्णन है। इसका उल्लेख भागवत पुराण में है। कश्मीर या तिब्बत को वैकुण्ठ कहा जा सकता है। संस्कृत में वैकुण्ठ को त्रिविष्टप कहते हैं और तिब्बत त्रिविष्टप का अपभ्रंश मालुम पड़ता है। राजा बलि का इन्द्र से इसी लोक के लिए युद्ध हुआ था। कहते हैं जब बलि की सेनाएँ इन्द्र से लड़ने गईं तो वे आकाश में छा गईं थीं। इससे उनका किसी पहाड़ पर जाने का अनुमान लगाया जा सकता है।

चाक्षुष मन्वन्तर

पुराणों के अनुसार समुद्र मन्थन और बलिबन्धन चाक्षुष मन्वन्तर की मुख्य घटनाएँ है। बलिबन्धन के थोड़ा बाद ही वैवस्वत मनु का युग आरम्भ हो जाता है। मिश्रबन्धु अपनी पुस्तक 'भारतवर्ष का इतिहास' में लिखते हैं. "हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के युद्ध भी चाक्षुष मन्वन्तर के अन्तर्गत हैं, क्योंकि बलि हिरण्यकशिपु के प्रपौत्र थे सो इन दोनों का अन्तर १०० वर्ष से अधिक का नहीं हो सकता, और बलिबन्धन चाक्षुष मन्वन्तर के अंत में होने से यदि यह मन्वन्तर प्राय: २०० वर्ष का हो तो हिरण्याक्ष आदि की कथाएँ इसी के अंतर्गत पड़ेंगी। ऊपर की गणनाओं से अनुमान किया जाता है कि स्वारोचिष से चाक्षुष पर्य्यन्त पाँचों मन्वन्तरों का भोगकाल प्राय: १५०० वर्षों का पड़ता है। उधर चाक्षुष मनु के वेदर्षि होने से और वेदों का प्रारम्भ काल प्राय: ४.०० वर्ष सवत् पूर्व होने से तथा वैवस्वत मन्वन्तर का प्रारम्भ काल प्राय: ३८०० वर्ष सम्वत् पूर्व होने से चाक्षुष मन्वन्तर कम से कम २०० वर्ष का बैठता है।"

पुराणों में कथन है कि दिति अदिति और दनु तीन बहिनें थीं और इनके पति का नाम कश्यप था। कश्यप को इन्द्र का पिता कहा है। अदिति को देवताओं की माता कहा है और दिति को दैत्यों तथा दनु को दानवों की। जब दैत्यों, देवताओं और दानवों की माताएँ बहिनें थीं और उनके पिता एक ही थे तब उनमें जाति-भेद कैसा? परंतु पुराणों के अनुशीलन से पता चलता है कि देवताओं तथा दैत्यों और दानवों के बीच जाति-भेद की गहरी खाई थी। इससे प्रतीत होता है कि दिति और दनु के पति अदिति के पति कश्यप से कोई भिन्न कश्यप नामी व्यक्ति थे।

इन्द्र की महिमा वेद तथा पुराणों में अत्यधिक है। वैदिक इन्द्र सदैव विजयी हुए हैं उन्होंने कभी कोई गर्हित कार्य नहीं किया। पुराणों के इन्द्र को कभी-कभी पराजय का मुँह भी देखना पड़ा है। उन्होंने कभी निन्दनीय कार्य भी किये हैं। इन्द्र द्वारा दानवों और विशेष करके वृत्त के ९९ दुर्गों को ध्वस्त किया जाना, वृत्तासुर और शम्बर आदि के वध सभी चाक्षुष मन्वन्तर की घटनायें प्रतीत होती हैं।

चाक्षुष मन्वन्तर के मध्य में दिति पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष बड़े सामर्थ्य शाली हुए हैं। हिरण्याक्ष की सहायता पाकर हिरण्यकशिपु ने अपने राज्य का विस्तार किया। इसका आतंक आर्यों पर भी था। यद्यपि हिरण्यकशिपु के समय के उन युद्धों का वर्णन नहीं है जिनमें आर्यों को पराजित होना पड़ा तथापि उसको तीनों लोकों का स्वामी कहे जाने से यह स्पष्ट है कि उसका प्रभाव पुष्कल मात्रा में आर्यों पर भी था। हिरण्यकशिपु का प्रभाव जब अपने चरमोत्कर्ष पर था तब उसके जीवन में एक महत्वपूर्ण घटना घटित होगई। हिरण्याक्ष का वन में किसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वराह से सामना होगया और उसे अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। यह घटना हिरण्यकशिपु का बल क्षीण करने में एक प्रधान कारण बनी।

प्रहलाद और हिरण्यकशिपु में गहरा मतभेद दिखाकर पुराणों में पिता पुत्र की शत्रुता दर्शायी गई है। कुछ इतिहास कारों की दृष्टि में यह शत्रुता अमान्य है। छोटी सी बात पर ऐसे प्रतापी राजा को अपने पुत्र से शत्रुता करने की बात कम जंचती है। एक तर्क यह भी है कि विष्णु भक्ति की बात वंदिक समय से बहुत पीछे उठी थी। चाक्षुष मन्वन्तर में इस प्रकार की भक्ति का कहीं उल्लेख नहीं है। भागवत पुराण की अपेक्षा हरिवंश पुराण अधिक पुराना है उसमें प्रहलाद भक्त तो कहे गये हैं परन्तु पिता पुत्र का विरोध नहीं कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब हिरण्याक्ष की मृत्यु से हिरण्यकशिपु का बल क्षीण होगया तब देवताओं (आर्यों) ने एका करके उस पर धावा बोल दिया और भयङ्कर युद्ध के उपरान्त किसी नृसिंह नामी आर्यवीर के हाथों हिरण्यकशिपु मारा गया। दैत्य लोग पूर्व की ओर भाग गये और आर्य लोग सरस्वती के पूर्व की ओर भी बढ़े। इस युद्ध के परिणाम स्वरूप दैत्यों ने उस प्रदेश में अपना निवास स्थान बनाया जिसे आजकल पूर्वी उत्तर प्रदेश और अवध कहते हैं।

हिरण्यकशिपु के समय में भी तीनों लोकों का वर्णन आया है। कुछ इतिहास कारों के मत से वर्तमान पंजाब आर्य लोक बंगाल नागलोक और इन दोनों के बीच का प्रदेश दैत्यलोक समझना चाहिये।

प्रहलाद और उसके पुत्र विरोचन के समय में दैत्यों की विशेष राजनीतिक उन्नति न हुई तथा राज्य का विस्तार भी न बढ़ा। परन्तु अपने पिता के शासन काल में ही विरोचन के पुत्र बलि ने इतनी बुद्धिमत्ता, कुशलता और शालीनता से राज्य काज सम्हाला कि प्रहलाद और विरोचन आदि सब ही की सम्मति से उनके जीवन काल में ही बलि को राजपद प्रदान किया गया। पद प्राप्त करने पर तो बलि ने एक बहुत ही श्रेष्ठ राज्य स्थापित किया। उसने इतनी दक्षता से काम किया कि दैत्यों और दानवों की महती उन्नति होने लगी।

उधर आर्यों और नागों के देशों में भी आवागमन होने से उन्नति होने लगी और यातायात बढ़ा। बलि ने सुशासन से न केवल अपने राज्य में सुखशान्ति फैलाई अपितु आर्यों और नागों से भी कोई संघर्ष न किया। परिणाम स्वरूप तीनों राज्य बड़े सहयोग के ढंग पर उत्तरोत्तर उन्नति करने लगे। ऐसे वातावरण में विचार साम्य प्रगति होना स्वाभाविक है। सभी लोग वाणिज्य अथवा देशाटन के दृष्टिकोण से समुद्र से लाभ उठाने और दूसरे देशों की यात्रा करने की बात सोचने लगे। फलतः समुद्र मन्थन हुआ। पुराणों में समुद्र मन्थन का वर्णन दार्ष्टान्तिक अथवा अलङ्कारिक है। पुराणों में लिखा है कि शेषनाग ने मन्दराचल को उखाड कर अपने ऊपर रखा वासुकि नाग रस्सी बने और मन्दराचल के माध्यम से देवों और दैत्यों ने मन्थन किया और प्रचुर परिश्रम के उपरान्त चौदह रत्न प्राप्त हुए। वे रत्न हैं लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, रम्भा, वारुणी अमृत पांचजन्य, शंख, ऐरावत हाथी, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, कामधेनु, शारंगधनुष धन्वन्तरि वैद्य और उच्चै श्रवा घोड़ा।

समुद्रमन्थन नामी रूपक से ऐसा प्रतीत होता है कि नागों दैत्यों और आर्यों ने मिलकर समुद्र यात्रा का विचार किया था। नागों के सरदार शेष नाग ने मन्दराचल से इतने प्रचुर परिमाण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में लकड़ी मँगाई कि वह पहाड़ सा लगने लगा। वासुकि नाग ने रस्सी मस्तूल आदि से जहाज बना लिये और दैत्यों नागों और आर्यों ने मिलकर समुद्र यात्रा की। उस यात्रा के परिणामस्वरूप उन्हें बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त हुई। इस यात्रा के बाद आर्यों ने अपने कौशल से सब उत्तम वस्तुएँ स्वयं ग्रहण करलीं दैत्यों के हाथ कुछ न लगा। ऐसा प्रतीत होता कि कुछ युद्ध भी हुआ। सम्भवतः बलि को भाग कर अपने राज्य में आना पड़ा।

इस घटना से दैत्यों में बड़ा असन्तोष फैला। बलि और अनेक प्रभावशाली दैत्यराजों ने सोचा कि उनके शत्रुता का व्यवहार न करने पर भी उनके साथ यह दुर्व्यवहार किया गया। उनको इस का पछतावा हुआ कि अपने प्रपितामह (हिरण्यकशिपु) के वध का बदला लेने की बात को न सोचकर उन्होंने आर्यों से सहयोग किया और उसका प्रतिफल उन्हें विश्वासघात के रूप में मिला। असन्तोष इतना व्याप्त हुआ कि भक्तावतंस प्रहलाद सरीखे महापुरुष भी युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गए साधारण दैत्यों की तो बात ही क्या है। आर्यों से बड़े पैमाने पर युद्ध का निश्चय किया गया।

आर्यों से युद्ध करने के लिए दैत्यों ने एक विशाल चतुरंगिनी सेना एकत्रित थी। दैत्य-सेना बड़े बड़े वीरों से सुसज्जित हुई। दैत्यदल में जिन प्रमुख दैत्यसरदारों ने युद्ध में योग दिया उनके नाम इसप्रकार हैं, महापद्मिनी, कुम्भकरण, कांचनाक्ष, कपिकध, क्षितिकम्पन, मैनाक्ष, ऊर्ध्व, वक्र, सितकेश, विकच, सुबाहु, सहस्त्रबाहु, व्याघ्राक्ष, वज्रनाभि, एकाक्ष, गजस्कन्ध, गजशीर्ष, कालजिह्वा, कपिलाक्ष, धेनुक, युवराजवाण, अनायुषा, पुत्रबलि, नमुचि, यम,प्रलोमा, हयग्रीव, प्रह्लाद, विरोचन, शम्बर, अनुह्लाद, ।

दानवों ने भी दैत्यों का साथ दिया। जो प्रमुख दानव दैत्यों के साथ युद्ध में सम्मिलित हुए उनके नाम हैं विषपर्वा, विम,कनकविन्दु, कुंभज, असिलोमा, एकचक्र, राहु, विप्रचित्तदानव, केशीदानव, हेममाली, मय, वृत्तासुर आदि। दैत्य और दानवों के पुरोहित ब्राह्मण लोग भी उनकी ओर से आर्यों से युद्ध करने रण में गये।

आर्यों के सहायकों का उल्लेख इस प्रकार है। विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष,डम्बर, तुम्बर, किन्नर नाग आदि। बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। इस युद्ध को ही देवासुर संग्राम कहा है भारतीय इतिहास में इक्ष्वाकुवंशी ५२ वी पीढ़ी पर हुए राजा सुदास के काल में दाशराज्ञ युद्ध तथा कृष्ण कालीन महाभारत युद्ध बड़े समझे जाते है। यह युद्ध भी प्राचीन अनेक युद्धों से बड़ा था।

इस युद्ध में आर्यों की पूर्ण पराजय हुई। वे भाग खड़े हुए तथा उनमें से बहुत से अपने लोक में न जाकर नागलोक की ओर भागे। देवताओं ने न केवल दैत्यलोक अपितु अपना राज्य भी खो दिया। इस पराजय के बाद देवताओं (आर्यों) ने अपनी खोई हुई स्थिति की पुनः प्राप्ति के लिए एक कुशल सेनापति की खोज आरम्भ कर दी। कुछ प्रयास करने के उपरान्त उनकी दृष्टि कश्यपपुत्र वामन भगवान पर पड़ी। उनको बलि ने यज्ञस्थल में भेजने की योजना बनाई गई।

बलि ने विजय के बाद एक अत्यन्त सुन्दर शासन की व्यवस्था की थी। उसने अनेक यज्ञों का आरम्भ कर दिया था। वामन भगवान ने बलि की यज्ञशाला में पहुँचकर यज्ञ की सुन्दर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विधियों या वर्णन किया। उन्होंने बलि की भी बहुत प्रशंसा की। शुक्राचार्य वामन के तर्कों का कोई उत्तर न दे सके। बलि ने प्रसन्न होकर वामन से वरदान माँगने का आग्रह किया। वामन ने दान में तीनों लोक माँग लिये। शुक्राचार्य के मना करने पर भी अपने वचन का निर्वाह करने के लिए बलि ने वामन को तीनों लोकों का राज्य दे दिया। वामन ने बलि को नागपाश में बाँध कर सुतल नामी लोक में भेज दिया। वामन के कौशल से आर्यों को अपने राज्य की पुनः प्राप्ति हो गई। इस घटना के बाद से उनके यश, वैभव और राज्य का फिर विस्तार होने लगा। वामन द्वारा तीन पग पृथ्वी माँगे जाने का उल्लेख ऋग्वेद में भी है।

इस घटना के बाद से वैवस्वत मन्वन्तर का समारम्भ समझना चाहिये।

ब्रज लोक-साहित्य में सौन्दर्य और शिव भावना

(डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, आगरा)

लोक-साहित्य का अर्थ—

लोक साहित्य आज एक पारिभाषिक शब्द बन गया है। समाज की अलिखित प्रायः समस्त सामग्री इसके अन्तर्गत आती है। कथा, कहानी, गीत, अनुष्ठान आदि सभी इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। लोक-साहित्य वस्तुतः एक ऐतिहासिक परम्परा है। इसके द्वारा समाज की विचार-परम्परा एवं चिंतन धारा पर तीखा प्रकाश पड़ता है। सन् १७०६ में स्काट लैंड के देशभक्त फ्लैंगर ने ठीक ही कहा था कि "किसी भी जाति के लोकगीत उसके विधान से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।"

'लोक-साहित्य स्पष्टतः दो शब्दों से मिलकर बना है—लोक और साहित्य। इसका सामान्य अर्थ जनता का साहित्य है। कतिपय विद्वानों ने साहित्य सर्जना की दो परिपाटी मानी है—वेद-परिपाटी और लोक परिपाटी। इस मान्यता के अनुसार वाल्मीकि रामायण, कालिदास के नाटक प्रभृति रचनाएँ भी 'लोक साहित्य' के अन्तर्गत आ जायेंगी। परन्तु 'लोक-साहित्य' वस्तुतः भिन्न प्रकार के साहित्य का ही द्योतन करता है। इसका सम्बन्ध समाज के उस वर्ग से है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता, पाण्डित्य चेतना आदि से रहित है। इस प्रकार लोक साहित्य का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामान्य रूप प्राय: इस प्रकार ठहरता है—"लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत या बोलीगत अभिव्यक्ति आती है जिसमें परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषगत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी व्यक्ति विशेष की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति "सुना-सुनाया" ही माना जाता है और जो लोक मानस की प्रवृत्ति में समाई हुई हों।

पोषण तोषण और मोदन की लोक-अभिव्यवितयों का वाणी रूप लोक साहित्य के अन्तर्गत आता है।

सौन्दर्य और शिव की भावना का विवेचन—

तोषण वृत्ति का सम्बन्ध मुख्यत: हमारी स्थूल आवश्यकताओं के साथ है – वह 'प्रयोजन' से सम्बद्ध है। "तोषण एवं मोदनं" वृत्तियां प्राय: प्रयोजनातीत है, उनका सम्बन्ध हमारे मानसिक जगत के साथ है।

जीवन में चारों ओर संघर्षों, दुर्घटनाओं, दुर्व्यस्थाओं, अनाचार आदि को देखकर हम घुटन और बेचैनी का अनुभव करने लगते हैं। इस समय हमें ऐसा लगने लगता है कि न्याय, नियम एवं ईश्वर नाम की कोई सत्ता है ही नहीं। परन्तु दूसरे ही क्षण हमें अन्धकार के पीछे से प्रकाश की किरण प्रकट होती हुई दिखाई दे जाती है। और हम मंगल-प्रकाश को देखकर विस्मय-पूर्ण आह्लाद से अभिभूत हो उठते हैं। इसे हम स्वभाववश अधर्म के ऊपर धर्म की जय कहते हैं और इसके प्रति आत्म-निवेदन करना अपना सौभाग्य-सुख मानते हैं। इसे सौन्दर्य की अनुभूति कहा जाए अथवा "शिवत्व" का साक्षात्कार कहा जाए। वस्तुत: दोनों में भेद-स्थापन करना कठिन है। दोनो एक ही सिक्के की दो पीठे हैं। जो हमे अच्छा लगता हैं, हम उसका कल्याण चाहते हैं और जहां हम कल्याण देखते हैं वहां से हम हटना नहीं चाहते है। श्रद्धा और सौन्दर्य की गंगा-यमुना के मध्य ही "शिव" रूप सरस्वती का दर्शन सम्भव होता है। व्यक्तिगत स्तर पर जो लाभ अथवा उपयोगिता है, सामाजिक स्तर पर वही कल्याण अथवा शिव है।

वाह्यरूप के आधार पर सौन्दर्य के मानदण्ड निर्धारित करना असम्भव है। सौन्दर्य वस्तुत: अनिर्वचनीय है—

> विते न अनियारे द्रगअ, विती न जुवति जहान।
> वह चितवन औरै कछु जिहि वस होत सुजान।।

सामान्यत: तदाकार परिणति सौंदर्य का लक्षण है। जो वस्तु जितनी अधिक देर तक हमारी व्यक्तिगत चेतन को हवा कर दें, वह वस्तु उतनी ही अधिक सुन्दर कही जाती है। परन्तु फिर भी सौन्दर्य का सामान्य मान होता है। ठीक ही है रूप-रिझावन हार वै, ये नैना रिझवार। स्वरूप दर्शन में जब सौन्दर्य की भावानुभूति होती है तब 'शिव' नामक सात्विक-भावना का उदय होता है। 'प्रेम' इसी का व्यावहारिक रूप है—

> देखत ही जो मन करै, सुख अंखियन को देइ।
> रूप बखानै ताहि जो जग चेरौ कर लेइ।।

अत: स्पष्ट है कि सौन्दर्य एवं शिव की भावनाएं विषयगत एवं विषयिगत दोनों ही स्तरों पर अभिव्यक्त होती हैं। इसी कारण सामुद्रिक की यह उक्ति चरिचार्थ होती है—आकृति गुणों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की परिचायिका है—"यत्राकृति यत्र गुणा वसन्ति" । कर्त्तव्य-पथ पर शिव और सौन्दर्य का अभेद स्पृहणीय है -

वही प्रक्षा का का सत्य स्वरूप, हृदय में बनता प्रणय अपार।
लोचनों में लावण्य अनूप, लोक सेवा में शिव-अविकार।।

जिस प्रकार सूर्य समस्त प्रकाश का स्त्रोत है, उसी प्रकार 'शिव' समस्त सौन्दर्य का उद्गम है। शिवानुभूति की व्यापकता के साथ ही सौन्दर्यानुभूति का क्षेत्र व्यापक बनता जाता है, और हमारे दृष्टि-पथ से नित्य नवीन आवरण हटते जाते हैं। जीवन-सौन्दर्य का नित्य-नवीन संस्पर्श ही कला और दर्शन की प्रेरणा है। पवित्र हृदय रूपा दर्पण में ही सम्यक् सौन्दर्य का प्रतिफलन सम्भव है।

ब्रज लोक-गीतों के सौन्दर्य और शिव की भावना—

दिल्ली के दक्षिण से लेकर इटावा तक तथा अलीगढ़ से लेकर धौलपुर और ग्वालियर तक ब्रज-जनपद का प्रसार है। ब्रज का अतीत अत्यन्त गौरवमय एवं महिमामंडित है। यहाँ की महिमा अपार है—

नारायण ब्रज-भूमि कों को न नवावै माथ।
जहाँ आइ गोपी भये श्री गोपेश्वर नाथ।

इसके गौरवशाली अतीत से सम्बन्धित इसकी अनेक परम्पराएँ हैं। इनकी जड़ें धरती में है और पत्ते आसमान का स्पर्श करते हैं। यहाँ के लोक-गीत इस महामहिम मौखिक परम्परा के प्रतीक है। यहाँ की छोटी-छोटी कथाओं में ब्रज-वासियों की जिज्ञाषा और विस्मय समन्वित विजय-मात्रा की अमर कहानी अंकित है।

ब्रज के अनेक लोक-गीतों में नारी के सौन्दर्य और उसके 'सत्' की परीक्षा में खरे उतरने की कहानियाँ एक साथ कही गई है। सावन का झूला, फाग और होली के गीतों तथा रसिया का प्रचार ब्रज में सबसे अधिक है। इनके विषय निराले-निराले हैं। इनमें हमको ऐतिहासिक विकास एवं जन-जीवन के प्रवाह के महत्वपूर्ण संकेत प्रायः मिल जाते हैं। इस प्रकार के गीति प्रायः सुने जा सकते हैं जिनमें पति वेश बदल कर अपनी पत्नी के पास आता है और अपने साथ चलने के लिए उससे अनुनय करता है। पत्नी उस 'पथिक' में अपने छोटे देवर की उनहार देखकर भी उससे दो टुकड़ा मना कर देती है। एक 'डावर नैनी' के गीत में सुन्दरी बटोही रूप पति को भगा देती है—

आगि लगाऊँ तेरे पीयरी रे बटाऊ ढोला
मौंछन बड़ौ रे अंगार
डाढ़ी तो जाऊं तेरे बाप की रे बटाऊ ढोला
जरिजइयो सेत सुपेत।
जिन पीयन केरे हम गोरड़ी रे बटाऊं ढोला
तुमसे भरे कहार

अपनी सास् के द्वारा जब उसको यह विदित होता है कि वही तो उसका प्रियतम था, तो वह निराश होकर केवल इतना कह देती है कि—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाजूं तो पहुँचूं नहीं मेरी सासुल रानी
हेला देते आवे लाज ।

नारी के इस शील को देख कर किस मानवता के पुजारी का सिर गर्व से ऊपर न उठ जाएगा ?

ब्रज के लोक-गीतों में सम्पूर्ण प्रकृति चेतन और जड़, दोनों के सौन्दर्य का वर्णन नख-शिख परिपाटी पर देखिए—

रम्भा चली है सिंगार बनाइ
चोवा चंदन अतर अरगजा केसर अंग रमाय ।
बनी है मलूक ताकी सोभाहू कही न जाए ।
सुन्दर स्वरूप जामे भवर लपेटा खाई ।
रवि कैसो तेज जाकी देही में रह्यो है छाई ।
मांगहू संभारि और लट लीनी लटकाई
काले नाग फन पै सिन्दूर बेंदी बल खाई ।
तनी है कमानी दोउ भौंह रही बलखाई ।
नैन रहे झर्राइ ।
रम्भा चली है सिंगार बनाई ।

नारी सौन्दर्य के प्राय: समस्त चित्र रसिकता में आकण्ठ निमग्न है । यथा—

गोरी बांके जुबनवा छिपाये जाति, मन रसिक छैल के लुभाये जात ।
बाट चलत चपला सी चमकति पतरी कमरि बलि खाये जात ।
भौंह नचाय गड़ाय के नैना मंद मंद मुसकाये जाति ।

विवाहादि के अवसर पर स्त्रियाँ 'बरना' गाती हैं । इन गीतों में पुरुष के शृङ्गार एवं सौन्दर्य के विविध प्रकार वर्णन किए जाते हैं ।

सावन के महीने में प्रकृति सुन्दरी की शोभा देखते ही बनती है—

लरज-लरज के घटा घुमड़ि सावन की बरसानी
गैल घाट में सिमिति-सिमिटि के भरि आयो पानी ।
छाइ रही चहुँ दिसि हरियाली ।

प्रकृति के इस वर्णन को साहित्य शास्त्री सहज ही 'विम्ब-योजना' कह देंगे । श्रावण के बादल मानो माली बन कर आगए हैं । जब वे चेतन हैं तो घास भी पीछे क्यों रह जाए । उसकी भी सुषुप्त भावनाएं जग उठती हैं—

जैसे सूख बाग आज कोई सींच रह्यौ माली ।
घास ने होड़ लगाई है ।
और इसके साथही—आइ गयौ सावन ज्वानी में ।

इन गीतों में पुरुष का सौन्दर्य पुरुषत्व के तेज से दीप्त न होकर मकरध्वज के रस द्वारा मण्डित दिखाई देता है । जिसे देखो वह बाँका छैला बना हुआ है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुरमानी बलम तेरी आंखरियाँ, हम पर जादू डारि गयी ।
आपु पियें सरबत के प्याले, हमें पियाय गयौ भांगरिया ।

इन गीतों में नीति के उपदेश तथा सामान्य ज्ञान की बातें भरी पड़ी हैं। सब का उद्देश्य समाज-कल्याण है। अनेक ऐसे भी गीत मिल जायेंगे जिनमें अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष दोनों रूपों में समाज सुधार की आवाज उठाई गई है। गाजी गाढ़े पर निम्नलिखित रसिया में तड़क-भड़क दार विलायती कपड़ों पर व्यर्थ पैसा व्यय करने के विरुद्ध पाठ पढ़ाया गया है—

अब देउ विदेसी त्याग गजी गाढ़े तन धारों रे ।
वस्त्र भड़क पर झोरी भरि भाई वृथा न डारो रे ।

कभी-कभी बहुत ही सामान्य कोटि के गीतों में बहुत ही उच्च कोटि की शिव भावना व्यक्त हुई दिखाई देती हैं। सब शाकों की सभा हो रही है। प्रस्ताव है कि जिमीकंद को सभापति बना दिया जाए। जिमीकंद को सभापति बना देने में किसी को कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु सब एक बात चाहते हैं कि पहले इसके तन की खुजली मिटा दी जाए, तब इसको सभापति के उच्च आसन पर प्रतिष्ठित किया जाए—

इन बातन को सुन करकें बोले भटा
इन बातन में काऊ दिन ना चलि जाए लठा ।
याके तन की तो खुजरी मिटाय देउ ।

यदि सभापति का आसन वे ही लोग ग्रहण करें जिनके शरीर में खुजली न हो अर्थात जिनका व्यक्तित्व निर्मल हो, तो हमारे समाज का रूप ही बदल जाए।

ब्रज की लोक कथाओं में शिव भावना—

ब्रज के लोक-जीवन में अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। जीवन के प्रत्येक पक्ष, प्रत्येक त्योहार, प्रत्येक पर्व, प्रत्येक व्रत उपवास आदि से सम्बन्धित कहानी हमारा मार्ग-दर्शन एवं ज्ञान-वर्धन करती हुई दिखाई देती है। ये कहानियाँ दोनों ही प्रकार की होती हैं—अभिप्राय गर्भित और मनोरंजन गर्भित भी। अभिप्राय गर्भित कहानियाँ प्रायः दो वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं— आनुष्ठानिक और उपदेशात्मक अनुष्ठानिक कहानियों में सत्यनारायण की कथा जैसी कथाएँ, करवा चौथ, गणेश चौथ, हरिछट आदि व्रतों की कहानियाँ तथा कार्त्तिक स्नान आदि का माहात्म्य की बोधक कहानियाँ आती हैं, जिन्हें घर-घर में काकी, नानी और दादी कहती सुनती हुई देखी जा सकती हैं। मनोरंजक वर्ग की कहानियों में हास्य कथाएँ, चुटकुले, तथा ठगों की चतुराई की अनेक कहानियाँ सुनी जा सकती है। इनके अतिरिक्त परियों की कहानियाँ और राजकुमारों के बल-विक्रम की अनेकानेक गाथाएँ भी ब्रज में प्रचलित पाई जाती है।

अभिप्राय गर्भित प्रत्येक कहानी के गर्भ में कोई न कोई उपदेश झाँकता हुआ दिखाई देता है। उस उपदेश की आत्मा स्वार्थ-सिद्धि न होकर परमार्थ-साधन होती है। इन कहानियों का उपसंहार प्राचीन नाटकों सदृश भरत वाक्य की भाँति होता है। प्रायः इस प्रकार की शब्दावली द्वारा कहानी का अन्त होता है कि जैसी अमुक के घर सुख-सम्पत्ति भई वैसी सब काऊ के होय। यह लोक-कल्याण की भावना ही ब्रज-लोक कथा का जीवंत रस है। कोई भी कहानी ले लें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्येक का सारांश यही होगा कि अतिथि के लिए सदैव घर का द्वार उन्मुक्त रखें, अतिथि का अनादर कभी न करें। अतिथि के सत्कार द्वारा धन-धान्य और श्री की अभिवृद्धि आती है। दिवाली की कहानी बताती है कि लक्ष्मी उसी के घर में निवास करती है जो अंधेरी रात में भी अतिथि-सत्कार के लिए तत्पर रहता है। अंधेरे के समय राहगीर की सुविधा के विचार से जो व्यक्ति अपने मकान के दरवाजे पर रोशनी रखता है, वही जीवन के सौन्दर्य का साक्षात्कार करता है।

ब्रज की शायद ही कोई ऐसी लोक-कथा हो जिसमें 'शिव' तत्व न बिखरा पड़ा हो। गणेश चतुर्दशी की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। एक कहानी एक बुढ़िया की कहानी है। वह घर के सदस्यों के अतिरिक्त अन्यान्य व्यक्तियों को खीर खिलाती रहती है और उसकी कढ़ाई की खीर खत्म होने में ही नहीं आती है। गणेश चतुर्दशी की एक कहानी में राजा का मिस्त्री एक बुढ़िया के लिए कृष्ण की मूर्ति बनाने में आना कानी करता है, बुढ़िया रूठ कर चली जाती है। फलतः राजा का महल पूरा होने में ही नहीं आता है—कारीगर जितना महल बनाते हैं, उतना ही महल टूट-फूट जाता है। अन्ततोगत्वा जब बुढ़िया के लिए मूर्ति बन जाती है, तब राजा का महल का निर्माण निर्विघ्न चलता है। अभिप्राय स्पष्ट है। सुख से रहने के लिए हम बाँट कर खाएं 'अपना पेट हाऊ। मैं न देऊँ काहूँ' को जपना छोड़ दें।

निष्कर्ष—

ब्रज के लोक-साहित्य का अध्ययन सचमुच बहुत ही मनोरंजक रंजनकारी एवं ज्ञान-वर्द्धक है। इसकी गुदड़ी में अनेक लाल छिपे पड़े हैं। उसकी सौन्दर्य भावना सर्वथा कुंआरी है, और उसमें अभिव्यक्त शिवभावना स्पृहणीय है। ब्रज के लोक-गीत ब्रज-भारती के प्रतीक हैं, ब्रज की आत्मा को इन से अलग करके देखना समझना सम्भव नहीं हो सकता। नई लीक डालने का इच्छुक कोई भी कलाकार इनके अनूठेपन पर गर्व कर सकता है, एक से एक नई प्रेरणा ले सकता है, क्योंकि इन पर प्रादेशिकता की छाप कहीं भी इतनी गहरी नहीं हो पाई है कि असीम मानवता की आवाज दब जाए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल [२]

(श्रीवृन्दावनदास)

प्रथम लेख में द्विवेदी युग तक का इतिहास लिखा जा चुका है। प्रस्तुत लेख में परवर्ती साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करना अपेक्षित है। भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग का कुछ और वर्णन भी प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र के समय से प्रारम्भ होता है। भारतेन्दुजी इस युग के प्रवर्तक थे। कुछ ऐतिहासिकों का मत है कि भारतेन्दु का व्यक्तित्व इतना महान् था कि उनकी तुलना में उनका पूर्ववर्ती और परवर्ती कोई साहित्यकार नहीं ठहरता। उनके द्वारा किये हुए जन-जागरण से उत्तर भारत में नवजीवन का संचार हुआ और जनता को प्रेरणा प्राप्त हुई। उन्होंने रीति कालीन विलास पूर्ण कविताओं की ओर से जनता का ध्यान हटा कर उसे देश प्रेम, समाज सुधार और सामाजिक संगठन की ओर उत्प्रेरित किया। साहित्य क्षेत्र में भारतेन्दु का उदय नवयुग की चेतना को अपने साथ ही लाया।

स्वयं भारतेन्दु जी ने जन-जागृति के लिए जातीय संगीत को एक माध्यम चुना। जातीय संगीत के लिए विषयों का निर्धारण करते हुए उन्होंने पत्रिका में लिखा, "बाल विवाह, जन्मपत्री की विधि, बालकों की शिक्षा, बालकों से बर्ताव, अंग्रेजी फैशन, स्वधर्म चिन्ता भ्रूण-हत्या, शिशु-हत्या, फूट, हत्या और बैर, मैत्री और ऐक्य, बहु जातित्व और बहु भक्तित्व के दोष, पूर्वज आर्यों की स्तुति, जन्मभूमि, आलस्य और सन्तोष, व्यापार की उन्नति, नशा, अदालत, हिन्दुस्तानियों की वस्तु हिन्दुस्तानियों को व्यवहार करना, भारतवर्ष के दुर्भाग्य का वर्णन, ऐसे ही और विषय जिनमें देश की उन्नति की संभावना हो लिये जांय। यद्यपि यह एक-एक विषय एक-एक नाटक, उपन्यास या काव्य आदि के ग्रन्थ बनाने के योग्य है और इन पर अलग-अलग ग्रन्थ बने तो बड़ी उत्तम बात है पर यहाँ तो इन सब के छोटे-छोटे सरल देश भाषा में गीत और छन्दों की आवश्यकता है जो पृथक् पुस्तकाकार मुद्रित होकर साधारण जनों में फैलाये जांयगे।"

भारतेन्दु ने स्वधर्म, स्वजाति, स्वभाषा और स्वदेश का सामूहिक स्वर ऊँचा किया। वे लिखते हैं।

"इक भाषा, इक जीव, इक मति के लोग।
तबै बनत है सबन सों मिटत मूढ़ता सोग॥

उन्होंने भाषा और साहित्य को सब उन्नति का मूल माना और अपनी भाषा में प्रचुर साहित्य की रचना की। उनका कथन है—

"निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल"

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अग्रदूत थे। उन पर भारत की तत्कालीन अवनत अवस्था देखी न जाती थी। वे फूट और चारित्रिक ह्रास से दुःखी हो जाते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत में सब भिन्न अति ताहीं सो उत्पात ।
विविध देश, मतहू विविध, भाषा विविध लखात ।।
बहुत हमने फैलाये धर्म, बढ़ाया छूतछात का कर्म ।

उनके काल की काव्य धारा समाज सुधार और देश भक्ति की प्रेरणा प्रदान करती थी। साहित्यकार पत्रकारिता से पृथक् नहीं हो सकते भारतेन्दु ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और अनेक नई पत्रिकायें प्रकाशित कीं। उन्होंने नव चेतना की प्रेरणा दी और राष्ट्रीय भावना एवं देश प्रेम का संचार किया।

वस्तुतः आधुनिक काल के पूर्व साहित्य शब्द का अर्थ पद्य से ही बोधित होता था। गद्य का बहुमुखी विकास इस युग की प्रमुख विशेषता है। आधुनिक काल की इस विशेषता के संदर्भ में आलोचकों ने इसका नाम गद्यकाल भी रक्खा है। नाटक, उपन्यास कहानी, निबन्ध, समालोचना, संस्मरण-वृत्त, जीवन चरित्र, आत्म-कथा, एकांकी आदि गद्य साहित्य के वे विभिन्न रूप हैं जिन्होंने भारतेन्दु युग के साहित्यकारों को आकर्षित किया। इस युग में इस प्रकार के साहित्य-निर्माण में महान् प्रगति हुई।

इस युग में गद्य के साथ-साथ पद्य का कोई विकास न हुआ हो ऐसी बात नहीं है। गद्य के लिए तो खड़ी बोली उपयुक्त भाषा थी ही। धीरे-धीरे पद्य में भी खड़ी बोली का ही व्यवहार होने लगा। यद्यपि भारतेन्दु-काल में ब्रजभाषा का भी पद्य में यथेष्ट प्रयोग होता था खड़ी बोली काव्य का उसी काल से निर्माण होने लगा था। जातीय संगीत का ग्रामों में प्रचार करने के लिए भारतेन्दु ने कजली, ठुमरी, खेमटा, कहरवा, गजल, होली, सांझी, लावनी, बिरहा आदि छन्दों पर जोर दिया।

भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र ने हिन्दी साहित्य में युगान्तर स्थापित किया। शैली में नवीनता, गद्य का विकास, निबन्ध साहित्य, रंगमंच का संगठन, साहित्यिक गोष्ठियों की स्थापना और अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन भारतेन्दु युग की विशेषतायें हैं। डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी कहते हैं, "भारतेन्दु जी ने हिन्दी गद्य को नई विधायें प्रदान की। उनकी शैली सहज, स्वाभाविक और सक्षम थी।"

गद्य और पद्य दोनों की दृष्टि से आधुनिक काल को पाँच चरणों अथवा युगों में विभक्त किया जाना चाहिये। प्रथम युग भारतेन्दु के साथ समाप्त होगया। भारतेन्दु की मृत्यु माघ कृ० ६ सं० १९४१ वि० (६ जनवरी सन् १८८५ ई०) को हुई थी। उस समय उनकी आयु चौंतीस वर्ष ४ महिने की थी।

आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य का दूसरा युग आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से आरम्भ होता है। द्विवेदी जी ने खड़ी बोली को काव्य का भी माध्यम बनाया। उनका भाषा की शुद्धता पर विशेष आग्रह था। द्विवेदी जी के कठोर नियन्त्रण में श्रृंगार वादी भावना को रीतिकालीन अश्लीलता की संज्ञा दी गई और उसका बहिष्कार किया गया। द्विवेदी काल में सौन्दर्य वादिता को मानो निर्वासित ही कर दिया गया था। द्विवेदी जी एक विशेष प्रणाली के प्रवर्तक थे जिसमें कविता राजनीतिक चेतना का प्रतीक थी। उस कविता में स्वतन्त्रता-आन्दोलन प्रतिबिम्बित होता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्विवेदी युगीन साहित्य में विचार-स्वातन्त्र्य की भावना उभर कर आई, बुद्धिवाद के आलोक में पुरानी मान्यतायें और रूढ़ियाँ विलीन होगईं। नये तथ्य तथा मानदण्ड स्थापित किये गये। धार्मिक रूढ़ियों और अन्ध विश्वासों पर कुठाराघात हुआ! नवीन मान्यताओं और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना हुई। दलित और शोषित वर्ग के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की जाने लगी।

द्विवेदी जी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। वे पत्रकार, आलोचक, निबन्धकार सभी कुछ थे। उन्होंने साहित्य को न केवल एक नई दिशा दी अपितु उसके परिष्कार की भी एक शैली निश्चित की। उनका यह कार्य उनकी कृतियों से भी अधिक महत्वपूर्ण था। उन्होंने न केवल सरस्वती के माध्यम से साहित्य में संशोधन किया अपितु अन्य प्रचलित साहित्य के दोषों के प्रति साहित्यिकों का ध्यान आकर्षित किया। साहित्य-परिष्कार का यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण था।

महावीर प्रसाद द्विवेदी सच्चे अर्थों में आचार्य थे। उन्होंने आचार्य के रूप में साहित्य का मार्ग दर्शन किया। उनका समय इसी में व्यतीत होता था। उन्होंने लोक रुचि को परिष्कृत किया। वे स्वयं साहित्य-निर्माण अधिक न कर सके परन्तु उन्होंने अनेक व्यक्तियों को लेखक और कवि बना दिया। उन्होंने एक रीति की स्थापना की। संस्कृत में जो मान अभिनव गुप्त और मम्मत को आचार्य होने के नाते प्राप्त है वह हिन्दी में आचार्य द्विवेदी को है। द्विवेदो जी ने पुस्तक समीक्षा और समालोचना में भी युगान्तरकारी दिशा-बोध प्रदान किया। वे समाज सुधार और सत्साहित्य की ओर जनरुचि उत्पन्न करने के ही लिए लिखते गे।

द्विवेदी जी की शिष्य परम्परा में श्री मैथिली शरण गुप्त और पं० रामनरेश त्रिपाठी अग्रगण्य हैं। ये दोनों भी साहित्यिक क्षेत्र की महान् विभूतियाँ थे। गुप्तजी की भारत भारती युग-चेतना की प्रतीक थी। गुप्त जी ने 'साकेत श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के एक लेख "उर्मिला विषयक कवियों की उदासीनता" शीर्षक के आधार पर लिखी।

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् श्री जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ' में लिखते हैं, "द्विवेदी जी ने उस उर्वरा भूमि को तैयार किया जिसमें प्रेमचन्द जैसे उपन्यास कार, रामचन्द्र शुक्ल जैसे समालोचक, और बाबू श्यामसुन्दर दास जैसे निबन्धकार पुष्पित और पल्लवित हुए।"

द्विवेदी युग में कविता खड़ी बोली में ही लिखी गई। द्विवेदी जी के प्रभाव के कारण व्रजभाषा में कविता लिखना बन्द हो गया। जन साधारण की उपयोगिता का साहित्य-सृजन द्विवेदी युग की विशेषता थी। शृङ्गार की भावना अश्लील समझी गई। जनवादी चेतना, इतिवृत्तात्मकता राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं का दिग्दर्शन और समाधान साहित्य-सृजन के लक्ष्य निर्धारित हुए। अतीत गौरब का स्मरण, स्वातन्त्र्य प्रियता, नारी के प्रति सम्मान की भावना, मानवता वादी विचारधारा द्विवेदी युगीन साहित्य के मुख्य अंग थे। स्त्री पुरुषों की समानता, कृषकों और श्रमिकों के शोषण के विरुद्ध आवाज, उनके दुःख दर्द की कहानी, पीड़ित और दलितों के प्रति सहानुभूति, मानव सेवा ही ईश्वर सेवा सेवा है आदि विषयों की झाँकी द्विवेदी युगीन साहित्य में प्रचुरता से परिलक्षित होती है।

छायावाद

आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य का तीसरा युग छायावाद का है। छायावादी युग में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्विवेदी युग की इत्तिवृत्तात्मकता का विरोध हुआ और सूक्ष्म सौन्दर्यवादी दृष्टि को पोषण प्राप्त हुआ। भाषा का परिमार्जन, अलंकारिक शैली, संस्कृत शब्दों का प्रयोग, प्रतीकों की भरमार, अन्योक्तियों की प्रचुरता, लाक्षणिकता का प्रवेश, वैचित्र्य प्रदर्शन आदि छायावादी साहित्य के विशेष गुण हैं। छायावादी कविता की मुख्य टक्कर द्विवेदी युगीन काव्यधारा से थी। द्विवेदी युग की विचार-धाराओं को अपदस्थ करना छायावादी कविता का मुख्य ध्येय था। छायावादी साहित्य में द्विवेदी युग की स्थूल भावनाओं के स्थान पर सूक्ष्म भावनायें प्रतिष्ठित हुईं। छायावादी कवियों ने सौन्दर्य की अनुभूति, प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन और आत्मा के सौन्दर्य को काव्य में स्थान दिया।

छायावाद सौन्दर्य बोध को प्रदर्शित करता है, उसमें एक दार्शनिक दृष्टिकोण रहता है। जय शंकर प्रसाद के साहित्य में आनन्द वाद के दर्शन होते हैं। प्रसाद का आनन्द वाद बीसवीं शताब्दी की गतिविधियों की सानुकूलता लिये हुए है। छायावाद क्या है इसका साधिकार वर्णन प्रसादजी ने किया है, वे कहते है, "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश, विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया। मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसे ही कान्ति की तरलता अङ्ग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छित्ति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था। इस दुर्लभ छाया का संस्कृत काव्योत्कर्ष काल में अधिक महत्व था। छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्य, प्रकृति विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आन्तर स्पर्श करके आत्म-समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति की छाया कान्तिमयी होती है।"

छायावादी कवि का आदर्श एक सौन्दर्यमय संसार है। जब उसको इस कल्पना में पराजित होना पड़ता है तो उसे वेदना होती है। मान लीजिये वह श्रमिकों और कृषकों में स्वस्थ, समृद्ध और सुखी जीवन की कल्पना करता है और जब उसे उनको दुःखी देख कर निराशा होती है तो उस पराभव को स्वीकार करता हुआ वह वेदनाग्रस्त हो जाता है। छायावादी कवि पीड़ित मानवता के प्रति संवेदनशील है।

सुमित्रानन्दन पंत के छायावाद में पाश्चात्य प्रभाव की झलक है। उनके छायावाद का आधार पाश्चात्य रोमांटिसिज्म पर है। प्रसाद जी का छायावाद भारतीय परम्पराओं और कल्प-नाओं के अनुकूल है तो पंतजी का पाश्चात्य परम्पराओं पर आधारित है।

महादेवी वर्मा का सिद्धान्त मनुष्य के प्रकृति से रागात्मक सम्बन्ध पर आधारित है। महादेवी जी मनुष्य का प्रकृति से सम्बन्ध अविच्छिन्न मानती हुई कहती हैं, "मनुष्य को बाह्य सौन्दर्य की ओर से हटाकर उसे प्रकृति के साथ अपने अविच्छिन्न सम्बन्ध की स्मृति दिलाने का श्रेय छायावाद को है। मनुष्य का प्रकृति से शाश्वत सम्बन्ध है, केवल हम लोग उसे भूल सा गये हैं। हममें से प्रायः सभी बचपन में तितलियों के साथ दौड़े हैं, चिड़ियों के साथ गाते रहे हैं, कोई फूल खिला देख कर ऐसे प्रसन्न होते हैं मानो वह हमारे हृदय में ही फूला हो। परन्तु बड़े होने पर हमारा जीवन ऐसे कृत्रिम बन्धनों में जकड़ जाता है कि उस ओर न तो ध्यान देने की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इच्छा होती है और न अवकाश मिलता है। वास्तव में प्रकृति में सान्त्वना और आनन्द देने की अपूर्व शक्ति होती है। तारों जड़ी चाँदनी रात रोगी को नर्स से अधिक सुख दे सकती है, यदि वह उसकी भाषा समझने में समर्थ दो।"

छायावाद अभिव्यक्ति का एक विशेष ढंग है। प्रतीकों से अभिव्यक्ति में स्पष्टता का अभाव हो जाता है और यही अस्पष्टता छायावाद कहलाती है। सांस्कृतिक पुनरुत्थान भी छायावादी कविता की विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम। है कामापनी की सामग्री वेदों और ब्राह्मणों से ली गई है, पंतने अपनी रचनाओं में उपनिषदों को आधार बनाया है, महादेवी ने वेदान्त और सांख्य को। निराला जी भी अपनी कृतियों का विषय सांस्कृतिक पुनरुत्थान को ही बनाते थे।

आधुनिक हिन्दी कविता में रहस्यवाद

रहस्य की प्रवृत्ति छायावाद की ही एक विशेषता है। छायावादी कविताओं में रहस्य की प्रवृत्ति का बड़े वैज्ञानिक ढंग से विवेचन हुआ है। डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में अब तक की सारी कविता का मर्म प्रिय को भगवान और भगवान को प्रिय बनाना है। प्रथम मनोवृत्ति का विकास भक्ति काल में हुआ, दूसरी मनोवृत्ति का आज के युग में हो रहा है। छायावाद युग में धर्म का स्थान आध्यात्मिकता ने ले लिया।

एक तरह से देखा जाय तो रहस्यवाद की परम्परा आदि काल से चली आ रही है। अपभ्रंश काल में भी सिद्ध और नाथ योगियों ने रहस्यवाद का अपनी कविताओं में प्रयोग किया। उनकी कविताएँ रहस्यमयी थीं। सिद्ध लोग सांकेतिक भाषा में अपनी साधना का रहस्य प्रकट करते थे। कबीरदास की रचनाएँ रहस्यवादी थीं जैसे—

दुलहिनि गावहु मंगल चारि,
हम घर आये हो राम भरतार,
हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया
चली मैं खोज में पी की मिटी नहीं सोच यह जी की
रहे नित पास मेरे, न पाऊँ यार को हेरे।

रहस्यवादी कवि प्रतीकों का प्रयोग करते हैं। जायसी ने प्रेम गाथा के रूप में रहस्यवादी काव्य का सृजन किया। प्रेम की पीर सूफीमत की आधारशिला है। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म को प्रेयसी और आत्मा को प्रियतम माना है। सूफियों की जिस प्रकार प्रेम की पीर है जैनियों का उसी प्रकार प्रेम का प्याला है। रहस्यानुभूति कवियों की गम्भीर दार्शनिक प्रवृत्ति की परिचायक है। प्रसिद्ध छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने रहस्यवाद के सम्बन्ध में लिखा है, "वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौंदर्यमयी व्यञ्जना होने लगी है। साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष सहानुभूति, समरसता तथा तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहम् का इदम् में पर्यवसान का सुन्दर प्रयत्न है। हाँ, विरह भी युग की वेदना के अनुकूल मिलन का साधन बनकर इसमें सम्मिलित होता है। वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति हैं इसमें सन्देह नहीं।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रगतिवाद

आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य का यह चौथा युग है। इसमें निम्न वर्ग के हितों के प्रति साहित्य का निर्माण हुआ। मार्क्सवादी विचारधारा का प्राबल्य दृष्टिगोचर हुआ। प्रगतिवाद यथार्थवाद पर आधारित है। इसकी भाषा शैली, इसकी उपमाएं, रूपक और प्रतीक सुगम और सरल होते हैं। इसमें शोषित वर्ग का पक्ष ग्रहण किया गया है और उसके लिए मंगल कामना की गई है। प्रगतिवादी कविगण का सामाजिक पुनरुत्थान मुख्य ध्येय है। इस युग की मुख्य प्रवृत्तियां निम्नलिखित हैं:— १—कविता में जन जीवन का दर्शन, रूढ़ियों की अवहेलना, स्वतन्त्रता आन्दोलन का समर्थन, महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धा, देश के नेताओं के प्रति स्नेह, अंग्रेजी शासन की भर्त्सना, स्वदेशी के प्रति प्रेम, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, खादी प्रचार, हिन्दू मुस्लिम एकता आदि।

प्रगतिवाद युग द्विवेदी युग की पुनरावृत्ति है। प्रगतिवाद में द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता के प्रति आग्रह है। कला जीवन के लिए है प्रगतिवाद इसकी स्वीकारोक्ति है। द्विवेदी युगीन दृष्टिकरणो सुधारवादी और प्रगतिवादी दृष्टिकोण क्रान्तिवादी है। छायावादी कविता के चरमोत्कर्ष में भी नवीन युग की चेतना की ठीक अभिव्यक्ति नहीं हो पा रही थी। छायावादी कविता के ह्रासोन्मुख होते ही प्रगतिवादी काव्यधारा का प्रादुर्भाव हिन्दी साहित्य की परम्परा का स्वाभाविक विकास है। छायावादी साहित्य की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिशील साहित्य की परम्परा विकसित हुई। वस्तुत: प्रगतिशील कवि का लक्ष्य भाषा को सरल सुबोध और भावों की अभिव्यक्ति के योग्य बनाना है। इस युग की कविता में प्रगति के दर्शन होते हैं। सांस्कृतिक समन्वय, राष्ट्रीयता की भावना, यथार्थवाद, मानवता की महत्ता का प्रकाशन, नारी स्वातन्त्र्य का उद्‌घोष, प्रेम का भी सामाजिक स्वरूप, सरली कृत कलापक्ष आदि प्रगतिशील काव्य के मुख्य अंगों के रूप में सामने आये।

प्रयोगवादी युग

आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य का पाँचवां और वर्तमान युग प्रयोगवादी युग है। श्री धर्मवीर भारती ने इस युग की बड़े सुन्दर शब्दों में व्याख्या की है। वे कहते हैं, "जहां तक इस काव्य में नई परिस्थितियों से प्रभावित नई अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए नये काव्यरूप, नई कल्पनाएं नये गठन खोजी गईं वहां तक यह काव्य निश्चय ही विकास और प्रगति में न केवल सहायक सिद्ध हुआ है वरन् वह एक बहुत महत्वपूर्ण चरण रहा है।"

जब प्राचीन रूढ़ियों और संस्कारों से मनुष्य को खिन्नता होने लगती है तो वह नूतनता की ओर अग्रसर होता है। उदाहरण के लिए छायावाद की सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति प्रगतिवाद युग में सामाजिक यथार्थ दर्शन के रूप में विकसित हुई। प्रयोगवादी कविता में प्रयोगों का अन्त नहीं। छन्द के क्षेत्र में भी अगणित प्रयोग हुए हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि कहीं लय है न गति। आग्रह मुक्ता छन्द और लोक शैली की ओर है। छन्दबन्ध को कविता का अनिवार्य अंग नहीं समझा गया है। प्रयोगवादी साहित्य में बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रचुर उपयोग है, अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों का स्वच्छन्दता पूर्वक समावेश है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयोगवाद में सामाजिक और राजनीतिक उच्छृङ्खलताओं पर व्यंग है। सामाजिक जीवन की सड़ाँद पर प्रहार है। मानव समस्याओं की चर्चा और समाधान प्रस्तुत किया गया है। नई कविता में प्रकृति चित्रण, वैचित्र्य प्रदर्शन आदि की प्रधानता है।

आधुनिक युग की कविता पर हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध ऐतिहासिक डा० जयकिशन प्रसाद ने अपनी पुस्तक "हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां" में बड़ी सुन्दर और भावपूर्ण टिप्पणी की है। वह इस प्रकार है, "आधुनिक युग की कविताओं में जनता की भावनाओं का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इसलिए उसमें नवजीवन की समस्याओं का प्रवेश और यथार्थ की अनुभूति की व्यञ्जना हुई। सामान्य जन-जीवन काव्य का विषय बना, शोषित, पीड़ित कविता के साध्य बने। सम्पूर्ण जीवन को उसकी सुन्दरता और कुरूपता सहित स्वीकार करके कवियों ने सच्चाई के साथ काव्य में उसकी अभिव्यक्ति की है। आधुनिक युग का कवि जन-जीवन को लेकर चलता है, इसलिए वह जीवन की कुरूपता एवं जटिलता पर पर्दा नहीं डालना चाहता। यही वास्तविकता समस्त आधुनिक युग की कविता का प्राण है।"

आधुनिक काल की विशेषताओं में वादों का बाहुल्य भी एक असाधारण घटना है। इस युग में वादों में लिखने की एक प्रवृत्ति ही चल पड़ी है। इससे हिन्दी में लेखकों की आशातीत वृद्धि हो गई है। वादों की वहुलता ने साहित्य के भण्डार को भरा है। वादों में छायावाद, रहस्यवाद, अभिव्यञ्जनावाद, स्वच्छन्दतावाद, पलायनवाद, हालावाद, प्रगतिवाद, प्रतीकवाद और प्रयोगवाद मुख्य हैं। वैसे और वाद भी हैं।

आज हिन्दी राष्ट्रभाषा के उच्च आसन पर प्रतिष्ठित हा चुकी है। उसे उसके इस स्थान से किसी प्रकार वंचित नहीं किया जा सकता। उसका वर्तमान परिष्कृत स्वरूप साहित्यिकों की शताब्दियों की तपःपूत साधना का फल है। आज जनपदीय भाषाएँ भी अपना उन्नयन चाहती है। इससे हिन्दी वालों को विचलित होने की आवश्यकता नहीं। जनपदीय भाषाओं के क्षेत्रों मे हिन्दी के प्रति जितना सम्मान है उतना हिन्दी क्षेत्रों में नहीं। जनपदीय विद्वान हिन्दी को शिरोधार्य करके, राष्ट्रभाषा के रूप में उसकी अनिवार्यता प्राणपण से स्वीकार करते हुये, हिन्दी से बिना कोई बदला चाहते हुए अपनी उपभाषाओं का हित संवर्द्धन करना चाहते हैं तो इसमें कोई आपत्ति न होनी चाहिये। हिन्दी भाषा का एक विराट् रूप है, समस्त उपभाषाएँ उसके अंग है। यदि ये अंग पुष्ट होते हैं तो यह हिन्दी के हित की बात है अहित की नहीं। हिन्दी के वर्तमान स्वरूप में में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता, हिन्दी भारत के लिए तो अनिवार्य सार्वभौम भाषा है ही परन्तु वह दिन भी दूर नहीं जब उसके महान् गुणों के कारण उसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रचलन और ख्याति प्राप्त होंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्र-व्यवहार

सीतला गली
आगरा
२४ - ७ —

भैया विन्द्रावनदासजी,

मालुम होतु है 'व्रज-वार्ता' तुमने भिजवाई और मोहन जी ने पठाई, सो हमने पाई, ताकेलऐं धन्यवाद और बधाई । भैया, जामें तौ दो राइ नाहिं कै मोहन जी कौ प्रयास सर्वथा स्तुत्य है और ऐसे आदमिन कों जितनों प्रोत्साह दियौ जाय सो थोरौ है ।

व्रजभाषा की वास्तविक दसा तौ जिहै ।

'जा भाषा की गारिहु लागति अधिक पियारी ।
प्रेम, प्रीति, परतीति, रीति, रस बात नियारी ।
ताके प्रति असनेह गेह गेहन दिखरावै ।
पढ़िबौ लिखिवौ मरयौ बोलिबौ हू न सुहावै ।।

अब तुमहीं कहौ कै का करयौ जाय, मेरी तौ धारणा सदैव जई रही कै जा हिन्दी की देह लसत जीवन व्रजभाषा पर मेरी धारना के कँटका उठतें । भाषा सों तौ गिरिकें अब व्रज बोली रह गई है, सोऊ जा दसा में कै इने गिने लोग जाइ भलेंई बोलि लेइ पर पढ़े लिखिन की तौ मैया मत्ति है । उन्हें व्रजभाषा बोलिवे में, आपसमेंऊँ, सरम लगति है । तौऊ जाकौ उद्धार तौ करनोई है । जि बात ठीक है कै बोली सोई भाषा बन्ति है, पर जो भाषा सों बोली रहि जाय तब का करयौ जाय । जाके लऐं भागीरथ प्रयत्न करनों परैगो । जाके लऐं शुद्ध प्रसार बुद्धि सों प्रेरित ह्वै कें काम करनों है, वानिज्य बुद्धि सों काम नहीं बनेंगो ।

जि सही है कै बोली थोरी थोरी दूर पैई थोरी बदलि जाति है पर व्रजभाषा को अपनो सुनिश्चित रूप है । हाँ, गाम और सहर की बोली में तुच्छ अन्तर है पर बु है नगन्य । सो जि बात भौत थोरी जगह मोइ 'व्रज वार्ता' में खटकी । जो जामें मोहन जी की कविता है—वाके भाउ तौ सुन्दर है परभाषा सिथिल है, प्रवाह आदि की कमी है जो सतत अभ्यास सों सुधर जाइगी—जा पुस्तक में मैंने भौत सी बातें नईं पढ़ीं जो उपयोगी हैं, तब दूसरे क्षेत्रन के पाठकन कों जामें अवस्य आनन्द आवैगो ।

अन्त में मोहन जी बधाई के पात्र हैं उनने सुन्दर अभिरुचि पाई है और जा ओर उनको प्रयास अति उत्तम है, और लोगन कों जासों प्रेरना लेनी उचित है ।

भगवान व्रजचन्द्र उन्हें सफलता देंइँ, मेरी का, हम सब की जई मंगल कामना हैं ।

सप्रेम
अमृतलाल चतुर्वेदी

*

भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य : एक मूल्यांकन

(श्री रमेश गुप्त गरौठा, झांसी)

यहाँ मेरे आगे एक पुस्तक रक्खी हुई है, । 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' । जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि पुस्तक भारतीय इतिहास और संस्कृति से सम्बन्ध रखती है । तीन सौ पचास पृष्ठों की इस पुस्तक में ५१ निबन्ध संकलित हैं । और सुषमा पुस्तकालय, कृष्णानगर, दिल्ली ने इसे प्रकाशित कर दस रुपये में सुलभ किया है ।

विज्ञान के इस युग में हम इतने भौतिकवादी बन गये हैं कि भारतीय संस्कृति की ओर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारा ध्यान ही नहीं जाता है । इस प्रकार के विषयों पर हम साधारणतया कम ही लिखते हैं । आज निम्नकोटि का जो साहित्य सामने आरहा है उसे देखने से यह लगता है कि कहीं हम अपने अतीत के गौरव को ही न भुला बैठें पर प्रस्तुत पुस्तक को देखकर हमें विशेष हर्ष और सन्तोष हुआ और उसके निबन्धकार बाबू वृन्दावनदास जी को हम अपना साधुवाद देते हैं, बाबूजी गत् ४० वर्षों से हिन्दी में बराबर लिखते आ रहे हैं । प्रस्तुत निबन्ध आज से कई वर्ष पूर्व विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं । उनको पुस्तकाबद्ध करके बाबूजी ने एक प्रशंसनीय कार्य किया है । इन निबन्धों में वे एक अनुसन्धानकर्त्ता के रूप में हमारे सामने आते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय इतिहास पर उनका चिन्तन काफी विस्तृत है ।

संग्रह में ४ प्रकार के निबन्ध हैं—(१) सांस्कृतिक (२) साहित्यिक (३) ऐतिहासिक तथा (४) सामाजिक । हम इतिहास के विद्यार्थी रहे हैं । इसलिए ऐतिहासिक ने हमें विशेष रूप से प्रभावित किया है । कुछ निबन्ध तो बहुत सुन्दर बन पड़े हैं । जैसे 'कुशानकालीन भारत' 'कौटिल्य काल के गुप्तचर' तथा मुगलकाल के हिन्दू राजा आदि । निबन्ध ज्ञानवर्द्धक तो हैं ही, साथ ही बाबूजी की अध्ययनशीलता और लेखनशैली के भी परिचायक हैं । दुरूह से दुरूह विषयों पर लिखकर निबन्धों को साधारण पाठकों के लिये ग्राह्य और बोधगम्य बनाना ही एक सफल निबन्ध-कार की विशेषता होती है और बाबूजी ने भलीभाँति इसका पालन किया है । सामाजिक निबन्धों में आज की समस्याओं की ओर बाबूजी ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । समाज में व्याप्त विषमताओं का वर्णन कर नग्न सत्य को हमारे सामने रक्खा गया है । निबन्धों मे जो विचार व्यक्त किये गये हैं उनसे बाबूजी का दृष्टिकोण और उनके विचारों की प्रगतिशीलता का परिचय मिलता है । जैसा डा० सत्येन्द्र ने पुस्तक की भूमिका में लिखा है । 'यह प्रगतिशीलता स्वस्थ और न्याय्य भाव भूमि पर खड़ी हुई है । यही नहीं उनका निरूपण यथार्थ के आधार पर हुआ है । उनका आग्रह यही रहा है कि नग्न सत्य की उपेक्षा नही की जानी चाहिये" ।

पुस्तक में एक निबन्ध है । "अमेरिका की कुछ आतताई संस्थाये' इसमें कू- क्लक्स-क्लान के आयताई कृत्यों की चर्चा की गई है । निबन्ध पठनीय और ज्ञानबर्द्धक हैं । हेनरी फोर्ड 'राक-फेलर' पीरमांट, मार्जन आदि महापुरुषों के विजय में भी हमें जानकारी प्राप्त होती है । इस प्रकार पुस्तक न केवल देश से ही सम्बन्ध रखती है वरन् विदेशों की भी इसमें चर्चा है ।

एक निबन्ध पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी के पत्रों पर भी है । पूज्य चौबेजी विषय मे हम क्या कह सकते है । वे आधुनिक युग के सबसे बड़े पत्रलेखक हैं । पत्र लिखने की उनकी अपनी एक विशिष्ट शैली है । आगे चलकर हम इनके पत्रों का महत्व समझेगें । इनके पत्रों को देकर बाबूजी ने पुस्तक को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है ।

बाबूजी की लेखनशैली हमें विशेष आकर्षक जान पड़ी । इतिहास जैसे नीरस विषय पर लिखना एक कठिन सा काम है । पर सभी निबन्ध रोचक और सरल बन पड़े हैं । निबन्ध यद्यपि छोटे हैं पर उतने में ही बाबूजी ने मूल बात बड़े ही सरस ढंग से कहदी है । इसने बाबूजी के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखलायी पड़ती है ।

साहित्यिक निबन्धों में हिन्दी साहित्य का इतिहास उल्लेखनीय है । अन्य निबन्ध भी उपयोगी, पठनीय और ज्ञानबर्द्धक हैं । जैसे संस्कृति और साहित्य, धर्मों की एकता आदि ।

ऐतिहासिक तथ्यों का विवेचन तो इतिहासज्ञ ही करेगें । एक साधारण पाठक की दृष्टि से पुस्तक हमें उपयोगी और ज्ञानबर्द्धक जान पड़ी । साथ ही हमें आशा है कि इतिहास के शोधकर्त्ता विद्यार्थियों के लिये भी उपयोगी सिद्ध होगी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"ब्रजभाषा का एकमात्र गोचारण काव्य "गोधूलि"

(डा० श्याम शर्मा एम. ए., पी-एच. डी. डीडवाना)

गोचारण काव्य को साहित्य में पशु धारण काव्य, गोपकाव्य तथा पशुकाव्य आदि के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार के काव्य में ग्राम्य जीवन के वातावरण में ग्राम्य-संस्कृति की उदात्तता तथा जीवन्तता को अभिव्यक्त करते हुए पशुचारण से सम्बन्धित विषय वस्तु को काव्यरूप दिया जाता है। पाश्चात्य साहित्य में बर्डसवर्थ, टैनीसन तथा स्पैन्सर आदि ने 'पैस्टरल पोयट्री' को विकसित किया है, किन्तु भारत में इस विद्या के विकास का अभाव ही रहा है।

यूँ तो कृषि प्रधान भारत में गोधन का प्रारम्भ से ही महत्व रहा है, तथा स्फुट रूप से गौ से सम्बन्धित अनेक स्थल वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में एवं अन्य भारतीय साहित्य में उपलब्ध हैं। हिन्दी में ही सूर, तुलसी, बिहारी, रसखान, घनानन्द तथा भारतेन्दु, रत्नाकर, सत्यनारायन 'कविरत्न, हरिऔध, मैथिली शरण गुप्त तथा द्वारिका प्रसाद मिश्र आदि के काव्यों में स्फुट तथा प्रसंग वश गौ तथा गोचारण से सम्बद्ध स्थलों का समावेश हुआ है, किन्तु उन्हें गोचारण काव्य नहीं कहा जा सकता। क्योंकि न तो इनमें गोचारण काव्य के अनुरूप विषय वस्तु का स्वतंत्र संयोजन तथा निर्वाह ही हुआ है, और न चरित्र-विकास ही। किन्तु ब्रजभाषा को यह गौरव प्राप्त है कि उसमें 'गोधूलि' जैसा उत्कृष्ट गोचारण काव्य लिखा गया है।

'गोधूलि' ब्रजभाषा के सुप्रसिद्ध कवि स्व० श्री हरिकृष्ण जी 'कमलेश' की अप्रकाशित रचना है। कमलेशजी गोवर्धन से ९ मील पश्चिम में स्थित डीग के निवासी थे। आप श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। आपके भक्ति काव्यों में ब्रजमाधुरी का जो सहज सरस माधुर्य मिलता है, उसका अन्य आधुनिक कवियों में अभाव सा ही है। 'गोधूलि' भी इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

'गोधूलि' काव्य पूर्वगोष्ठ तथा उत्तर गोष्ठ इन दो भागों में विभक्त है। पूर्वगोष्ठ में ब्रज वसुन्धरा का मनोहारी वर्णन किया गया है, तथा नन्दभवन एवं वहाँ के समस्त प्रातः कृत्य का वर्णन, श्रीकृष्ण का ग्वाल बालों से सम्मिलन एवं संभाषण, गोदोहनार्थ गमन, गोष्ठ वर्णन, गोदोहन स्नान-शृङ्गार वर्णन, मधुमंगल के साथ वनगमन, गोपियों का अनुराग, गोपियों को सन्देश, नन्द के साथ वार्त्तालाप, गोप किशोरों के साथ खेलकूद आदि का रुचिकर वर्णन किया गया है। उत्तर गोष्ठ में सायं समय वन से लौटने के समय बछड़ों का रँभाना, गोपियों की प्रतीक्षा, वंशी का सम्मोहन तथा उड़ती हुई गोरज का अत्यन्त ओजस्वी एवं प्रांजल शब्दचित्र प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार कवि ने इस लघुकाव्य में ब्रज की प्राचीन ग्राम्य संस्कृति के परिवेश में ग्राम्य जीवन की मधुरिमा तथा उदात्तता को सजीव रूप दिया है। कवि ने अपने सूक्ष्म-निरीक्षण के द्वारा, अपनी भक्ति-भावित कल्पनाओं के माध्यम से यथावसर ब्रजजनपद के शब्दों का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विनिवेश करते हुए सरस एवं प्रवाहमयी ब्रजभाषा में एक ऐसे अनूठे रस को प्रवाहित किया है—जिसे हम 'ब्रजरस' कह सकते हैं। काव्य के मंगलाचरण में ही कवि लिखता है:—

"राधाराधक, श्यामसलौने, रसिक सिरोमनि।
चिन्तामनि जनु मनमन्दिर राखत करि संगिनि।
गनि गुन जिंहि के लहत परमपद जनु बिनु बाधा।
बाधा-विघन विनासिनि जय ब्रज सम्पति "राधा।"

कवि इस काव्य में वर्णनात्मक शैली को ही अपनाता है। एक स्थान पर ब्रज के लोकातीत ब्रज वैभव का बर्णन करते २ इतना अधिक अभिभूत हो जाता है कि अपने को ब्रज-वैभव के वर्णन में असमर्थ सा पाकर लिखता है कि ब्रजमाधुरी की अनुभूति बिना हरि की कृपा के असंभव है:—

"चिन्मय ज्योत उदोत सदा विहरै वन कन-कन।
सरस विश्व वैभव बगरयौ ब्रज के वृन्दावन।
चकित थकित लोचन, वाणी की अकथ कहानी।
हिय में हरि की महर-लहर अनुभूति लखानी।
ललित माधुरी रस बरसै कुसुमित नव कानन।
लोकातीत विभव लखि तंभित विधि पंचानन॥"

निःसन्देह इस लघु काव्य में अत्यन्त प्राचीन तथा गरिमामयी ब्रज संस्कृति को 'गागर में सागर' की भाँति इस प्रकार उपनिबद्ध कर दिया है कि देखते ही बनता है। गोचारण के लिये वनगमन से पूर्व गोपियों को श्रीकृष्ण ने जो सन्देश दिया है—उसमें ब्रज में गौ का परम्परागत महत्व सहज ही मुखरित हो उठा है। श्रीकृष्ण कहते हैं—

"सर्वदेवमयि ब्रजनन्दिनि मम प्राणपियारी।
इन गायन सेवा हित वन वन फिरहुँ सुखारी॥
रोम रोम में देव, यहै देवन की देवी।
गो सेवा निज परम धर्म माँनहु ब्रज देवी॥
लै निज गायन नाम जबै वंशी सुर साधौ।
त्रिभुवन जन मन प्रेम सुधा धारन आराधौ॥
प्रेम प्रचारन धर्म धरन, गो-द्विज आराधन।
मेरौ जीवन ध्येय याहि मिस विचरों कानन॥
गोरज तन लपटाय आपु कों कृतकृत मानौं।
गोवर्धन, जमुना इनको जीवन-धन जानौं॥
गोवर्धन सों कृषि, कृषि सों बौपार आदि धन।
धन सों धर्म, धर्म सों आत्मोद्धार राष्ट्र धन॥
प्रेम बिना सब फीकौ कछु काज न बनि आवै।
प्रेम प्रचारन परम धर्म, मेरे मन भावै॥
ब्रजरज कनकन माँहि धर्मधारा सुखदैनी।
यासों ब्रज-वृन्दावन-ब्रजरज धर्म नसैनी॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्व० कमलेश जी ने इस काव्य में समस्त ब्रज महिमा को निचोड़ कर रख दिया है। कवि की भाषा प्रांजल और विषयानुसारिणी है। पूर्व गोष्ठ में श्री नन्दराय के साथ कृष्ण का सम्भाषण तथा विदाई के समय करुण रस अनायास ही झलक उठता है तो उत्तर गोष्ठ में केशव के ब्रज को लौटते समय 'विजयी केशव गोचारन करि ब्रज नियरावत' टेक के साथ जो चित्र प्रस्तुत किया है वह ओजस्वी तथा प्रभाव पूर्ण है। लगभग ५० पृष्ठों के इस खण्डकाव्य में कवि ने ब्रज तथा गौ के महत्व को ही व्यक्त नहीं किया है, अपितु गोष्ठ, गोदोहन, गोचारण तथा ग्राम्य वातावरण का इतना सहज एवं स्वाभाविक चित्रण किया है कि वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। यद्यपि इसमें संस्कृत काव्यों का कुछ अनुहरण भी है, तथापि कवि ने अपनी नवनवोन्मेषिणी प्रतिभा द्वारा गोचारण से सम्बद्ध वस्तु को उत्कृष्ट एवं मौलिक रूप में काव्य बद्ध कर ब्रजसंस्कृति की जो झलक प्रस्तुत की है, वह सर्वथा सराहनीय है। काव्य के अन्तिम अंश में ग्वाल बालों के साथ गायों के लौटते समय उमड़ती-घुमड़ती गोधूलि का वर्णन कवि की काम-कुशलता का उत्कृष्ट उदाहरण है। कवि वर्णन करता हुआ गोधूलि की अनेक रूपता को अभिव्यक्त करता हुआ लिखता है:—

"गोधूली की धवल छटा उठि अम्बर छाई।
गोधन की हुँकार मेघ-गरजन मन भाई॥
गावत मेघ-मल्हाप गोपमुरली के माँही।
झलकत चहुँ दिस पावन पावस ऋतु परछाँही॥
गोपसखन के मोरपखन मघवा धनु राजै।
मुक्ताहार कनकभूषण मनु तड़ित विराजै॥
गोधूली नित नवल रूप पावस बनि आवै।
ब्रजवासिन मनरंजन करि हरि दरसन पावै॥"

गोधूली का इस प्रकार का इन्द्रधनुषी अनुपम वर्णन हिन्दी के विशाल साहित्य में भी खोजने पर नहीं मिलेगा। निःसन्देह ब्रजभाषा ही इस श्रेय की अधिकारिणी है कि उसके कवि ने हिन्दी की समृद्धि के लिये गोचारण जैसी विद्या का 'गोधूलि' काव्य रसिक-समाज के लिये प्रदान किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

U. P. Cooperative Bank Ltd.

H. O. : LUCKNOW.

Estd. 1944

[*State Partnered, Govt. Audited, Apex Bank of the Cooperative movement*]

Regional Offices : BAREILLY, GORAKHPUR, KANPUR, LUCKNOW, and MEERUT.

Branches : AGRA, BAREILLY, FAIZABAD, KANPUR Navin Market, KANPUR D. A. V. College, LUCKNOW Nirala Nagar, LUCKNOW M. G. Marg, LUCKNOW Naka-Hindola, RAMPUR, and SITAPUR,

		30 6-68
Paid up Share Capital	...	Rs. 4.31 Crores
Owned Funds	—	Rs. 7.68 ,,
Deposits	...	Rs. 20.63 ,,
Working Capital	....	Rs. 60.68 ,,

Offers Lucrative rates of interest on all types of deposit.

Current Account	....	½% per annum
Savings Bank Deposit	...	3½% ,, ,,
Fixed Deposit	...	4 % to 6½% per annum.

D. S. Verma
General Manager

Mathura Singh
Vice-President

A. P Singh
President

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१-हमारे जवानों के शौर्य ने शत्रु के मनसूबे धूल में मिला दिए।
२-हमारे यहाँ बने हथियारों के सामने अमरीकी हथियार कामयाब न हो सके।
३-हमें अपने को अन्नोत्पादन में भी आत्म निर्भर होना है।
४-अमरीका या अन्य देशों का मुँह ताकना धोखा दे सकता है।

देश का हर व्यक्ति राष्ट्र की इस सबसे बड़ी समस्या में अपना योग दे सकता है। जिला सहकारो बैङ्क में अपना धन आप जमा करें जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित है, ब्याज दूसरे बैङ्कों से आपको ज्यादा मिलेगा और किसानों के अन्नोत्पादन के कार्य में आपके धन का उपयोग होगा।

जिला निवासियों के लिये हमारी शुभ कामनाओं के साथ हम आशा भी करते हैं कि आप अरने ही सहकारी बैंक को अपनाकर अपना तथा इस बैंक का और अपने राष्ट्र का सदैव हित करेंगे।

ब्याज की दरें

सेविंग खाता पर	४	प्रतिशत वार्षिक
कौल डिपौजिट पर	३।।।	,, ,,
६ माह की अमानत पर	५।।	,, ,,
१ साल की अमानत पर	६।	,, ,
२ साल की अमानत पर	६।।	,, ,,
३ साल की अमानत पर	६।।।	,, ,,
४ साल की अमानत पर	७	,, ,,
५ साल की अमानत पर	७।	,, ,,
७ साल की अमानत पर	७।।	,, ,,

मथुरा जिला सहकारी बैंक लि०, मथुरा

प्रकाशक:-श्री वृन्दावन दास अध्यक्ष ब्रज साहित्य मण्डल मथुरा के लिए
श्री हर्ष गुप्त द्वारा राष्ट्रीय प्रेस, मथुरा में मुद्रित।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रजभारती

मार्गशीर्ष सं० २०२६ वि०

सम्पादक
श्री वृन्दावन दास
बी० ए०, एल-एल० बी०

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा

वर्ष २३] वार्षिक मूल्य ४) [अङ्क ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

* अनुक्रमणिका *

क्रमांक	शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
१	सम्पादकीय	... श्री वृन्दावनदास	१
२	मथुरा में सरस्वती पुत्रों के सान्निध्य में	.... श्री परमेश्वर द्विरेफ	५
३	ग्रन्थालोचन व्यक्ति व्यवहार और विकास	... श्री उमाशङ्कर दीक्षित एम. ए. सा. रत्न	८
४	महात्मा तुलसीदास की निवास भूमि सोरों (शूकर क्षेत्र)	... डा० अम्बाप्रसाद सुमन एम. ए., डी. लिट्	९
५	भाषा दशम स्कन्ध में नन्ददास द्वारा अनुदित भँवर गीत	... डा० भगवानदास तिवारी एम. ए., पी-एच. डी.	१५
६	व्रजभाषा का समस्या पूर्ति काव्य	... डा० विजयेन्द्र स्नातक एक. ए., डी. लिट	१९
७	कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी सुयोग्य लेखक पत्रकार और समाज सुधारक	... डा० टीकमसिंह तोमर एम. ए , डी. लिट,	२३
८	वेदों में तत्कालोन सामाजिक दशा का वर्णन	... श्री वृन्दावनदास	२७
९	भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य (एक मूल्यांकन)	... श्री रमेशचन्द्र दुवे एम. ए.	३२
१०	व्रजवार्ता (समीक्षा)	... श्री श्यामसुन्दर खत्री	३७
११	दोहासार संग्रह और उसका संग्रहकार	... श्री वेदप्रकाश गर्ग	४०
१२	पत्र व्यवहार	... श्रीरामस्वरूप विशारद	४४
१३	पत्र पत्रिका परिचय	.... श्री वृन्दावनदास	४६

★

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रजभारती

[अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल की मुख-पत्रिका]

वर्ष २४] मथुरा मार्गशीर्ष सं० २०२६ [अङ्क ३

संपादकीय

राष्ट्रभाषा हिन्दी भारतीय राष्ट्र की एकता की प्रतीक है। इस विशाल देश के जन समूह को यदि हमें एकता के सूत्र में बाँधना है तो हिन्दी को उसके उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करना ही होगा। हिन्दी हमारे ऐक्य की प्रथम सोपान है। हिन्दी के पूर्ण प्रचार और प्रसार से ही हमारे विभिन्न राज्य एक दूसरे के निकट आवेंगे। हिन्दी की सार्वभौमता एक न एक दिन प्रान्तीय संकीर्णताओं पर भी विजय प्राप्त करेगी।

हिन्दी का स्वरूप क्या हो यह सदैव ही चर्चा का विषय रहता है। हिन्दी का स्वरूप विराट दर्शन है। उसके स्वरूप के विषय में संकीर्ण भावनाओं से काम न चलेगा। अहिंदीभाषी बन्धु जब हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ाने की बात करते हैं तो अनिवार्य रूप से अपनी-अपनी भाषाओं के अनेक शब्दों के हिन्दी में प्रचुर समावेश की वकालत करते हैं। हमें हिन्दी में अहिंदी शब्दों के समावेश से कोई आपत्ति नहीं है परन्तु इस प्रकार का समावेश हिन्दी भाषी साहित्यिक बन्धुओं के बूते की बात तो है नहीं, यह तो वे ही कर सकते हैं जो उन शब्दों का प्रयोग करना जानते हैं। कोई किसी प्रकार हिन्दी बोले अथवा लिखे इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं है। पुस्तकीय, साहित्यिक अथवा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी तो अपनी जगह रहेगी। उसका परिष्कृत, साहित्यिक स्वरूप तो हमारे साहित्यिकों की शताब्दियों की तपःपूत साधना का फल है। उसका स्थान तो सुरक्षित है। हिन्दी में पुस्तकीय ज्ञान प्रचुर मात्रा में अर्जित हो चुका है, उसको निरन्तर बढ़ाना है। बहुत शीघ्र वह समय भी आ रहा है जब इस प्रकार का कथन कि हिन्दी में अमुक विषय पर साहित्य अथवा पुस्तक नहीं है दुःसाहस पूर्ण समझा जायगा।

आज साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग है। जिस प्रकार आज हिन्दी में प्रभूत साहित्य सर्जना हो रही है उसी प्रकार हिन्दी की विभिन्न बोलियों अथवा उपभाषाओं के क्षेत्रों में भी एक प्रकार की साहित्यिक चेतना का उदय हो रहा है। राजस्थानी, व्रजभाषा मैथिली, अवधी, भोजपुरी आदि के न केवल उन्नयन अपितु उनके साहित्यिक परिष्कार और समृद्धि के लिये भी आवाज उठाई जा रही है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन सभी बोलियों के साहित्य की समृद्धि तो सस्कृत का आश्रय लेने से ही सम्भव है। हमारे कुछ हिन्दी हितैषी भाई इन उप-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषाओं द्वारा चालित आन्दोलन से भयभीत हो जाते हैं। उन्हें इस प्रकार के अभियानों में अथवा इस प्रकार की चेतना में हिन्दी का अहित दिखाई देता है। वे सोचते हैं कि इन उपभाषाओं के रूप में हिन्दी की इकाइयाँ यदि पृथक्-पृथक् हो गईं तो हिन्दी रह ही क्या जायगी। हमारी समझ में यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण एवं निर्मूल है। यदि जन गणना में विभिन्न बोलियों के नाम लिखाये जाते हैं तो इनमें से प्रत्येक के आगे कोष्ठक में अनिवार्य रूप से हिन्दी भी लिखा जायगा। ये समस्त बोलियाँ या उपभाषाऐं हिन्दी के ही अंग अथवा यों कहिये कि उसी के विभिन्न रूप हैं। कोई भी उपभाषा पृथक् रूप से हिन्दी का स्थान ग्रहण करने के लिए सक्षम नहीं है। जहाँ तक हमने अनुभव किया है इन बोलियों के साहित्यिक बन्धु हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में शिरोधार्य करके ही अपनी-अपनी उपभाषाओं का उन्नयन करना चाहते हैं। वे हिन्दी को ठेठ हिन्दी वालों से भी अधिक आदर की दृष्टि से देखते हैं। उन्हें स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं है कि अपनी उपभाषा का काम करके वे किसी भी दशा में हिन्दी का अहित कर रहे हैं। हिन्दी की सार्वभौमता और इस देश के लिए पूर्ण रूप से अनिवार्यता इतनी स्पष्ट है कि इसमें सन्देह की कतई गुंजाइश नहीं है।

श्री बनारसी दास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ

श्रद्धेय श्री बनारसी दास जी चतुर्वेदी को उनकी ७८ वीं वर्ष गाँठ के अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। सम्भव है जब तक ब्रजभारती का यह अंक पाठकों के हाथ में पहुँचे ग्रन्थ समर्पण समारोह सम्पन्न हो चुके। चतुर्वेदी जी अद्यतन ब्रज के सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ता हैं। उन्होंने ब्रजभूमि के साहित्यिक और सांस्कृतिक उन्नयन के लिए अगणित लेख लिखे हैं, अनेक कार्य कर्ताओं को प्रेरणादायक पत्र लिख लिखकर उन्हें ब्रजभूमि के पुर्ननिर्माण के प्रति आकर्षित और प्रोत्साहित किया है। वे स्वयं को अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किये जाने के विरुद्ध थे। बड़ी कठिनता से उन्होंने ग्रंथ प्रकाशन की स्वीकृति इस शर्त पर दी कि उसमें एक प्रमुख खण्ड ब्रजभूमि की साहित्य और संस्कृति पर हो और उनके निज के विषय में जिक्र कम से कम हो। ब्रजभूमि खण्ड के सम्पादन का भार इन पंक्तियों के लेखक पर था। चतुर्वेदी जी के प्रति श्रद्धावनत होकर विद्वान् लेखकों ने इस खण्ड के रूप में जो साहित्यिक निधि तय्यार की है वह न केवल चतुर्वेदी जी के प्रति सम्मान प्रदर्शन का उत्कृष्ट प्रयास है अपितु ब्रजभूमि की साहित्य और संस्कृति पर एक अपूर्व कृति है। चतुर्वेदी को पुन: इस कारण से ब्रजभूमि की सेवा का परोक्ष रूप से श्रेय प्राप्त हुआ है। ब्रजभारती परिवार चतुर्वेदी जी को इस अवसर पर बधाई देता है तथा उनकी दीर्घायु की मङ्गल कामना करता है।

ब्रज साहित्य मण्डल का आगरा केन्द्र

बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि मण्डल की आगरा शाखा आजकल खूब सक्रिय है। उसकी क्रियाशीलता का श्रेय उसके कर्मठ मंत्री एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी को है। डा० चतुर्वेदी शाखा का काम बड़े मनोयोग से कर रहे हैं। आगरा शाखा निकट भविष्य में राजा लक्ष्मण सिंह जी की जयंती और सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं कलाकार श्री राजेन्द्र रघुवंशी का अभिनंदनोत्सव मनाने जा रही है। साहित्यिक चेतना की दीप शिखा को प्रज्वलित रखने के लिये इस प्रकार के आयोजनों का महत्व स्वयं सिद्ध है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लखनऊ का हिंदी भवन और उदयपुर का मीरा भवन

यू० पी० सरकार की ओर से लखनऊ में एक विशाल हिन्दी भवन का निर्माण हो रहा है, उसके लिए प्रचुर धन-राशि भी स्वीकृत हो चुकी है। हम व्रज साहित्य-मण्डल की ओर से अनुरोध करते हैं कि भवन में व्रजभाषा-साहित्य का एक महत्वपूर्ण कक्ष हो जिसमें न केवल मुद्रित व्रजभाषा साहित्य का संग्रह हो अपितु दुर्लभ हस्तलिखित ग्रन्थों को संग्रह करने की योजना भी हो। व्रजभाषा हिन्दी के साहित्य की भाषा है, इसके साहित्य के बिना स्पष्टतः हिन्दी भवन का पुस्तकालय अपूर्ण ही रहेगा। उदयपुर के मीरा भवन में व्रजभाषा-साहित्य कक्ष स्थापित करने के लिये हम राजस्थान सरकार से अपील करते हैं।

मध्यप्रदेश का देव पुरस्कार

ओरछेश स्वर्गीय वीरसिंह जू देव ने इस पुरस्कार की स्थापना की थी। इसके अनुसार एक वर्ष हिन्दी और दूसरे वर्ष व्रजभाषा की सर्वश्रेष्ठ रचना को पुरस्कृत किये जाने की बात थी। अक्षय पुण्य के इस साहित्यिक कृत्य में किसी प्रकार का व्यनिक्रम अथवा व्वयधान होना उचित नहीं हम मध्य-प्रदेश सरकार से आग्रह पूर्वक निवेदन करते हैं कि वे स्वर्गीय महाराजा की आकांक्षाओं की विधिवत् पूर्ति करते रहें और निश्चित विधान के अनुसार ही पुरस्कार-वितरण की प्रक्रिया चालू रक्खें। पुरस्कार एक वर्ष हिन्दी और दूसरे वर्ष व्रजभाषा की रचना पर ही दिया जाना चाहिये, यही स्वर्गीय महाराजा की इच्छा थी और इसी का उन्होंने विधान किया था।

श्री रमेशचन्द्र दुबे का तबादिला

श्री रमेशचन्द्र दुबे आगरा की साहित्यिक चेतना के प्रतीक थे। हिन्दी का कार्य करने में हमें उनसे महान संबल प्राप्त था। आगरा के साहित्यिक जीवन में अनेक आयोजनों, गोष्ठियों, कवि सम्मेलनों द्वारा उन्होंने एक स्फूर्ति पैदा कर दी थी। कविरत्न सत्यनारायण अर्द्धशताब्दी समारोह, कुं० हनुमन्तसिंह रघुवंशी एवं महाकवि ग्वाल शताब्दी समारोह तथा अन्य अनेक महत्वपूर्ण आयोजनों की स्मृति अभी ताजा है। दुबे जी ने अभिनन्दिनी, काकली आदि कई प्रकाशन अपने निजी प्रयास से तथा कई अन्य अपना अमूल्य सहयोग प्रदान कर निकलवाये थे। सर्व श्री बनारसी दास चतुर्वेदी, हृषीकेश चतुर्वेदी, अमृतलाल चतुर्वेदी, राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, बाबू प्रताप नारायण अग्रवाल, शम्भुनाथ चतुर्वेदी प्रभृति साहित्यकारों एवं विद्यानुरागियों को दुबे जी का सहयोग सदैव ही प्राप्त रहा। नागरी प्रचारिणी सभा आगरा के मन्त्री श्री राजनाथ शर्मा और सहायक मन्त्री श्री तोताराम पङ्कज से तो उनकी आत्मीयता के सम्बन्ध थे। वे नागरी-प्रचारिणी सभा का सदैव हितचिन्तन करते थे। मुझे स्वयं उन्होंने सभा का आजीवन सदस्य बनवाया। वे सभा को गतिशील बनाना और उत्तर-प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का काम आगरा में फैलाना चाहते थे। दुबे जी का स्थानान्तरण वास्तव में श्री बनारसी दास जी चतुर्वेदी के शब्दों में एक साहित्यिक दुर्घटना है। आगरा जैसे बड़े सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक नगर में ऐसे हिन्दी-प्रेमी अधिकारियों की विद्यमानता अनिवार्यतः आवश्यक हैं। हम आशा करते हैं उत्तर-प्रदेश शासन श्री दुबे को पुनः आगरा में ही नियुक्त कर उन्हें पुनः वहाँ के साहित्यिक जीवन में अपना योगदान करने का अवसर देगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोस्वामी तुलसीदास की निवास भूमि सोरों

सोरों में तुलसीदास के निवास स्थान को उनके स्मारक के रूप बनाये जाने के विषय डा० अम्बाप्रसाद सुमन का एक महत्व पूर्ण लेख इस अंक में प्रकाशित है। मानस चतुश्शती समारोह के अवसर पर सोरों के तुलसी भवन को एक राष्ट्रीय स्मारक के रूप में जनता देख सके इसकी व्यवस्था केन्द्रीय सरकार की सहायता से राज्य सरकार को अभी से करनी चाहिये। डा० सुमन द्वारा प्रस्तुत किये गये तथ्य अकाट्य हैं। आशा है राज्य सरकार इस सम्बन्ध में शीघ्र समयोचित कदम उठायेगी।

खान अब्दुलगफ्फार खाँ स्मारिका

उपरोक्त स्मारिका के सम्पादक राजस्थान के मूर्धन्य साहित्यकार श्री युगलकिशोर जी चतुर्वेदी हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए चतुर्वेदी जी ने नवयुग सन्देश के राष्ट्रभाषा अंक का भी सफल सम्पादन किया था। राष्ट्र भाषा के प्रचार प्रसार की दिशा में चतुर्वेदी जी का योगदान सदैव ही महनीय रहा है।

इस अङ्क का प्रकाशन

ब्रजभारती के मार्गशीर्ष अंक के प्रकाशन में अबकी बार बड़ा विलम्ब हो गया। प्रेसाध्यक्ष अपने निजी कारणों से इसका मुद्रण टालते रहे। मैंने उन्हें चेतावनी तीन सप्ताह पूर्व ही दे दी थी कि वे अंक को शीघ्र छाप दें, कहीं ऐसा न हो कि उनके छपाई शुरू करने का समय और मेरा बम्बई जाना एक समय में ही हो जाय। ऐसा ही हुआ। महिने डेढ़ महीने टालने के बाद उन्होंने ठीक उसी समय अंक छापना शुरू किया जब कि मेरा बम्बई जाना अनिवार्य हो गया था। अंक मेरी अनुपस्थिति में छपा, मैं उसके एक बार के प्रूफ पढ़ने से वंचित रहा! परिणामतः कुछ ऐसी अशुद्धियाँ रह गई जिनका यहाँ उल्लेख आवश्यक हैं और जिनकी बावत सिवा खेद प्रकट करने के अब कोई चारा नहीं हैं। पृष्ट २१ पर गोद लिए हुलसी फिरे तुलसी सो सुत होय' पढ़ा जाना चाहिये। पृष्ट २२ पर कई स्थानों पर 'उरुदाम' की जगह उरुदास छप गया पृष्ट २५, २६ पर बङ्गला की जगह बगङ्गा छपा है। पृष्ट २८ पर कई जगह ययाति के स्थान पर यभाति छप गया है। अन्य अशुद्धियाँ उल्लेख योग्य नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथुरा में सरस्वती पुत्रों के सानिध्य में

(परमेश्वर द्विरेफ)

(भू० पू० सदस्य, राजस्थान साहित्य अकादमी, चिड़ावा, राजस्थान)

अपनी अन्तरप्रान्तीय साहित्य सम्पर्क यात्रा के अन्तर्गत ब्रजभाषा के केन्द्र नगर मथुरा आया तो संयोगवश मुझे विशेष रूप से आयोजित अनेक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्य-क्रमों में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

ब्रज साहित्य मन्डल में—

मैं यहाँ ब्रज साहित्य मन्डल के वर्तमान अध्यक्ष बाबू वृन्दावन दास जी से मिला। आपने बताया कि पिछले कई वर्षों से मन्डल के कार्य में कई कारणों से गतिरोध चला आ रहा था। यह बात ब्रजभाषा क्षेत्र के लिये अत्यन्त ही दुखप्रद थी। अब यह सन्तोष की बात है कि मन्डल का कार्य अब पुन: व्यवस्थित रूप से चलने लगा है।

श्री वृन्दाबन दास जी ने यह भी बताया कि भवन अधिग्रहण के विषय में सस्था के कई हजार रुपये सरकार के पास जमा हैं तथा कुछ और धन एकत्र करके वे मन्डल की कई नवीन योजनाओं को प्रारम्भ करना चाहते हैं। मन्डल के निजी भवन प्राप्ति के कार्य में भी प्रगति है। आशा है, शीघ्र ही मन्डल का अपना विशाल भवन होगा। श्री वृन्दावनदास जी ने अपनी नवीन पुस्तक 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' तथा मन्डल का अन्य प्रकाशित साहित्य भी मुझे स्नेह पूर्वक दिया। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि वे राजनीति से हट कर अपना समय साहित्य के रचनात्मक कार्यों में लगा रहे है।

भारतीय अनुसन्धान भवन में—

स्वामीघाट स्थित भारती अनुसन्धान भवन में भी जाने का सुअवसर मिला। भवन के वयोवृद्ध साहित्य सेवी ज्यो० श्री राधेश्याम द्विवेदी जी के दर्शन भी प्राप्त हुए। मुझे उन्होंने स्थान के महत्व का संक्षिप्त विधरण भी दिया। भवन में देश के अनेक राजनीतिज्ञ महात्मा तथा विद्वान समय-समय पर पधार चुके हैं, यह उन्होंने बताया। 'भारती अनुसन्धान भवन' में प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य का अच्छा संग्रह है। एक अनुसन्धानात्मक पत्रिका 'ज्ञानदा' भी भवन से निकल रही है। हिन्दी के प्रति श्री जोशी जी का अनुराग तथा उनकीनिष्ठा देख कर मैं बहुत प्रभावित हुआ। उन्होंने मुझे भवन का प्रकाशित साहित्य भी प्रदान किया।

हिन्दी प्रचार सभा में —

हिन्दी प्रचार सभा यहाँ की नवपीढ़ी की एक नवोदित संस्था है जिसने कुछ वर्षों से अपने रचनात्मक कार्यों से अपने आपको आगे बढ़ाया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जहाँ तक मुझे स्मरण है सन् १९६३ में इस संस्था ने मुझे भी सम्मानित किया था, यह संस्था अन्य प्रान्तों के साहित्यकारों के प्रति संकीर्ण भावना नहीं रखती।

हिन्दी प्रचार सभा के अध्यक्ष श्री त्रिलोकी नाथ ब्रजवाल से सभा के भावी कार्यकलापों की भी जानकारी हुई तथा उनके द्वारा सभा के मन्त्री श्री मनोहर अभय से परिचित हुआ। मुझे बताया गया कि सभा राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए कई रचनात्मक कार्यक्रम बना रही है तथा एक लघु पुस्तक माला का प्रकाशन शीघ्र प्रारम्भ करने वाली है। मुझे लगा, हिन्दी-प्रचार सभा नये लोगों का ऐसा एक मंच है जिसे विस्तृत किया जा सकता है। यद्यपि अर्थाभाव है फिर भी कार्य की प्रगति है, सभी लोगों के प्रेमभाव से में प्रभावित हुआ।

आकाशवाणी केन्द्र पर--

मथुरा के तरुण गायक एवं वादक तथा मथुरा आकाशवाणी केन्द्र के कलाकार श्री त्रिभुवन शर्मा भट होने पर वे मुझे आकाशवाणी के प्रसारणार्थ मेरा कार्यक्रम रेकार्डिङ्ग करने के लिये ले गये। रेकार्डिङ्ग में मैंने अपने 'मीरा महाकाव्य' के त्रयोदश सर्ग से कुछ अङ्क तथा दो गीत प्रस्तुत किये।

वहीं आकाशवाणी के सहायक सञ्चालक श्री विद्याभूषण अग्रवाल से भेंट हुई। श्री अग्रवाल स्वयं एक अच्छे कवि, लेखक एवं क्रान्तिकारी विचारक हैं, युग बोध की रचनाओं के सन्दर्भ में जब आपसे चर्चा चली तो जान पड़ा कि आपके हृदय में विज्ञान और कविता के प्रति गहरी आस्था है तथा उसे व्यक्त करने की तीव्र ज्वाला है। ऐसे सजग एवं विचारवान उच्चपदाधिकारी का होना केन्द्र के लिये शुभ ही है।

आकाशवाणी के अन्य कलाकार श्री गिरीश चतुर्वेदी, श्री ठकार, श्री मोहन स्वरूप भाटिया, श्री बाबू खाँ, शरद् आदि के व्यवहार से भी प्रभावित हुआ। केन्द्र में मैंने एक उत्साह पूर्ण वातावरण पाया जो मेरे लिये नवचेतना का प्रतीक था।

साहित्य संस्थान में--

श्री प्रभुदयाल जी मीतल के डेम्पियर स्थित निवास स्थास पर सूर साहित्य संस्थान की ओर से ब्रजभाषा के प्रसिद्ध एवं प्रमुख कवि 'ग्वाल' के सम्बन्ध में एक विशेष आयोजन किया गया, संस्थान के अध्यक्ष श्री मित्तल जी ने प्रारम्भ में श्री पद्मसिंह शर्मा, नवनीत लाल, सैंयाँ जी इत्यादि के संस्मरणों की चर्चा में बताया कि विशाल भारत में 'ग्वाल' के सम्बन्ध में लेख प्रकाशित हुआ था।

'ग्वाल' कवि पर डा० श्री भगवान सहाय पचौरी को पी—एच० डी० की उपाधि मिली है, इसलिये उनका भी अभिनन्दन किया गया और उनके परिश्रम की हार्दिक सराहना की गई।

इस गोष्ठी की अध्यक्षता पं० श्री जवाहर चतुर्वेदी ने की जिसमें सर्वश्री प्रभुदयाज मित्तल, ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी, बाबू वृन्दावन दास, शमनलाल अग्रवाल, विद्याभूषण अग्रवाल, डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी, प्रो० जयकुमार मुद्गल, श्याम सुन्दर 'सुमन', राधेश्याम अग्रवाल, युगलकिशोर चतुर्वेदी, राम रतन वकील आदि उपस्थित थे, इस अवसर पर पढन्त गोष्ठी भी हुई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसमें श्री रामलला, कैलाश चन्द्र 'कृष्ण' इत्यादि ने बड़े ही सुन्दर ढङ्ग ने वातावरण को प्रभावित किया।

मित्तल जी के आदेश पर मैंने कहा कि जब ब्रज पर सङ्कट आया तो राजस्थान ने शरण दी। जयपुर के गोविन्द देव जी, नाथ द्वारा के श्री नाथ जी, कोटा के मथुरेश जी आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण है, ब्रज ने राजस्थान को अपनी भक्ति में आप्लावित किया है, इस प्रकार दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहा है।

राजस्थान के राजाओं और सेठों द्वारा बनाये गये मदिरों में राजस्थान से राजस्थान के पुजारी भेजे गये और आक्रमण के समय ब्रज से दूर भेजी गई मूर्तियों के साथ ब्रज से ब्रज के सेवक राजस्थान में गये। लोगों ने मेरे भाषण को पसन्द किया और सराहा, यह मेरे लिये सौभाग्य की बात रही।

नवगीत चर्चा में--

अग्रवाल धर्मशाला में आयोजित नवगीतकार श्री मुनीश मदिर की प्रथम कृति 'याद के मस्तूल' पर विशेष परिचर्चा आयोजित हुई। इस परिचर्चा को ध्यान में रखते हुए मुझे मध्यप्रदेश में भोपाल की 'आकाश दीप' संस्था और राजस्थान में बीकानेर का 'वातायन' प्रकाशन स्मरण हो आया। नये लोग अभी नये हैं, पर उनमें परस्पर सहयोग है और उत्साह है। वे खुलकर आलोचना प्रत्यालोचना करते हैं जिससे विचारों का आदान प्रदान होता। यह शुभ लक्षण है।

इस गोष्ठी में सर्वश्री सव्यसाची, डा० चतुर्वेदी, भुवनेश्वर शर्मा, शैलेन्द्र कुल श्रेष्ठ, रामरतन वकील, राजेन्द्र पाठक, राजेश दीक्षित, कैलाशचन्द्र 'कृष्ण' फूलसिंह बेताब, उपेन्द्र आदि उपस्थित थे।

अध्यक्ष की स्थिति में अन्त में मैंने कहा कि कविता को हम युग की और युग युग की कह सकते हैं। कविता कैसी भी विधा में क्यों न हो, उसमें रस सृष्टि होनी चाहिए। कविता को किसी वाद के घेरे में घेरना कविता के प्रति न्याय नहीं माना जा सकता।

अन्य कार्य कलापों में—

हिन्दी साहित्य परिषद् के कार्यालय में श्री दीनानाथ चतुर्वेदी, 'सुमनेश', चच्चन जी, राजेश दीक्षित, श्रीकृष्ण कवि आदि से भेंट हुई जिसमें विभिन्न साहित्यिक गतिविधियों एवं कवि सम्मेलनों के सन्दर्भ में चर्चा हुई।

आगरा मन्डल पत्रकार सम्मेलन में भी भाग लेने का अवसर मिला जिसमें नवभारत टाइम्स के सम्पादक श्री अक्षयकुमार जैन, हिन्दुस्तान दैनिक के सह सम्पादक श्री गोपालव्यास जी से भेंट हुई।

इस अवसर पर सर्वश्री जवाहर लाल चतुर्वेदी, ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी, श्री दाऊदयाल 'ब्रजेश' को पत्रकारिता की सेवा के प्रति सम्मानित किया गया जो एक अच्छा प्रयास है।

ब्रज के इस प्रमुख नगर में जैसा उत्साहप्रद साहित्यिक वातावरण देखने को मिला, उसे देख कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। मेरी धारणा है कि सूरदास की यह साधना स्थली-भविष्य में साहित्य के लिये अधिक प्रेरणा प्रदान करेगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रन्थालोचन

समालोचक—(उमाशङ्कर दीक्षित एम. ए. साहित्य रत्न)

व्यक्ति, व्यवहार और विकास

लेखक—डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्।

प्रकाशक—इण्डियन बुकशाप, थियोसाफिकल सोसाइटी कमच्छा वाराणसी—१ मूल्य २)५०

डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी की लिखित इस पुस्तक में परमात्मा की योजना अर्थात् विकास' अध्ययन भारतीय शैली में किया गया है। थियोसोफी का अधिकतर साहित्य अंग्रेजी में होने से इसका जनसुलभ ज्ञान नहीं हो पा रहा था। इस दृष्टि से इस कृति की महानता और उपयोगिता और भी बढ़ जाती है।

विद्वान लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में विकास के लोक प्रिय रूप से लेकर अध्यात्मिक अथवा चेतना परक विकास की ओर उन्मुख होकर जीवन के लक्ष्य यानी आनन्द की प्राप्ति तक के उपायों का क्रमश: निरूपण किया है। विषय गम्भीर होने पर भी भाषा सरल सरस तथा प्रबाह-पूर्ण है। इस विषय में लेखक का यह अभिप्राय भी सही है कि "मेरी यह रचना पण्डित जन के लिए नहीं सामान्य शिक्षित वर्ग के लिये है।" इस मान्यता का सर्वत्र निर्वाह किया गया है। यही कारण है कि सामान्य शिक्षित वर्ग के लिए अधिक उपादेय जितना रामचरित मानस-आदि हिन्दी के ग्रंथ हो सकते हैं उतने संस्कृत के वेदान्त ग्रन्थ नहीं। अत: अपने कथन की पुष्टि में डा० चतुर्वेदी ने तुलसीदास के रामचरितमानस तथा बिनय पत्रिका आदि के उद्धरण ही अधिक दिये हैं जिससे उनकी बात सामान्य जनता के मस्तिष्क में भली भाँति समा सके।

नाना रूपात्मक दृश्यमान जगत् को जड़, चेतन और अर्द्धचेतन इन तीन विभागों में बांटा गया है। इस वर्गीकरण को पदार्थ, जीवन और चेतना के नाम से दूसरे रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार चिरन्तन बिकास का स्वरूप त्रिवेणी के रूप में डा० चतुर्वेदी ने निम्न प्रकार से व्यक्त किया है—

(क) पदार्थ शक्ति गत बिकास/यह यमुना है। (ख) जीवन-रूप गत विकास/यह गङ्गा है।

(ग) आत्म चेतना गत विकास/यह सरस्वती है।

विकास की ये त्रिवेणी निरन्तर एक साथ ही प्रवाहित होती रहती है। तीनों प्रकार के विकास अन्योन्याश्रित हैं। शरीर और मन की पवित्रता के सङ्गम पर ही चेतना की सरस्वती अभिभूत होती है। इस सङ्गम में स्नान करने का फल भी तत्काल मिल जाता है—

"मज्जन फल पेखिय ततकाला। काक होहिं पिक बकड मराला॥"

इस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि कोण से उक्त गम्भीर विषय का विवेचन करके डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ने वास्तव में इसको जन सामान्य के अति निकट तक पहुँचाया है। साथ ही इससे विकास वाद के सिद्धान्त का श्री गणेश करने वाले डार्विन की विचार धारा से लेकर आज तक के सभी सिद्धान्तों का विवेचन सार रूप में ग्रहण कर अपने स्वस्थ मत का प्रति-पादन किया है जो मूल रूप में भारतीयता के अति निकट है। वस्तुत: इस सुन्दर कार्य सम्पादन के लिये डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी बधाई के पात्र हैं। साथ ही पुस्तक की शुद्ध एवं सुन्दर छपाई भी पाठकों के लिये अधिक उपयोगी है। इस कार्य के लिये प्रकाशक भी धन्यवाद के पात्र हैं। पुस्तक वास्तव में पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय है।

★

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महात्मा तुलसीदास की निवास-भूमि सोरों (सूकरक्षेत्र)

(डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन', एम० ए०, डी० लिट्०,
८/७ हरिनगर अलीगढ़)

महान् हर्ष और गौरव का विषय है कि नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी के तत्त्वावधान में सम्वत् २०३१ वि० में तुलसी विरचित 'रामचरित-मानस' का चतुश्शती समारोह मानाया जाएगा। सभा के सञ्चालक मण्डल की विशेष बैठक ६ अप्रैल १९६९ ई० को दिल्ली में हो चुकी है और समा की 'नागरी पत्रिका' में महोत्सव को मनाये जाने के सम्बन्ध में साहित्य सेवियों एवं मानस-प्रेमियों के उत्तमोत्तम सुझाव भी प्रकाशित हो चुके हैं।

नागरी-पत्रिका, काशी के तुलसी मानस-चतुश्शती-महोत्सव-योजना-अङ्क (अगस्त, १९६९ ई०) में श्री कृष्णचन्द्र पत का यह सुझाव बहुत महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य है कि तुलसी सम्बद्ध विविध स्थानों को राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित किया जाए। इसी सन्दर्भ में तुलसी-साहित्य-सेवी एव तुलसी प्रेमी जनता से मैं सानुरोध निवेदन करता हूँ कि तुलसी की विद्याभूमि तथा निवास-भूमि भागीरथी तीरस्थ तीर्थ सूकर क्षेत्र (सोरों) के तथ्यों पर पर्दा न डाला जाए और महात्मा तुलसी के उस सारस्वत स्थल 'सूकर क्षेत्र' (सोरों) में भी उत्तर-प्रदेश सरकार तथा केन्द्रीय सरकार की सहायता से एक सारस्वत पीठ बने और गलकटियों के मुहल्ले में तुलसी के प्रसिद्ध निवास-स्थान को भी सुरक्षित किया जाए। उसका जीर्णोद्धार हो और उसे राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित किया जाए। अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल, मथुरा को इसके लिए पहल करनी चाहिए।

महात्मा तुलसीदास काशी, अयोध्या, राजापुर आदि के ही नहीं हैं। वे सोरों के भी हैं, भारत के भी हैं और विश्व के भी। काव्य की दिव्यता एवं महती उच्चता के कारण वे हमारे हैं, आपके हैं, और मानव-मात्र के हैं। फिर भी जिन-जिन स्थानों से उनका कुछ सम्बन्ध रहा, वे सब हमारे सारस्वत तीर्थ हैं। उनकी सुरक्षा का दायित्व हम पर है। उस जङ्गम तीर्थराज की पावन चरण-रज से पवित्र बने हुए वे स्थल हमारे लिए सदैव पुण्य सारस्वत तीर्थ रहेंगे। उन्हें राष्ट्रीय सारस्वत तीर्थ घोषित किया ही जाना चाहिए। तुलसी-साहित्य के शोध-क्षेत्रों का समुचित विभाजन करते हुए ब्रजभाषा-काव्य से सम्बद्ध शोध का संस्थान यदि सोरों में बनाया जाएगा तो हम एक सच्चा न्याय कर सकेंगे, क्योंकि सोरों ब्रजभाषा-क्षेत्र में है और वह तुलसी की विद्याभूमि भी रहा है।

पुराणों में सूकर क्षेत्र भागीरथी गङ्गा के किनारे पर वर्णित है। आज जी सूकरम् (सोरों) पुण्यसलिला उत्तरवाहिनी भागीरथी गङ्गा के तट पर बसा हुआ है। बाल्यावस्था में तुलसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने पर्याप्त समय तक इस सूकर क्षेत्र में निवास किया था और अपने गुरुदेव से राम-कथा सुनी थी, जिसका उल्लेख 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में स्वयं तुलसी ने किया है—

"मैं पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहि तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥"

—(बाल० ३० (क)।—)

उपर्युक्त दोहे से सिद्ध है कि तुलसी बहुत छोटी अवस्था ही से अर्थात् अचेतावस्था में (लगभग ६-७ वर्ष की आयु में) सोरों अर्थात् सूकरक्षेत्र में गुरु के पास रहते थे। 'गोसाईंचरित' के आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि नरहर्यानन्द ने रामबोला के सब संस्कार कर उसे राम-कथा सूकर क्षेत्र में सुनायी। तुलसी के गुरु ने तुलसी को राम-कथा बार-बार सुनायी थी। उससे यह भी प्रमाणित होता है कि गुरु के पास वे पर्याप्त समय तक रहे थे। वह काल इतना अधिक हो गया था कि जनता में वे सोरों के निवासी प्रसिद्ध हो गये थे। यहाँ तक कि बाँदा जिले के गजेटियर में भी स्पष्ट लिखा हुआ है कि—"सोरों के निवासी तुलसीदास नाम के व्यक्ति ने राजापुर को बसाया था।"

तुलसी के वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में नदी पार करके ससुराल में पत्नी के पास पहुँचने की जो घटना प्रसिद्ध है, उसकी भौगोलिक स्थिति परक-सङ्गति सोरों गाँव और बदरिया गाँव की स्थितियों से आज भी ठीक बैठ जाती है। सोरों और बदरिया के बीच आज भी गङ्गा की धारा के मार्ग के चिन्ह अवशिष्ट हैं। उस प्राचीन गङ्गा-धारा के तट पर आज भी महाप्रभु बल्लभाचार्य की बैठक बनी हुई है। दोनों गाँवों के बीच में जो जल-सरोवर है, उसे वहाँ की जनता आज भी बुढ़ गङ्गा (वृद्धा गङ्गा अर्थात् प्राचीन गङ्गा) के नाम से पुकारती है। बदरिया गाँव में आज भी वह ब्राह्मण-परिवार मौजूद है जिसके पुरखों के विषय में यह जनश्रुति है कि वे तुलसी के ससुरालिये थे।

सोरों से गङ्गाजी के स्नान-घाट को जाते हुए उस गाँव के सिरे पर ही एक मुहल्ला पड़ता है, जिसे आज भी लोग गलकटियों का मुहल्ला कहते हैं। उस मुहल्ले में अधिकांश आज कसाई जाति के मुसलमान रह रहे हैं। उसी मुहल्ले में एक स्थान है जिसकी मिट्टी लोग कनवर (कर्ण मूलरोग) ठीक करने के विश्वास से कान पर लगाते हैं। लोगों की धारणा है कि तुलसी-बाबा के प्रताप से कनवर ठीक हो जाते हैं। लोक-प्रचलनों तथा लोक-कथनों में बहुत कुछ तथ्य एवं सत्य होता है। वे नितान्त असत्य नहीं होते। फिर एक लोक-उक्ति भी निम्नांकित रूप में आज-तक चली आ रही है जो सिद्ध करती है कि तुलसी का निवास उस मुहल्ले में अवश्य रहा था—

"तुलसी तेरी झोंपड़ी गलकटियन के पास।"

जनता और सरकार का यह पावन कर्तव्य है कि तुलसी के उस स्थान को राष्ट्रीय-सम्पत्ति शीघ्रातिशीघ्र घोषित किया जाय और उसका जीर्णोद्धार कराया जाय। नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी को भी इसके लिए पूरा योगदान करना चाहिए। अयोध्या, काशी और राजापुर की भाँति ही सोरों को भी हमें उसी श्रद्धा का लक्ष्य बनाना चाहिए। सोरों तीर्थ के जीर्णोद्धार से काशी, राजापुर आदि के महत्त्व में कमी नहीं आयेगी। विश्वामित्र, वाल्मीकि आदि के भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक आश्रम हैं और भारत में वे अलग-अलग अनेक स्थानों पर हैं। अतः तुलसी के सभी विश्राम-स्थल या आवास-स्थल हमारे लिए पुण्य स्थल हैं, वे सभी मान्य हैं, श्रद्धेय हैं।

काशी में तुलसी के वैभव के स्मारक बनें, हमें महती प्रसन्नता है। राजापुर में पुण्य-कीर्ति-स्तम्भ सुशोभित हो, हमें अपार हर्ष है। अयोध्या में यशः पताका फहरावे, और भी आनन्द की बात है। लेकिन कुछ लोगों का यह पक्षपातपूर्ण कथन ठीक नहीं कि 'सोरों से तुलसीदास का कोई सम्बन्ध नहीं था।' इससे लाखों तुलसी-प्रेमियों के हृदय को एक चोट लगती है। यदि कुछ लोग अपने प्रयत्न से सरकार से धन प्राप्त करके राजापुर में स्मारक बना चुके हैं तो उन्हें अब तुलसी के सूकर क्षेत्र (सोरों) की ओर भी ध्यान देना चाहिए। तुलसी-साहित्य-प्रेमी-साहित्यकारों को सोरों (सूकर क्षेत्र) जैसे तुलसी-तीर्थ के तथ्य और सत्य पर पर्दा नहीं डालना है, अपितु न्यायमयी उदारता का परिचय देना है। सर्वमान्य ठोस प्रमाणों के आधार पर अवधी क्षेत्र का राजापुर भी अभी तुलसी की जन्मभूमि सिद्ध नहीं हुआ, निवास भूमि ही है। जैसी निवास-भूमि राजापुर, वैसी ही निवास भूमि सोरों (सूकरक्षेत्र)। हमारे लिए तो दोनों ही आँखें समान भाव से प्रिय होनी चाहिए। तुलसी को काशी और राजापुर में ही पूरी तरह समेटकर नहीं बिठाना चाहिये। उस सन्त ने जिस-जिस आँगन में कुटी छवायी और निवास किया, वे सभी आँगन हमारे सारस्वत पुण्य तीर्थ हैं और रहेंगे।

नागरी पत्रिका, वाराणसी (अगस्त १९६९ ई०) में श्री रामकृष्णदास जी ने सोरों स्थान का प्रतिवाद करते हुए लिखा है—

"जो लोग सोरों को यह गौरव प्रदान करते हैं, क्या वे उत्तर-प्रदेश के ब्रजभाषा-भाषी क्षेत्र के निवासी एक भी कवि का नाम ले सकते हैं, जिसने अवधी में कविता की हो। १५ वीं शती से १९ वीं शती तक जो भी अवधी भाषा के कवि हुए हैं, उन सबकी जन्मभूमि अवध ही है। इत्थं तुलसी राजापुर के थे, जो जमुनापार होते हुए अवधी बोली के परिमण्डल में है"

—(नागरी पत्रिका, पृष्ठ ५)

श्री रामकृष्णदास जी की दलील है कि जो अवधी भाषा में कविता लिखता है, वह राजापुर का होना चाहिए। लेकिन जो ब्रजभाषा में कविता लिखता है वह कहाँ का होना चाहिए? कवितावली, विनय-पत्रिका, गीतावली, वैराग्य संदीपिनी, दोहावली नाम के ब्रजभाषा-काव्यों का रचयिता कवि तुलसी क्या जीवन भर जन्म से मृत्यु तक राजापुर में ही रहा? कहीं अन्यत्र नहीं आया गया? यदि अन्यत्र नहीं गया तो वैसी मधुर, प्राञ्जल एवं उत्कृष्ट ब्रजभाषा कैसे लिखने लगा? इतना ही नहीं, तुलसी के ब्रजभाषा-काव्यों में अनेक संज्ञा, विशेषण, परसर्ग और क्रियायें ऐसी मिलती हैं जो आज भी सोरों की बोली से साम्य रखती हैं। सोरों की बोली ओकार प्रधान है। 'राम का लड़का' के लिए सोरों की बोली में 'राम को छोरा' बोला जाता है। "छोटा बालक गया है" के स्थान पर "छोटो बालक गओ है" प्रचलित है। साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी के वाक्य 'गोरा बालक अभिमान से परिपूर्ण है' का रूपान्तर सोरों की जनपदीय बोली में इस प्रकार प्रकार होगा—"गोरो बालक गरूर भरो है।" तुलसी के ब्रजभाषा-ग्रन्थों में भाषा की ऐसी ही प्रकृति पायी जाती है। तुलसी की ब्रजभाषा की आत्मा में सोरों-क्षेत्र की जनपदीय बोली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के शब्द और व्याकरणिक रूप कितनी गहराई से समाविष्ट हैं, इसकी स्पष्ट झलक इस लेख के पाठकों को निम्नाङ्कित उद्धरणों से मिल सकती है—

"गोरो गरूर गुमान भरो कहो कौसिक छोटो सो ढोटो है काको ।"

—(कवितावली से)

"सुनहु पथिक जो राम मिलहिं बन, कहियो मातु सँदेसो ।
तुलसो मोहि और सबहिन तें इनको बड़ो अँदेसो ।।"

—(गीतावली से)

उक्त उद्धरणों के ओकारान्त शब्द-रूप द्रष्टव्य है । सोरों की बोली की यही मुख्य विशेषता है । इतना ही नहीं 'मानस' में पुंलिग शब्दों के कर्ता, एक वचन में तथा कर्म, एकवचन में जो उकारान्तता मिलती है, वह निश्चय ही व्रज तथा सोरों की बोली की प्रमुखता है । जैसे—"वेगि आनु जलु पाय पाँय पखारू । होत बिलम्बु उतारहि पारू"— (रामचरितमानस, अयो० १०१/२) यहाँ 'जलु' और 'बिलम्बु' द्रष्टव्य है ।

भाषा वेत्ता इस तथ्य से पूर्णरूपेण अवगत हैं कि साहित्यिक भाषा का ज्ञान तो अध्ययन और अभ्यास से भी हो जाता है, लेकिन किसी क्षेत्रीय जनपदीय बोली को तो उस क्षेत्र विशेष में रहकर ही सीखा जा सकता है । तुलसी के अनेक ग्रन्थों में सोरों की जनपदीय बोली के व्याकरणिक रूपों का पाया जाना यह सिद्ध करता है कि वह बालक पर्याप्त समय तक सूकर क्षेत्र (सोरों) में रहा था । 'कवितावली' के 'भूभुरि' और 'पसेउ' तथा 'रामचरितमानस' के 'सतिभाउ' आदि शब्द सोरों की वर्तमान बोली में आज भी जीवित हैं । दोहावली में प्रयुक्त गङ्गोझ (दो० ६८), थिरताइ (दो० १४०), राँधे (दो० १६७), गढ़ छोलि (दो० ३२२) आदि तुलसी ने उन्हीं अर्थों में लिखे हैं, जिनमें कि वे आज भी सोरों की बोली में प्रचलित है ।

एक मजेदार बात यह भी है कि आज तक किसी भाषा शास्त्री ने तुलसी के रामचरितमानस की भाषा का पूर्णतः वर्णनात्मक अध्ययन करके सांख्यकी के आधार पर यह तो निर्णय किया नहीं कि तुलसीकृत 'रामचरितमानस' की अङ्गी भाषा क्या है और उस भाषा का व्याकरणिक साम्य सूर के सूरसागर की भाषा से कितना है ? प्रारम्भ में किसी ने लिख दिया कि 'मानस' की भाषा अवधी है, बस हम सभी एक स्वर से उसे अवधी कहने लगे और तुलसी का सोरों से सम्बन्ध विच्छेद दिखाने लगे ।

सूर और तुलसी ब्रजभाषा के लेखन मे सहमार्गी हैं । भाषा-निर्णय के निर्णायक तत्त्वों में क्रिया पद प्रमुख स्थान रखते हैं । सूर ने अपने 'सूरसागर' में जिस प्रकार के क्रियापदों का व्यवहार किया है, ठीक वैसे ही क्रियापद तुलसी ने अपने रामचरितमानस में भी लिखे हैं । उन समतामूलक क्रियाओं के प्रयोगों को देखकर कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति यह कह सकता है कि 'सूरसागर' और 'रामचरितमानस' की भाषा का स्वरूप एक है अर्थात् दोनों कवि एक ऐसी व्यापक भाषा लिख गये हैं जिसे हम ब्रजावधी नाम दे सकते है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रस्तुत लेख के पाठकों की सेवा में हम यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

(१) करइ=करता है।

"तद बसुदेव दीन ह्वै भाष्यौ पुरुष न तिय-बध करई।"

—(सूरसागर, ना० प्र० स० १०/४)

"करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी।"

—(रामचरितमानस, किष्कि० १५/४)

(२) देहिं=देती हैं।

"देहिं असीस खरी।" —(सूरसागर, १०/२४)

"जहँ तहँ देहिं कैकइहिं गारी।" — रामचरितमानस, अयो० ४७/१)

(३) आवत=आता है।

"सूर स्याम बिनु अंतकाल मैं कोउ न आवत नेरे।"

—(सूरसागर, १/८५)

"आवत हृदयँ सनेह विशेषें।" —(रामचरितमानस बाल० २१/६)

(४) कहति=कहती है।

"और कहति स्रुति बृषम-ब्याध की जैसी गति तुम कीनी।"

—(सूरसागर १/१२२)

"तृन धरि ओट कहति बैदेही।" —(रामचरितमानस, सुन्दर० ९/६)

(५) जाहि=तू जा।

"हरि कैं पुर लै जाहि।" —(सूरसागर, १/३१०)

"करिआ मुँह कर जाहि अभागे।" —(रामचरितमानस लंका० ४९/२)

(६) करहिंगे=करेंगे।

"छमा करहिंगे श्री सुन्दरबर।" —(सूरसागर, १०/९४६)

"राम कृपानिधि कछुक दिन बास करहिंगे आइ।"

—(रामचरितमानस, किष्कि १०/—)

(७) करब=किये जाएँगे।

"हम तेई करब उपाइ।" —(सूरसागर १०/३७१०)

"सखि सबु करब पुरारि।" (रामचरितमानस बाल० ३११/—)

क्रियापद ही नहीं, सर्वनाम पद भी साम्य रखते हैं। सूरसागर में सार्वनामिक पद मोर, तोर (सूरसागर ९।८३), जे, ते (सूरसागर १०।२४), मोहिं (सूरसागर १०।८) तें (सूरसागर १०।४) आदि जिन अर्थों में मिलते हैं ठीक उन्हीं अर्थों में तुलसी के 'रामचरितमानस' में भी मोर, (किष्कि० २।८), तोर (सुन्दर० २।१२), जे, ते (बाल० ७।५), मोहिं (बाल० ८।५), तैं (किष्कि० ३।७) आदि पाये जाते हैं।

ऐसे क्रिया पद-साम्य तथा सर्वनाम-साम्य सूरसागर और रामचरितमानस में सैकड़ों हैं विस्तार से यहाँ दिखाने की आवश्यकता नहीं है। उक्त प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप से कहा जा सकता है कि ब्रज क्षेत्र-निवासी सूर और तुलसी अपने-अपने 'सागर' तथा 'मानस' में एक-सी ही भाषा लिख रहे थे। सूर के सूरसागर की भाषा जनपदीय बोली को स्पर्श करके चली है और यही बात तुलसी के मानस में भी मिलती है। अतः 'रामचरितमानस' को नितान्त अवधी भाषा का ग्रन्थ बताना न्याय-सङ्गत नहीं है। उसकी भाषा सूर के सूरसागर से पर्याप्त मेल खाती है। वैसी भाषा लिखने वाला कवि तुलसी निश्चित ही ब्रज-भाषा के क्षेत्र में अर्थात् सोरों में अवश्य रहा था और इतने अधिक दिन तक रहा था कि उसके मन-मस्तिष्क पर उस भाषा की प्रकृति की स्पष्ट रेखाएँ गहराई के साथ खिच गयी थीं। तुलसी के मानस की भाषा का रूप 'ब्रजावधी' इसीलिए है कि वह सन्त कन्नौजी के परिमण्डल में अर्थात् सोरों के अंचल में अवश्य रहा था। वस्तुतः कन्नौजी ऐसी भाषा है जिसमें ब्रजभाषा और अवधी भाषा के मिले-जुले तत्त्व पाये जाते हैं। 'कवितावली' में 'गोरो गरूर गुमान भरो' के साथ 'लरिहै' 'मरिहै' आदि क्रियाओं के प्रयोग हमारे कथन को सार्थक सिद्ध करते है।

उपर्युक्त प्रमाणों के प्रकाश में देखने पर कोई निष्पक्ष एवं तटस्थ व्यक्ति यह कह सकता है की सोरों महात्मा तुलसी की निवास-भूमि अवश्य रही थी। अतः जनता और सरकार को तन,मन, धन से यह प्रयत्न करना चाहिए कि सोरों में भी तुलसी-ब्रजभाषा साहित्य का शोध-पीठ बने और गलकटियों के मुहल्ले में जो तुलसी का स्थान है उसे राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित कराके उसके शीघ्र जीर्णोद्धार की व्यवस्था हो। अलीगढ़ विश्व-विद्यालय, आगरा विश्व-विद्यालय, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी और ब्रज-साहित्य-मण्डल, मथुरा के कर्णधारों को शीघ्र ही इस सारस्वत यज्ञ के लिए अग्रसर हो जाना चाहिए। उनके साथ हम सबको भी चल देना चाहिए क्योंकि तुलसी एक-दो के नहीं, सबके थे। 'मानस' चतुश्शती समारोह के अवसर पर यह एक महत्त्वपूर्ण महान् कार्य हमें करना है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा दशमस्कंध में नंददास द्वारा अनुदित भँवरगीत

(साहित्य महोपाध्याय, तत्वभूषण डा० भगवानदास तिवारी, एम. ए.; पी-एच. डी.,
प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सोलापुर कॉलेज, सोलापुर–२.

[महाकवि नन्ददास-प्रणीत भँवरगीत के पाठानुशीलन तथा उसके साहित्यिक एवम् सांस्कृतिक अध्ययन के लिये डॉ० तिवारी को पूना विश्वविद्यालय द्वारा तीन हजार रुपयों का व्यक्तिगत शोध-अनुदान मिला था, जिसकी सहायता से उन्होंने महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश आदि में अन्तर्प्रान्तीय यात्रा कर नन्ददास-प्रणीत भँवरगीत की १०३ हस्तलिखित प्रतियाँ, गुजराती में १५ कवियों के भ्रमर गीत तथा हिन्दी में भँवरगीत परम्परा के पोषक ६ पूर्व ६ अज्ञात कवियों की रचनाओं का अनुसन्धान किया ।

डॉ. तिवारी ने नन्ददास कृत भाषास्कन्ध की उस प्रति का अनुसन्धान किया, जिसमें नंददास कृत भागवत के ९० अध्यायों का भाषानुवाद है। अभी तक याज्ञिक संग्रहालयों की प्रतियों, नाथद्वारा की प्रति, नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित नन्ददास ग्रंथावली, पं० उमाशङ्कर शुक्ल कृत नन्ददास भाग १ व २ बाबू कर्मचन्द गुग्लानी द्वारा प्रकाशित भागवत दशमस्कन्ध में नन्ददास कृत भागवत दशमस्कन्ध के २९ अध्यायों तक का ही भाषानुवाद उपलब्ध है। डॉ० तिवारी ने उक्त जानकारी की सीमा को अपनी शोध-योजना से आगे बढ़ाया है। प्रस्तुत रचना नन्ददास के दूसरे भँवरगीत का प्रमाण है। नन्ददास का यह दूसरा भँवरगीत सबसे पहले ब्रजभारती में प्रकाशित किया जा रहा है। नन्ददास-प्रणीत भँवरगीत के पाठानुशीलन तथा सपादन पर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने डॉ. तिवारी को दिनांक १२-७-६९ को साहित्यमहोयाध्याय उपाधि से सम्मानित किया है।

—सम्पादक]

सोरठा

प्रेम प्रीति जिय मानि, ब्यालीस अध्याय में।
वृज की वेदन जानि, ऊधों तहाँ पठाइ हरि।१।
कछुक दिवस बीति गये जवे। सुधि आई गोपिन की तवे ।।
तब हरि ऊधौ लये बुलाय। कही बात तासों समुझाय ।।२।।
लेहु जाहु गोपिन की सुधि। उनके हृदे प्रेम की बुद्धि ।।
हम आए मथुरा को जवे। उपज्यो बिरहु गोपिकन तवे ।।३।।
तब हम उनसों कही विचार। हम तो पुनि आवत हैं नारि ।।
ताते वे जीवित सब रहीं। जद्यपि विरह प्रेम में वहीं ।।४।।
नातल सब मर जाती वांम। बार बार कही यों स्याम ।।
अब तुम चलो वेगि है राय। आवहु, उनकों जोग सिखाय ।।५।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मात जसोदा नन्द सों देव। कह्यो प्रनाम हमारी सेव ॥
सबहीं सों कहियो परनाम। गुरु के शिव ऊधव तुम नाम ॥६॥
यह सुनि के ऊधव चले राय। पहुँचे सन्ध्या समें बृज जाय ॥
ऐसो देष्यो श्री बृजवास। गरजत बैल फिरें चिहु पास ॥७॥
सबही गउ सोभजे इसी। कामधेनु सुरपति के जिसी ॥
ऊधव गयो गाँव ढिग जबे। गोषुर रज बहु ऊड़ी तवे ॥८॥
काहू दर न पायो राय। पहूँचे नन्द ग्रेह में आय ॥
देषत नन्द उठे हरषाय। ऊधब लीने कण्ठ लगाय ॥९॥
बहुत भाँति कीनी मनुहार। तपत नीर सों चरन पषार ॥
षटरस भोजन जेयो राइ। कियो विश्राम सेज पर जाइ ।१०।
ऊधव सुष में बैठे जबे। कुसल नन्दजू बूझी तवे ॥
हमरे मित्र बन्धु वसुदेव। तिनके कुसल प्रसन विधि भेव ।११।
राम क्रिस्न दोउ नीके बीर। बृज को जीवन स्याम सरीर ॥
बड़वानल अँचयो गोपाल। रक्षा करि राषे सब ग्वाल ।१२।
विग्रह जिते माँझ बृज भये। ते सब मोद स्याम सर लये ॥
ना हरि आए हमरे तात। तुम जिन जानो जादौ गात ।१३।
हम राखे सब पाकर लाल। हैं हरि तीन लोक प्रतिपाल ॥
अलष अमर तिहुँ पुर के राय। सोई प्रगट भए हैं आय ।१४।
हम यह जान करी हरि सेव। और बात जिन समझो देव ॥
इतनी बात नन्द कही जबै। भए प्रसन्न मन ऊधौ तबै ।१५।
पुनि ऊधव उठ विनई सेव। नीके आहि निपट वसुदेब ॥
नीके राम कृष्न दोऊ भाइ। कह्यो प्रनाम तुमसों हितु पाइ ।१६।
सुनो नन्द मन में करि ग्यांन। जिनके हृदे कृष्ण को ध्यान ॥
मन बच सेव क्रिस्न की करै। तुलसीदल हरि ऊपर धरै ।१७।
निस दिन करे क्रिस्न की सेव। सांचो जीवन ताकौ देव ॥
नवधा भक्ति क्रिस्न की करे। तिनके हरि सङ्कट सब हरे ।१८।
यह सुनि नन्द जसोदा राय। कीनो प्रेम रुदन ता ठांय ॥
तब फिर ऊधव विनई सेव। अब दुष जनि कीजे देब ।१९।
कमल नैन त्रिभुवन पति राय। दें है तुमको दरसन आय ॥
कहत बात निसि बीती सवे। घरी च्यार पछिली रहीं तवे ।२०।
दही विलोवन कौं उठि बाँम। धूप दीप करि अपने धाम ॥
अरुन बदन अरुनोदय बार। भुजा नितंब चलेत सुढार ।२१।
नवत कमर नारिन की इसी। झंझा कमल पवन लगि जिसी ॥
कंकन चूरई दधि सोर। छुद्र घंटिका नूपुर रोर ।२२।
इन करि सब शोभित बृज ऐसो। गरजे मेघ पर्वत में जैसो ॥
सुन्यो सब्रद ई ऊधौ जवे। अति आनन्द मगन भए तबे ।२३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धनि धनि जदुपति हरि राइ। जवै लै सुष के छपि ठाय।
ऐसे करत भोर भयो जबै। ललिता कुंड न्हान गये तबै।२४।
गोपीहूँ उठिके ता बार। कंचन रथ देष्यौ ता द्वार।
देषिय गोपिकन मीड़े हाथ। आए अक्रूर बहुरहिं नाथ।२५।
जिन पापी सर्वसु हरि लियौ। बहुरि आइ दरसु तिन दियौ।
है कहि गोपी आगे चली। सषी सहज में एके मिली।२६।
ऊधव उतरे आए न्हाय। देवत गोपी रही भुराय।
पीत बसन अरु कुन्डल कांन। ए को आवतु क्रिस्न समान।२७।

दोहा

इन्दा बिन्दा राधिका, स्यामा कामा जाय।
ललिता मिलि चन्द्रावली, सवे भई इकठाँय।२८।

इदि श्री भागवते दसम स्कन्धे छयालीसमोध्याय।।४६।।

सोरठा

गोपिन कूं समझाइ। सैंतालीस अध्याय में।।
बहुरि भेंटि नँदराइ। ऊधव मथुरा आइ हैं।।१।।

देषे ऊधव गौपिन जबै। अति आनन्द भयो सुष तबै।।
पूछ प्रस्न तिन बिनई सेव। नीके हैं त्रिभुवनपति देव।।२।।
ऊधव तुम आये इहि ठाम। नंद मिलन को आए स्याम।।
हम तो तऊ न तोरी प्रीति। उन सब करी लोभ की रीति।।३।।
लोभी प्रीति दाम तें राय। परजा मिली तेज तें आय।।
सिष को विद्या लगि हेत। पंछी तरु जौ लौं फल देत।।४।।
मारिहु मार भिषारी सहै। पावे भीष बहुरि नहीं रहै।
बन मृग सुष जब लग नहिं जरे। लोभी प्रीति लोभ लौं करे।।५।।
स्वारथ प्रीति करि गये स्यांम। बारम्बार कहैं ब्रजबांम।
ऊधव गोपी ठाढ़ी जहाँ। उड़त भँवर एक आयौ तहाँ।।६।।
बैठे उड़े करे गुञ्जार। गौपी फिरि बोली ता बार।।
कही बात ऊधव सौं जिती। ते ते नाँव भँवर को तिती।।७।।
जसी जिनि मुषि निकरी तबै। इकर वात कही मिलि सबै।।
अरे असित षटपद सुनि बात। कुटिल कपट सब तेरौ गात।।८।।
अरे विहङ्गम बन के मीत। ति नें करो हमारो चित।।
तैं त्यागौ चंपे कौ सङ्ग। तातैं भयौ साँवरे अङ्ग।।९।।
ब्रज वनितें तिनकौं दुष देत। कियौ जाय कुबिजा सौं हेत।।
तुम तीन्यौं जग कपटी नाथ। बहुत कहा हम गावैं गाथ।१०।
काटि नाक सूपनषा कांन। अनाथ करी श्री भगवान।।
बाली कपि मार्‌यौ बैकाज। वावन ह्वै छल्यौ बलिराज।११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुनहु सषी जिन कीजै सङ्ग। सब विधि बुरे साँवरे अङ्ग ॥
लछमी क्यों पतियाई इनें। सबहिन कौं दुष दीनौ जिनें ।१२।
एक कहै सुनि हौ बृज बांम। धरे वेल विषत्याई स्याम ॥
करत भिषारी प्रभुता आई। ताही तैं सेवत हरि पाई ।१३।
एक कहै जसु भलौ मुरारि। याही तैं गावत ब्रजनारि ॥
एह कहके गोपी ही जिती। प्रेम मगन ह्वै रोई तिती ।१४।
रोई सब गौपिका जवै। ऊधव फिरि बचन कह्यौ तबै ॥
हरि तुमसों यह कह्यौ सन्देस। मन में जिन कछु करौ अन्देस ।१५।
मोकूँ भजै दूर ते कोइ। वेगि ही दरसु तासु को होइ ॥
हो सर्वग्य सर्व के देव। तन मन लाय करौ जो सेव ।१६।
वेग ही दरसु तासु कौ होइ। सुत पति छाँड़ि भजे जो कोइ ॥
अबै नारि तजौ सब धाम। हरि कौ भजौ हौइ निष्किांम ।१७।
जोग तन्त तुम साधो बांम। सो सब बन्ध छोड़ के आंम।
प्रथम आतमा दूजो देह। ता पाछैं सुत पति सूं नेह ।१८।
जोग बतन ऊधो कह्यौ जबै। मुरछि परी गोपिका सबै ॥
बहुर्यौ सबही उठी सँभारि। करन परेखो लागी नारि ।१९।

धन्यासिरी

मुरली बजाइ करि मन्त्र सों पठाइ करि मोहन सौं डारि करि मनु खेंचि ले गयौ।
ग्रेह तें बुलाइ कर वन में भुराइ करि धित सौं दिवाइ करि ऊधम सौ कै गयौ ॥
सबही कौं अंक भरि अधर कौ पान करि अनिल सौं डारि करि आपु अमृत अचै गयौ।
करै न परेखो हरि सुषै कहै अब कोऊ मधुकर स्याम तौ हमहि दुख दे गयौ ॥२०॥

अब हम आसा बाड़ी तोय। आसा किए परम दुख होय।
जैसे पङ्गला आस करि राय। ठाढ़ी भई द्वार पे आय ।२१।
आसा किए परम दुख होइ। तब सो बाड़ि ग्रेह में गइ ॥
आषा तजी सुष भयो गात। बहुत कहा अब्र कहिए तात ।२२।
एक कहै हमसें ऐसें स्यांम। तिनकी आस न बूड़ी बाम ॥
हरि लीला देखी हित लाइ। भयो निरासन हमषे जाइ ।२३।
यह कह प्रेम मगन भई जबै। करी दिलासा ऊधो तबै ॥
देषी लिप्त क्रिस्न सों बांम। तब ऊधो कीनो परनाम ।२४।
ऊधव प्रेम मगन असि भए। ह्वै करि बिदा नन्द पैं गए ॥
अहो नन्द धनि गोपी बांम। जिनकी प्रीत नमन कै स्याम ।२५।
उनकी चरन कमल रज राय। में लोनी सब सीस चढ़ाय ॥
ऐसें करत बहुत दिन भए। ऊधव बिदा नन्द सों भए ।२६।
जेते दिवस बृज में रहे राय। नित्य मिले गोपिन कों आय ॥
ऊधव चले विदा ह्वै जबै। चले ग्वाल पहुँचावन तबै ।२७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोहा

वृषभान भद्रसेन श्रीदामा, अर्जुन सुबल सन्तोष ।
कृष्न ऋटवभ अस तेजसी, विदा भए दे धोक ।२८।

बरुथ परे बहु प्रस्थ विशाल । विदा भए जबही तब ग्वाल ।।
मथुरा माँहि ऊधो गये जवे । दियौ द्रव्य उग्रसेनहि तवे ।२९।
देते भेंट कंस को जिती । दई नन्द उग्रसेनहि तिती ।।
बहुरि मिले वसुदेवहि जाय । कह्यौ प्रनाम नन्द कौ आय ।३०।
पुनि भेटे जादो पति जबै । कही बात तब ब्रज की सबै ।।
गोप ग्वाल ब्रज में है जितौ । ऊधौ कह्यौ सन्देसो तितौ ।३१।

दोहा

हरि सुष हित बृजबांम के । ऊधौ कह्यौ सन्देस सुनाय ।।
अन्तरजामी आप जिय । मिले निरन्तर आय ।।३२।।

इति श्री भागवते दसम स्कन्धे सैंतालीसमोध्याय ।।४७।।

मध्य युग के सन्दर्भ में

ब्रजभाषा का समस्यापूर्ति काव्य

(डा० विजयेन्द्र स्नातक, दिल्ली)

भारतीय साहित्य परम्परा में समस्यापूर्ति-काव्य का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है । कलाओं का वर्गीकरण करते हुए चमत्कार तथा उक्ति वैचित्र्य के आधार पर समस्यापूर्ति को भी चौंसठ कलाओं में स्थान दिया गया है । समस्यापूर्ति को कलाओं में स्थान क्यों प्राप्त हुआ यदि इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया जाय तो व्युत्पत्ति तथा अभ्यास के स्तर पर इसका समाधान किया जा सकता है । बाह्य रूप में समस्यापूर्ति, शब्द विधान का चमत्कार मात्र प्रतीत होती है किन्तु इसका सम्बन्ध छन्द विधान, उक्ति वैचित्र्य, विदग्ध कल्पना के साथ भी है । संस्कृत के कवियों में यह शैली प्रचलित थी और राजदरबारों में कवि-प्रतिभा की परीक्षा के लिए समस्यापूर्ति को कसौटी माना जाता था । राजा भोज और विक्रमादित्य के दरबार में तो समस्यापूर्ति करने वाले कवियों का जमघट रहता था और समस्यापूर्ति के आधार पर काव्य-प्रतिभा का निर्णय होता था । समस्यापूर्ति काव्य राजाओं के मनोरञ्जन का साधन था और कवियों के लिए वाक्विलास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। वात्स्यायन के अनुसार—'श्लोकस्य समस्यापूरणम् क्रीड़ार्थं वादार्थं च।' का कथन इन दरबारी राजकवियों पर पूरी तरह चरितार्थ होता है।

काव्य प्रभाकर ग्रन्थ के लेखक श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु ने समस्यापूर्ति काव्य की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि 'समस्या शब्द का साधारण अर्थ किसी भी छन्द के पूर्ण होने के लिए शब्द अथवा वाक्य निर्माण करना तथा पूर्ति का अर्थ पूरा करना है। अर्थात् किसी भी छन्द के दिये हुए शब्द अथवा वाक्य को उसके पूर्व अथवा पश्चात् सार्थक शब्दों की योजना करके पूरे छन्द के रूप में कर देना।' वस्तुत: यह कवि की काव्य प्रतिभा का आशु परीक्षण था जो चमत्काराश्रित होने के कारण आधुनिक युग में हेय समझा जाने लगा। किन्तु मध्ययुग तक समस्यापूर्ति काव्य का पर्याप्त प्रचार था और कविगण राजदरबारों या कविगोष्ठियों में इसका प्रयोग करते थे। मध्ययुगीन कवियों का मुख्य काव्य रूप मुक्तक था। अत: समस्यापूर्ति काव्य की ओर उनका ध्यान स्वाभाविक था। दोहा,कवित्त, सवैया आदि छन्दों का इस युग में जैसा सुन्दर प्रयोग हुआ वैसा पहले नहीं हुआ था अत: समस्यापूर्ति के लिए कवित्त और सवैया छन्द के चतुर्थ चरण को सुगठित बनाने में इन कवियों को अच्छा अवसर मिला। समस्यापूर्ति का काव्य मनोरञ्जन का काव्य है, इस प्रकार के काव्य को शान्तिपूर्ण वातावरण में जितना प्रश्रय मिलता है उतना उद्वेग और अशान्ति के समय नहीं मिलता। वीरगाथाकाल में समस्यापूर्ति या विरल मात्रा में हुई किन्तु पन्द्रहवीं शती से इस काव्य धारा में प्रबल प्रवाह लक्षित होता है।

सम्राट अकबर के दरबार में कवियों को आदर प्राप्त था। अकबर के विषय में प्रसिद्ध है वह केवल सहृदय रसज्ञ ही नहीं स्वयं भी कविता करता था। सम्राट् अकबर के शासन काल में समस्यापूर्ति काव्य को पनपने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। कहते हैं कि उसके शासन काल में एक कवि-दरबार दिल्ली में हुआ था उसमें कवियों को समस्या दी गई थी—'करौ मिलि आस अकव्बर की।' इस समस्या की पूर्ति अनेक कवियों ने की—श्रीपति भी इनमें एक कवि थे। श्रीपति ने बड़ी निर्भीकता के साथ ईश्वर के आश्रय में रहना पसन्द किया और समस्यापूर्ति इस प्रकार की—

"अब के सुलतां फुनियान समान हैं, बाँधत पाग अटम्बर की।
तजि एक कौ दूजै भजै जो कोऊ, तब जीभ कटै उहिं लव्वर कीं।।
शरनागत 'श्रीपति' श्रीपति की, नहिं त्रास जरा कोउ जव्बर की।
जिनके नहिं आस कछू हरि की सु करो मिलि आस अकव्बर की।।"

अकबर और वीरबल के विनोद-प्रसङ्गों में समस्यापूर्ति का उल्लेख भी मिलता है। वीरबल ने एकबार सम्राट के समक्ष एक अपूर्ण दोहा प्रस्तुत किया और चाहा कि उनके दरबारी कवियों में कोई भी उसे पूरा करे—दोहा इस प्रकार था—

"खड़े रहत जाग्रत सदा, मम रक्षक अति शक्त।
यह कह सांवत चैन से, ...।।"

इस दोहे के चतुर्थ चरण की पूर्ति कवियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से की—किसी ने कहा कि चौथा चरण होना चाहिए—बालक, माता, शक्त, तो दूसरे ने कहा कि हरिपद प्रेमी भक्त ठीक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, तीसरे 'बादशाह बड़वख्त' के पक्ष में थे। अन्त में राजा टोडरमल ने इसकी पूर्ति इस प्रकार की--

खड़े रहत जाग्रत सदा, मम रक्षक अति शक्त।
यह कह सोवत चैन से, बालक, भूप, सुभक्त॥

इस पूर्ति को सबने स्वीकार किया।

अकबर ने प्रवीणराय के समक्ष एक समस्या रखी और तुरन्त उसकी पूर्ति का आग्रह किया--समस्या इस प्रकार है--

युवन चलत तिय रेहते, चटक चलत केहि हेत।

प्रवीण ने तुरन्त उसकी पूर्ति इस प्रकार की--

मनमथ बारि मसाल को, सेति सहारो लेत॥

कविवर तुलसी के एक पद की पूर्ति रहीम ने भी बड़ी चातुरी के साथ की थी। कहते हैं कि एक निर्धन ब्राह्मण अपनी कन्या के विवाह के लिए धन-याचना के लिए गोस्वामी तुलसीदास के पास पहुँचा। गोस्वामी जी ने उसे एक कागज पर यह पंक्ति लिख दी और कहा कि रहीम के पास जाकर इस पंक्ति को दे देना--पंक्ति इस प्रकार है--

सुरतिय नरतिय, नागतिय, यह चाहत सब कोय।

रहीम ने गोस्वामी जी की पंक्ति पढ़कर ब्राह्मण को बहुत सा धन तो दिया ही किन्तु साथ ही साथ उस पंक्ति की पूर्ति भी कर दी--

'गोद लिए तुलसी फिरे तुलसी सो सुत होय॥'

जयराम कवि की समस्यापूर्ति का उल्लेख इस सन्दर्भ में आवश्यक है। 'जयराम कवि की प्रतिभा का परीक्षण करने के लिए उन्हें समस्या दी गई थी--'बैरिन की वधू फिरे बेरन के बन में।' इसकी पूर्ति कवि ने इस प्रकार की--

"माला मकरन्द सुव साहव वलिवंड तुव, दापहि सों कांपैं तहां कौन रहे रन में।
राजन के राजा तुव बाजा उन सहयो जात, धाकतु है साहि जहां जहां तहाँ तन में॥
बाजत कर्णाटक भाजन कर्णाटुक, बाटन में कांगड़े हाटक से तन में।
बालम की बाट लखे बार-बार बावरिसी, बैरिन की वधू फिरे वेरन के बन में॥"

किसी अज्ञात नाम सन्त कवि की एक समस्यापूर्ति द्रष्टव्य है। समस्या है--'केहि कारण कूप में हालत पानी।' अब इसकी पूर्ति सुनिए--

"एक समय जल आनन को घर से निकसी अबला ब्रजनारी।
जाति संकोच में डोल भरन जल खैंचति ही अङ्गिया मसकानी॥
देखति ही छतियां उघरी कवि संत कहै मनसा ललचानी।
हाथ बिना पछितात रहयो तेहि कारण कूप में हालत पानी॥"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ कवियों ने लोकोक्तियों को समस्यापूर्ति के रूप में रखकर बहुत ही सुन्दर छन्द विधान किया है। कविवर देव इस प्रयोग से मूर्धन्य हैं। 'मोम के मन्दिर माखन को मुनि, बैठ्यो हुतासन आसन कीने।' की समस्या पूर्ति सुनिये--

"बागौ बन्यो जर तार को ता महि आस को हार तन्यो मकरीने।
पानी में पाहन पोत चल्यो चढ़ि कागद की छतुरी सिर दीने॥
कांख में बाँधि के पांख पतङ्ग के देव सुसङ्ग पतङ्ग को कीने।
मोम के मन्दिर माखन को मुनि बैठ्यो हुतासन आसन कीने॥"

एक और समस्या है--आगे को धरत पग पीछे को परत है--इसकी पूर्ति देखिए--

ऊधो आये, ऊधो आये, स्याम को सन्देसा लाये, सुनि गोपी-गोप धाये, धीर न धरत हैं।
पौरी लगि दौरीं उठि, मौंरी लौं भ्रमति मति, गनति न ताऊ, गुरु लोग न डरति हैं॥
ह्वै गई विकल बाल, बालम वियोग भरी, जोग को सुनत बात, गात यों जरत है।
भारी भये भूखन, संभारे न परत अङ्ग, आगे को धरत पग, पाछै को परत है॥"

मध्ययुगीन कवियों में समस्यापूर्ति का काव्य सबसे अधिक मात्रा में कबिवर पद्माकर का मिलता है। पद्माकर दरबारी कवि थे अतः उन्हें अपनी प्रतिभा को स्पर्धा की कसौटी पर भी कसना होता था। कहते हैं कि एक बार पद्माकर मथुरा आये, वहाँ श्री पुरुषोत्तम गोस्वामी के दरबार में उनकी भेंट 'उरुदास' कवि से हुई। गोस्वामी जी ने दोनों को एक समस्या पूर्ति के लिए दी। समस्या थी--'मिलि बिछुरे हो त्यौं ही विछुरि मिलोगे फेरि, या ही एक आसा पर स्वांसा भरिवौ करै।' इस समस्या की पूर्ति दोनों कवियों ने इस प्रकार की--पहले पद्माकर की पूर्ति सुनिए--

"ए हो नन्दनन्द अरविन्द मुखी गोकुल की तुम बिन चन्द चांदनी सो डरिवौ करै।
कहै पद्माकर पुराने पीर पान हू तें निपट निदान पीरी-पीरो परिवौ करै॥
वृन्दावन चन्द जू को अगली गली वे भली नैनन के नीर ते नदी-सी ढरिवो करै।
मिलि बिछुरे ही त्यों बिछुरि मिलोगे फेरि या ही एक आसा पर स्वांसा भरिवौ करै॥"

अब दूसरी पूर्ति उरुदास कवि की सुनिए--

"ए हौ बंक लोचनि विलोकनि तिहारो तोखो, चुभी चित बीच की कसक हरिवौ करै।
अन्तर दरज धुक धौंकनो धवनि मानो, मदन सुनार घटराज धरिवौ करै॥
मनै उरुदास तेरे गुन न समात हिए, मेरी जान ताही के उफान परिवौ करै।
मिलि बिछुरे हो त्यों हा विछुरि मिलोगे फेरि याही एक आसा पर स्वांसा भरिवौ करै॥

मध्ययुगीन ब्रजभाषा काव्य में समस्यापूर्त्ति का पर्याप्त प्रचलन रहा था। प्रायः सभी कवियों ने दस-बीस सुन्दर समस्यापूर्तियाँ की हैं। यह परम्परा मध्ययुगीन ब्रजभाषा काव्य से संक्रमित होकर भारतेन्दु युग और आधुनिक युग तक निरन्तर चली आ रही है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुं० हनुमन्तसिंह जी रघुवंशी

सुयोग्य लेखक, पत्रकार और समाज सुधारक

(डा० टीकमसिंह तोमर, एम. ए.; डी. फिल्–अध्यक्ष हिन्दी विभाग
राजा बलवन्तसिंह कालेज, आगरा)

उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले में चांदोख नामक एक ग्राम है। यहाँ पर बड़गूजर वंश के क्षत्रियों का एक संभ्रांत, गौरवशाली तथा प्रतिष्ठित परिवार रहता था। इस प्रसिद्ध कुल में १६ वीं शताब्दी में स्वनामधन्य ठाकुर गिरिवरसिंह रघुवंशी उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपने विद्याप्रेम, साहित्य-सेवा तथा समाज-सुधारात्मक कार्यों द्वारा पर्याप्त कीर्ति अर्जित कर ली थी। इन्हीं ठाकुर गिरिवरसिंह जी के यहाँ फाल्गुन शुक्ला द्वितीया, सं० १६२४ वि० (१८६७ ई०) को कुं० हनुमन्त सिंह जी अवतीर्ण हुए। प्रारम्भ में अपने गाँव में ही हिन्दी, उर्दू की शिक्षा प्राप्त की। इसके उपरान्त कुंवर साहब ने बुलन्दशहर के हाईस्कूल में प्रवेश लेकर-विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। वहाँ से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की। कुछ समय तक आपने लाहोर और मेरठ के डी० ए० वी० स्कूलों में भी शिक्षा प्राप्त की। तदनन्तर आगरा कालिजिएट स्कूल में प्रविष्ट हुए। वहीं से एन्ट्रेंस की परीक्षा देकर उसमें सफता प्राप्त की।

कुंवर हनुमन्तसिंह जी बड़े कुशाग्र-बुद्धि थे। विद्यानुराग आपको पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुआ था। आपने अपने परिश्रम, अध्यवसाय द्वारा अनेक भाषाओं के साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। फलतः आपकी गणना हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, बंगला तथा गुजराती के उच्चकोटि के विद्वानों में की जाती थी।

आपको भारत के प्राचीन इतिहास, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की पूरी जानकारी थी। साथ ही रघुवंशी जी समसामयिक राजनीतिक विचार धारा, समाज-सुधार विषयक आन्दोलनों से पूर्ण रूप से परिचित थे। आप प्राचीनता के पोषक होते हुए भी उदार चेता तथा दूरदर्शी थे। इन्हें प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण रुचिकर न था। समय के अनुसार प्रत्येक हितकर नवीन-विचार का स्वागत करने के लिए कुंवर साहब सन्नद्ध रहते थे। विघटनकारी तत्वों का आप खुलकर विरोध करते थे। आप मिलनसार तथा सरल प्रकृति के व्यक्ति थे। आप के मुख-मण्डल पर क्षत्रियोचित तेज सदैव देदीप्यमान रहता था।

उन दिनों गोंडा जिले के अन्तर्गत भिनगा नामक एक राज्य था। वहाँ के राजा उदयप्रतापसिंह जी थे। यह राजा अत्यन्त विद्या-प्रेमी, समाज सुधारक और उदार चेता थे। इनकी कीर्ति का स्तम्भ वाराणसी का उदयप्रताप कालेज इस समय भी विद्यमान है। उन्हीं भिनगा-नरेश के राज्य में हनुमन्तसिंह जी १८९२ से १८९६ ई० तक एक उच्च पद पर कार्य करते रहे। वहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर आपको अपने गुणों के विकास के लिए उचित वातावरण मिला। पर नौकरी के बन्धन उन्हें रुचिकर नहीं प्रतीत हुए। इसीलिये वहाँ से त्यागपत्र देकर आगरा चले आये।

आगरे में आकर कुंवरसाहब ने राजपूत ऐंग्लो ओरियन्टल प्रेस की १८९७ ई० में संस्थापना की। उस समय इस नगर में प्रेसों की संख्या बहुत कम थी। राजपूत प्रेस ने अपनी छपाई, सफाई और कार्य-कुशलता के लिए बहुत ख्याति अर्जित की।

क्षत्रिय जाति के हितार्थ अखिल भारतीय क्षत्रिय सभा की नींव डालने वालों में कुंवर साहब का प्रमुख हाथ था। आप आजीवन इस सभा के सदस्य रहे तथा विभिन्न पदों पर रहकर जाति-सेवा करते रहे। १८९८ ई० में क्षत्रिय महासभा के मुखपत्र 'राजपूत' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। रघुवंशी जी अनेक वर्षों तक इस पत्र का योग्यतापूर्ण सम्पादन करते रहे।

रघुवंशी जी ने अप्रेल १९०५ ई० में 'स्वदेश-वान्धव' नामक मासिक पत्र निकालना आरम्भ किया। यह जुलाई, १९२१ ई० तक निरन्तर सफलता के साथ प्रकाशित होता रहा तथा साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्रों में राष्ट्र की सेवा करता रहा। इसके सम्पादक स्वयं कुंवर हनुमन्तसिंह तथा सह-सम्पादक पं० पन्नालाल थे। पत्र के मुख पृष्ठ पर ये पंक्तियां अङ्कित रहती थीं—

'सर्वोपयोगी मासिक पत्र'

"देश-सेवा राष्ट्र उन्नति भावपूर्ण विचार।
भ्रातृ-प्रेम-प्रसार अरु नय नागरी सुप्रचार॥"

"स्वदेश-वान्धव' अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सदैव प्रयत्न करता रहा। 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक ने जून १९१२ ई० के अङ्क में लिखा था—'यह मासिक पत्र सात वर्ष से बड़ी ही योग्यता से सम्पादित होकर आगरे से निकलता है।......इसके लेख सचमुच ही सर्वोपयोगी होते हैं। आख्यायिकाएं इसकी मनोरञ्जक भी होती हैं और शिक्षा-दायक भी।....स्त्रियों और छात्रों के लिए तो यह पत्र और भी उपयोगी हैं।[1]

उसी वर्ष की श्रावण मास की 'मर्यादा' पत्रिका में 'स्वदेश-वान्धव' के सम्बन्ध में ये पंक्तियां प्रकाशित हुई थीं—

'स्वदेश-बान्धव' कुंवर हनुमन्तसिंह जी और पण्डित पन्नालाल जी के सम्पादकत्व में आठ वर्ष से सर्वोपयोगी मासिक पत्र निकलता है। वास्तव में इसके लेख सब के पढ़ने योग्य और हितकर होते हैं। इसका अग्रलेख जो सम्पादकों का लिखा होता है, सदा से अच्छा होता आया है।[2]

शनैः शनैः स्वदेश-वान्धव की उपादेयता बढ़ती गई। अप्रैल १९१४ के अङ्क में प्रकाशित सम्पादकीय लेख की इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है—

'बान्धव में सदैव ऐसे लेख छापे जाते हैं जो सरल भाषा में उपदेशपूर्ण और मनोरञ्जक हों। इसलिए ही इसका हिन्दी संसार में अच्छा आदर है। इसकी शिक्षापूर्ण और प्रभावोत्पादक

१—स्वदेश-वान्धव, भाग ९, संख्या १, अप्रैल १९१३ ई०, पृ० १–८।

२—वही।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आख्यायिकायें नवयुवाओं द्वारा बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। इसमें जो आख्यायिकायें छपती हैं वे सब मौलिक होती हैं; किसी भी भाषा की गल्पों या कहानियों का अनुवाद नहीं होतीं। इनकी उत्तमता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है कि इसकी कितनी ही आख्यायिकाएं गुजराती भाषा की पुस्तकों में अनुवादित होकर छपी हैं और हिन्दी भाषा के दो प्रसिद्ध लेखकों ने अपने संगृहीत लेखों की पुस्तकों में इसके लेखों को उद्धृत कर इसको गौरवान्वित किया है। विलायत से नियुक्त होकर आने वाले यूरोपीय अफसरों को हिन्दी परीक्षा के लिए जिन चार मासिक पत्रिकाओं के नाम छपे हैं, उनमें से एक स्वदेश-बान्धव भी है।

'हमको स्वदेश-बान्धव निकालने में कुछ आर्थिक लाभ नहीं है तथापि स्वदेश और स्वभाषा की सेवा इसके द्वारा जो कुछ भी होती है उसी से हम सन्तुष्ट हैं।[1]

कुंवर साहब स्वदेश-बान्धव को अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न करते रहते थे। इसके भाग ११, संख्या २० से स्त्री-उपयोगी लेख-माला प्रारम्भ करते हुए रघुवंशी जी ने लिखा था—

'बिना स्त्री के विचारों के सुधरे कभी किसी जाति का सामाजिक सुधार नहीं हो सकता है। इस लिये ऐसे स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी लेख जिनसे कम अवस्था की स्त्रियों व लड़कियों के बिचार सुधरें हम छापना प्रारम्भ करते है। प्रत्येक अङ्क में एक लेख विशेषतः स्त्रियों के लिए छापा जाया करेगा।[2]

उपर्युक्त विवेचन से 'स्वदेश-बान्धव' की उपयोगिता, महत्ता तथा सम्पादकों की साधना, सेवा-व्रत और सम्पादन-कुशलता का पर्याप्त प्रमाण मिल जाता है।

'राजपूत' पत्र द्वारा उन्होंने समालोचना क्षेत्र में एक स्वस्थ परम्परा की नींव डाली। वह एक जागरुक प्रहरी के समान इस बात की चेष्टा करते रहे कि हिन्दी में अनैतिहासिक, अप्रामाणिक तथा महापुरुषों की कीर्ति को कलङ्कित करने वाला साहित्य न लिखा जाए। इस भावना से प्रेरित होकर आपने भारत जीवन प्रेस, काशी से प्रकाशित होने वाली अनेक पुस्तकों की डट कर आलोचना की। यहाँ पर इन पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर देना अप्रासङ्गिक न होगा—

(१) 'शक्ति-मती' नामक एक नाटक बङ्गला से अनुदित होकर बाबू रामकृष्ण के भारत जीवन प्रेस से प्रकाशित होकर छपा था। इसमें महाराणा प्रताप की कन्या पर सलीम का अनुरक्त होना दिखलाया गया था। ऐसी ही अनेक अन्य अवांछनीय घटनाओं की चर्चा की गई थी।

(२) 'चित्तोर चातकी'—बगङ्गा भाषा से रामकृष्ण वर्मा ने सं० १९५२ वि० में अनुवाद करके छपवाया। इस उपन्यास में चित्तोड़ के राजवंश पर कलंक कालिमा लगाने का भरसक प्रयास किया गया था।

१—स्वदेश-बान्धव, भाग ११, सं० १, अप्रैल १९१५, पृ० १–५।

२— वही , सं० २०, सं० १९६६ वि०, पृ० १६ (पाद टिप्पणी)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(३) 'इला'—इस उपन्यास का बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री ने सं० १९५२ वि० में अनुवाद किया था। यह पुस्तक भी भारत-जीवन प्रेस से छापी गई थी।

(४) 'सरोजनी'—यह नाटक भी बगङ्गा से अनुवादित होकर उक्त भारत-जीवन प्रेस से छपा था।

उक्त चारों पुस्तकों को क्षत्रियों की गोरवमयी परम्परा के विपरीत पाकर रघुवंशो जी ने समीक्षात्मक लेख लिखे। भारत जीवन प्रेस के स्वामी ने अपने पक्ष में कई विवरण प्रकाशित किये। उस समय यह साहित्यिक विवाद विद्वानों के लिए अधिक महत्वपूर्ण हो गया था। 'भारत मित्र' तथा 'श्रीवेंकटेश्वर समाचार' ने अनेक लेख लिखकर 'राजपूत' पत्र के दृष्टिकोण का समर्थन किया था।

अन्त में 'शक्तिमती' नामक नाटक के अगले संस्करण में आवश्यक संशोधन कर दिया गया। २२ नवम्बर १९०३ ई० को बाबू श्याम सुन्दर दास, बाबू गङ्गाप्रसाद जी गुप्त तथा बाबू कालिन्द्री पतिराम की उपस्थिति में 'चित्तौर चातकी' की अवशिष्ट प्रतियां गङ्गाजी में प्रवाहित कर दी गईं। शेष दो पुस्तकों 'इला' तथा 'सरोजिनी' में भी पञ्च-फैसले के आधार पर आवश्यक संशोधन कर दिये गए।

इस प्रकार कुंवर हनुमन्तसिंह जी के क्षेत्र में स्वस्थ-परम्परा और सत्साहित्य सर्जना का स्तुत्य कार्य किया।

रघुवंशी जी अपने पत्रों द्वारा साहित्यकारों को प्रोत्साहन प्रदान करते थे। साहित्य के उत्थान में योगदान देते रहते ये। व्रजकोकिल सत्यनारायण कविरत्न के निधन का समाचार पाकर आपने स्वदेश वान्धव में एक सम्पादकीय लिखा था। इसके पढ़ने से विदित होता है कि इस बज्रपात से आपका हृदयविदीर्ण हो गया था।

इस लेख के अन्त में आपने लिखा था—'आगरे के मित्रों से आशा है कि वे कोई उपयुक्त स्मारक उनका स्थापित करावेंगे।[1] कहने की आवश्यकता नहीं है कि आगरा निवासी और हिन्दी सेवी अभी तक कुंवर साहब की इस अपील के अनुसार कविवर सत्यनारायण जी का उपयुक्त स्मारक स्थापित करने में असमर्थ रहे हैं।

अपनी पत्रकला द्वारा रघुवंशी जी समाज-सुधार, साहित्य-सर्जना, हिन्दी सेवा आदि के क्षेत्र में जीवन पर्यन्त कार्य करते रहे। इसके अतिरिक्त आपने लगभग चालीस पुस्तकें लिखीं। इतिहास के क्षेत्र में 'मेवाड़ का इतिहास' तथा क्षत्रिय-कुल तिमिर प्रभाकर विशेष उल्लेखनीय है।

इसके अतिरिक्त आपने नाटक, उपन्यास, कहानी, जीवन-चरित्र आदि साहित्यिक विधाओं को अनेक ग्रन्थ रत्न प्रदान किए हैं। अपका 'सती चरित्र' नामक ग्रन्थ एक सच्ची घटना पर आधारित सामाजिक नाटक है। इसमें नाटक के सभी तत्व विद्यमान है। भारत महिला-मण्डल की रचना दो खण्डों में हुई है। इन दोनों भागों में सती पतिब्रता और अपनी मान-मर्यादा पर मर मिटने वाली २७ आर्य-ललनाओं के जीवन वृत्त संग्रहीत हैं। कहानी के क्षेत्र में आपकी 'रमणी

१—स्वदेश बान्धव, फरवरी, १९२० ई०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रत्न माला' तथा वनिता–हितैषिणी रचनायें अधिक प्रसिद्ध हैं। कहानी कला की दृष्टि से ये अति उच्च स्थान पाने की अधिकारिणी कृतियां हैं। 'महाभारत सार' 'बालकों का सुधार' आदि आपकी अन्य उल्लेखनीय रचनायें हैं।

साहित्य के क्षेत्र के अतिरिक्त रघुवंशी जी समाज और शिक्षा-क्षेत्र में सदैव अपनी सेवाओं द्वारा सम्मानित होते रहे। बलवन्त राजपूत हाई स्कूल के विकास और उन्नति में आप जीवन भर योग देते रहे। आप वर्षों तक इस संस्था की प्रबन्ध-समिति के सदस्य रहे। आगरा की नागरी प्रचारिणी सभा के प्रवर्त्तकों में से आप एक प्रमुख व्यक्ति थे। आपके सत् प्रयत्न से आगरे में पब्लिक लाइब्रेरी की स्थापना हुई थी। आप आगरा की आर्यसमाज के अनेक वर्ष तक पदाधिकारी रहे थे।

कुंवर हनुमन्तसिंह जी रघुवंशी आरम्भ से अन्त तक सच्चे साधक की तरह कर्तव्य परायणता का परिचय देते रहे। समाज-सुधार, जाति-उन्नयन, शिक्षा, साहित्य, पत्रकारिता तथा हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार में आप रत रहे। २० दिसम्बर १९२६ ई० को इस वीर सेनानी ने अपनी जीवन लीला समाप्त की।

यद्यपि कुंवर साहब का पार्थिव शरीर नष्ट हो गया है तथापि उनकी अमर कीर्ति सदैव हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहेगी। आपका यश सौरभ हिन्दी-सेवियों को सदैव प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

वेदों में तत्कालीन सामाजिक दशा का वर्णन

(श्री वृन्दावन दास)

वेदों की प्राचीनता और यथार्थ भाषिता के कारण उनमें वर्णित घटनायें प्रामाणिक और ऐतिहासिक हैं। यद्यपि वेद हमारे धार्मिक ग्रन्थ हैं उनका ऐतिहासिक मूल्य बहुत है। साहित्य की दृष्टि से आर्य साहित्य प्राचीनतम है। यजुर्वेद में संसार का सबसे प्रचीन गद्य और ऋग्वेद में प्राचीनतम पद्य दृष्टिगोचर होता है।

वेदों में यद्यपि देवताओं का वर्णन है तथापि मुख्य कल्पना ईश्वर की ही है। सूर्य, इन्द्र, अग्नि में जो शक्ति निहित है वही ईश्वर का रूप है। अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि की मान्यता ईश्वर की शक्ति के रूप में है ईश्वर रूप में नहीं।

आर्य लोग जिस प्रदेश में रहते थे उसका नाम सप्त सैन्धव था। सरस्वती नदी इसकी पूर्वीय सीमा थी। सप्त सिन्धु से आशय बर्तमान पञ्जाब की पाँचों नदियों, सिन्धु और सरस्वती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन सात नदियों से था। आर्य धीरे-धीरे आगे बढ़े और उन्होंने अवध, काशी, मिथिला आदि में अपने राज्य स्थापित किये।

ऋग्वेद के मण्डलों में काल की दृष्टि से आगे पीछे का क्रम अभी तक निर्धारित नहीं हो सका है। यह धारणा निर्मूल है कि ऋग्वेद के मण्डल क्रमानुसार अस्तित्व में आये हैं। कहीं तीसरे, कहीं सातवें और कहीं दसवें मण्डल में प्राचीनतम सामग्री है। इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि मण्डल का वर्तमान क्रम सम्पादक की देन है न कि क्रमगत निर्माण की। दसवें मण्डल में चाक्षुष और वैवस्वत मनु प्राचीन ऋषि हैं जब कि तीसरे और सातवें मण्डल में राजा सुदास का वर्णन है। राजा सुदास तो वैवस्वत मनु से ५२ वीं पीढ़ी पर अयोध्या के राजा थे।

ऋग्वेद में ३३ देवताओं का कथन हैं। महर्षि विश्वामित्र ने यह संख्या ३३३९ कही। पौराणिक समय से यह संख्या तेतीस करोड़ तक पहुँच गई। धार्मिक क्षेत्र में उत्तरोत्तर महती उन्नति हो रही थी। देवियों की महिमा वेदों में कुछ कम है। सरस्वती नदियों में पवित्र मानी गई है। ब्राह्मण काल में वह वाग्देवी और पौराणिक काल में विद्या की अधिष्ठात्री देवी मानी गई है। सोम एक प्रकार का पेय था फिर सोम चन्द्रमा का नाम ही हो गया।

आर्यों की कई शाखाओं का वेदों में उल्लेख है। यभाति के पाँचों पुत्र यदु, तुर्वसु, अनु, द्रुह्य और पुरु और उनकी शाखाओं के उल्लेख वेदों में अनेक बार आये हैं। इनके अतिरिक्त गांधार भुज्युवंत, मत्स्य, वृत्सु, भरत, भृगु, उशीनर, चेदि, क्रिवि, उरु, सृञ्जय, कठ, पारावत आदि शाखायें भी प्रमुख हैं।

तृत्सु रावी नदी के पूर्व रहते थे। स्वायम्भु व मनु के एक वंशधर भरत भी थे। पुरुवंश में दुष्यन्त के पुत्र का नाम भी भरत था। इन दोनों के वंशज भारत कहलाये। उशीनर, सृंजय, भत्स्य, चेदि आदि नाम पुराणों में उसी प्रकार आये हैं। ये सब आर्य जातियाँ उत्तर भारत के विभिन्न भागों में रहती थीं। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि पाँचाल देश का प्राचीन नाम क्रिवि है। वेदों में पौरवों और यादवों का यभाति का वंशज होना बहुत बार लिखा है। यभाति के वंशजों में पौरवों की प्रधानता थी। यह बात समान रूप से वेदों और पुराणों में स्पष्ट है। सुदास ने यद्यपि अनेक आर्य और अनार्य राजाओं को जीता था वह पौरवों को जीतने में असमर्थ रहा। ऋग्वेद में इक्ष्वाकु का नाम तो आया है परन्तु इन महान् महाराज के वशजों का नाम नहीं लिखा है।

आर्यों और अनार्यो के सैकड़ों नाम वेदों से आये हैं। अनार्यों में वृत्र, दनु, पिप्न, स्नश्न, सम्बर, वंगृह, बलि, नमुचि, मृगय, अर्बुद आदि के नाम अनेक बार आये हैं। दनु वृत्रासुर की माता थी। के वंशज दानव कहलाये। वृत्र के १०० दुर्ग इन्द्र ने ध्वस्त किये। ९९ वृत्रों का वर्णन वेदों में कई जगह आया है। सम्बर और वगृद् के सौ-सौ दुर्गो के नष्ट किये जाने क अनेक वर्णन हैं। सम्बर के किले पहाड़ी थे और इन्दु ने उन्हें दिवोदास के लिए ध्वस्त किया था। ऋषियों के अतिरिक्त मनु, नहुष, ययाति, ईला, पुरूरवा, दिवोदास, मान्धाता, दधीचि, सुदास, त्रसदस्यु, यभाति के पाँचों पुत्र आदि के नाम वेदों में अनेकबार आये हैं। दिवोदास और सुदास के क्रम बद्ध वर्णन बड़े सुन्दर हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिवोदास सूर्य वंशी थे। उनको वृत्सुओं का स्वामी लिखा है। सुदास और उनके पुत्र कल्माषपाद सूर्य वंशी थे। श्री राम का जन्म आगे चलकर इसी वंश में हुआ था। सूर्य वंशियों को वेदों में तृत्सु कहा गया है।

दिवोदास बहुत बड़े विजयी थे। इन्होंने तुर्वसु, द्रुह्यु और सम्बर को मारा और गंगु लोगों को पराजित किया। नहुष वंशियों ने इनको कर दिया। इनके पुत्र सुदास ने इनकी विजयों में और भी वृद्धि की। सुदास का युद्ध वेदों में वैसा ही महत्वपूर्ण है जैसा पुराणों में महाभारत का पीछे हुआ।

सुदास के विरुद्ध राजाओं का एक बड़ा सङ्घ बना। नहुषवशी यदु, तुर्वसु, अनु, द्रुह्यु के वंशजों ने भारतों से मिलकर बहुत से अनार्य राजाओं की सहायता से सुदास को हराने की योजना बनाई। नहुष वंशियों की सहायता के लिए भार्गव, परोदास, पक्श, भलान, अलिन, शिव, विशात, कवष, युध्यामधि, अज, सिगरु और चक्रु तथा २१ जाति के वैकर्ण लोग एकत्रित हुए। राजा वर्चिन ने अपनी बड़ी सेना सहित इनका नेतृत्व किया। नहुष वंश का मुख्य पुरुवंशी राजा युद्ध में न आया।

नाहुषों ने रावी नदी के दो टुकड़े करके नहर निकाल कर नदी पार करना चाहा किन्तु सुदास ने तत्काल धावा बोल दिया जिसके परिणाम स्वरूप नाहुषों की बहुत बड़ी सेना नदी में डूब गई। कवष और बहुत से द्रुह्यु वंशी भी नदी में डूब गये। भयङ्कर युद्ध हुआ जिसमें सुदास की पूर्ण विजय हुई। अनु और द्रुह्यु वंशियों के ६६ सेनाध्यक्ष और ६००० सैनिक मारे गये। आनवों का सारा सैन्य सामान लूट लिया गया जिसको सुदास ने तृत्सु को दे दिया। सुदास ने युध्यामधि को अपने हाथ से मारा। राजा वर्चिन के एक लाख सैनिक युद्ध में खेत रहे। अनेक राजाओं ने जिनमें अज, सिगरु और चक्षु थे सुदास को कर देना स्वीकार किया। रावी नदी के किनारे यह महान् युद्ध इस प्रकार समाप्त हुआ।

वैदिक आर्यों में स्वच्छन्दता एक बड़ा भारी गुण था। प्रत्येक ऋषि ने अपने निष्कर्ष किसो अन्य ऋषि की सहायता बिना ही निकाले हैं। उसने इस बात की परवाह न की कि अन्य ऋषि के निकाले हुए निष्कर्ष भिन्न हैं। ऋषिगण केवल अपने शिष्यों को विद्या दान ही नहीं देते थे, अपितु युद्ध में आवश्यकता पड़ने पर सैन्य सञ्चालन को भी जाते थे। जाति भेद न होने कारण प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार ऋषि, सैनिक, व्यापारी कुछ भी हो सकता था।

सामाजिक जीवन व्यवस्थित था। पाँच प्रकार की महत्वपूर्ण संस्थाय थीं। (१) परिवार जिसे गृह अथवा कुल कहते थे और जिसका अध्यक्ष कुलप होता था (२) ग्राम जिसका प्रधान ग्रामणी कहलाता था (३) विश जिसका अध्यक्ष विशपति होता था (४) जन जो समस्त जाति का बोधक होता था जैसे यादव जन, भरत जन आदि। (५) राष्ट्र जिसका अर्थ उस समय राज्य होता था। इन संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक एवं नागरिक जीवन व्यवस्थित होता था।

राज्य का प्रमुख राजा होता था। राज्य का शासन दण्ड उसके हाथ में रहता था। जिससे राष्ट्र (राज्य) भली भाँति चल सके। प्रजा उसको सहर्ष कर देती थी चूँकि राजा को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनता की रक्षार्थ व्यवस्था के लिए धन की आवश्यकता होती थी। राजा अदण्ड्य होता था क्योंकि राजा कोई गलती नहीं कर सकता ऐसी भी धारणा थी।

राजा का पद पैतृक होता था। कभी-कभी वह निर्वाचित भी होता था। राजा स्वेच्छाचारी न होता था। राजा प्रजा के अनुकूल होना चाहिये ऐसा ऋग्वेद में उल्लेख है। ऋग्वेद के राजा की मन्त्रि परिषद में (१) पुरोहित (२) सेनानी (३) ग्रामणी होते थे।

सभा और समिति नामक सार्वजनिक सस्थाऐं भी होती थीं। सभा वृद्ध और सुजात लोगों की संस्था होती थी जिसे राजा अपने पक्ष में करने को इच्छुक रहता था।

ऋग्वेद में समज्ञान पर बहुत बल दिया गया हैं। सूक्त में राष्ट्रीय समिति में एक साथ जाने, एक विचार धारा बनाने और एक नीति का अनुसरण करने पर जोर दिया गया है। राष्ट्रीय समिति के कार्यों को सहचित्त होकर करना चाहिये।

सेना में पैदल, घोड़े और रथ हुआ करते थे। रथों को घोड़े खींचते थे। उनको सारथि रश्मि (रास) और कशा (चाबुक) से सञ्चालित करते थे। सैनिक वर्ग (कवच हस्तघ्न (दस्ताने) और शिप्रा पहिनते। उनके अस्त्र शस्त्रों के नाम इस प्रकार आये हैं—धनुष और बाण, असि (तलवार) स्रक्ति (भाले, स्रक (गुर्ज) दिद्यु (अस्त्र , अद्र अथवा अशनि (फेंक कर मारने के प्रस्तर (यन्त्र)।

दुर्गों को यन्त्रों द्वारा तोड़ने की प्रक्रिया को फरचरिष्णु कहा है दुर्गों के बाहर मिट्टी के अवरोध बनाने और उनको चारों ओर से आवृत करने आदि के सैनिक कार्यों के वर्णन मिलते हैं।

ऋग्वेद के मन्त्र ऋषियों के तत्वचिन्तन की प्रक्रिया के मध्य आविर्भूत हुए। उन्होंने उन मन्त्रों का उच्चारण किया तथा अपने शिष्यों को सिखाया। गुरु जैसा उच्चारण करते थे। शिष्य उसी प्रकार पुनरावृत्ति करती थे। ऋषि ही मुख्य शिक्षक का कार्य करते थे। एकाग्र चिन्तन द्वारा उन्हें सत्य का परिज्ञान हुआ। छोटे ऋषियो को यास्क ने श्रुतर्षि कहा है।

ऋग्वेद में शिक्षा पद्धति दो प्रकार की है एक तो वह जो आधुनिक गुरुकुल प्रणाली का पूर्व रूप थी जिसमें ऋषिगण अपने आश्रमों पर ही ब्रह्मचारियों अथवा व्रतचारियों का शिक्षा देते थे। व्रतचारी नाम इस लिये पड़ा कि ब्रह्मचारियों को अपने-वीद्यार्थी जीवन में कुछ व्रतों, संयमों आदि का पालन करना पड़ता था। दूसरी वह जो सङ्घों द्वारा सञ्चालित थी। सङ्घ वे उच्च संस्थायें थीं जहाँ विद्वान् लोग लोक-भाषाओं में विचार विनिमय करते थे। सङ्घ शब्द जो बाद में बौद्ध धर्म का मुख्य अङ्ग बना ऋग्वेद से ही निकला है।

ऋग्वेद के अन्त में लिखा है कि वह शिक्षा व्यर्थ है जिसमें बिना समझे ऋक् को पढ़ा जाय। वैदिक मन्त्रों को आत्मसात् करने के लिए गहन अध्ययन और मनन अपेक्षित था।

धर्म का लौकिक एवं दार्शनिक पक्ष है। लोक धर्म के रूप में यह सूर्य, वरुण, ऊषा, पूषा, इन्द्र और अग्नि आदि प्रकृति की शक्तियों और स्वरूपों की उपासना का विधान करता है। इसमें ऋत (सत्य) सूनृत (समृद्धि) श्रद्धा, दान आदि उच्च आदर्शों की अमूर्त देवताओं के रूप में भी कल्पना है जो कि धार्मिक विचारों की पर्याप्त प्रगति को द्योतक है। एक सूक्त जो क्षुधार्त को भोजन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कराने की शिक्षा देता है और इस कार्य को जीवनदान तुल्य बताता है विश्व के उच्चातिउच्च समाजबाद की परिकल्पना करता है।

यज्ञ के भौतिक स्वरूप के पीछे एक आध्यात्मिक महत्व छिपा है जिसमें भगवान् ने स्वयं अपने ही विराट स्वरूप की सृष्टि के निर्माण हेतु बलिदान किया। एक ने अपने को अनेक में व्यक्त करने की भावना को जन्म दिया। भगवान् ने स्वयं अपने ही उदाहरण से मनुष्य को आत्म बलिदान करने की ओर उत्प्रेरित किया।

यजुर्वेद की ऋचाओं के अनुसार वैदिक ज्ञान सभी जातियों और वर्गों जैसे शूद्र, चारण (वैश्य) यहाँ तक अनार्यों के लिये भी उपलब्ध होने योग्य हैं। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में शूद्रों को समाज का अनिवार्य एवं अभिन्न अंग माना गया है और अन्य जातियों की तरह उनके कर्म भी निश्चित किये गये हैं। यास्क के अनुसार सबसे अधम पञ्चम जाति भी यज्ञ करने का वैसा ही अधिकार रखती हैं जैसा अन्य जातियाँ।

भोजन में प्रमुख रूप से चावल और जौ होते थे जो घी दूध और उससे बने पदार्थ जैसे दही, पनीर और मक्खन के साथ खाये जाते थे। बकरी और भेड़ जैसे पशुओं का मांस प्रयोग में आता था। यज्ञों में बलि होती थी। गाय के बध का निषेध था सुरापान वर्जित था।

वैदिक काल में सङ्गीत के सात स्वरों का पता चलता है। वाद्यों में दुन्दुभी (ढोलक) कर्करी (बांसुरी) और बीणा (सारङ्गी) का व्यवहार था।

वस्त्र तीन प्रकार के पहिने जाते थे (१) उत्तरीय (ऊपर का वस्त्र) (२) नीवी (मध्यभाग का वस्त्र) और धोती (नीचे भाग का वस्त्र)। बढ़िया कामदार वस्त्र भी पहिने जाते थे। गर्दन और कानों में आभूषण पहिनने का रिवाज था। कङ्गन और बिछुए प्रयोग में आते थे।

अर्थ व्यवस्था कृषि और घरेलू उद्योगों पर आधारित थी। कृषि का आधार जिन पशुओं पर निर्भर था उनमें गाय, भैंस, बैल, घोड़े, भेड़ बकरी और गदहे सम्मिलित थे। जमीन की जुताई हलों द्वारा होती थी जिनमें ६, ८ और १२ बैल तक जोते जाते थे। अन्न को भूसे से पृथक् करने के लिए छलनी काम में लाई जाती थी। कुत्तों द्वारा रखवाली का काम किये जाने के उल्लेख पाये जाते हैं। खाद के लिये शकम् और करीष के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

व्यापार में विनिमय की प्रथा भी थी। एक इन्द्र की मूर्ति १० गायों के विनिमय में मिलने का उल्लेख है। वचन-निर्वाह का आदर्श व्यापार में भी बहुत था। एक बार सौदा होने पर वचन का टाला जाना सम्भव नहीं था चाहे दाम चढ़ जाँय अथवा कम हो जायें। समुद्री व्यापार भी होता था। भुज्यु के विशाल समुद्री बेड़े के नष्ट होने का उल्लेख है। सौ-सौ पतवारों की बड़ी नावें होती थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक मूल्यांकन

भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य

(श्री रमेशचन्द्र दुबे, एम० ए०, ११ बी० जिलाधीश का कम्पाउण्ड, आगरा)

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष बाबू वृन्दावनदास की यह कृति भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य नाम से सुषमा पुस्तकालय, कृष्णानगर दिल्ली से अगस्त सन् १९६९ में प्रकाशित हुई है। मुद्रण एवं सज्जा इतनी उत्कृष्ट है कि लेखक के साथ ही सज्जा करने वाले श्री रहमान एवं मुद्रक श्री आटोमैटिक प्रिंटिंग प्रेस मथुरा के निपुण कार्यालयाध्यक्ष को बधाई देना मैं आरम्भ में ही आवश्यक समझता हूँ। पुस्तक का मूल्य १०) रुपये है और पृष्ठ संख्या ३५१। आवरण पर प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव के द्योतक उत्कृष्ट कला चित्रों का निदर्शन कृति को आकर्षक रूप में प्रस्तुत करता है। बाबू जी पिछले ४० वर्षों से लिख रहे हैं, यह बहुतों को मालूम नहीं और साहित्यकारों में बाबू वृन्दावन दास का नाम लेने पर नौसिखिये बाबू वृन्दावन लाल वर्मा को ही नमस्कार कर बैठते हैं। इसका मुख्य कारण यही था कि समर्थ लेखनी एवं सम्पन्न पैतृक प्रेस के धनी होते हुए भी सहज विनम्र बाबू वृन्दावन दास जी ने कभी अपनी योग्यता का प्रदर्शन करने हेतु ग्रंथ प्रकाशन की ओर ध्यान नहीं दिया। चार दशक बीत जाने के बाद ही हमें उनके इन ५१ निबन्धों का यह उत्कृष्ट संग्रह पुस्तकाकार उपलब्ध हो सका। खैर, देर से ही सही, हिन्दी के इस जागरुक लेखक की भारतीय आत्मा का प्रथम दर्शन हमें हुआ तो सही।

मैं इस कृति का मूल्याङ्कन लिखने बैठा हूँ पर आरम्भ में ही अपनी प्रशंसा से अभिभूत उक्तियों से मैं आपको इस भ्रम में नहीं डालना चाहता कि मूल्यांकन केवल मात्र प्रशंसा परक है। पर बाबू वृन्दावन दास के व्यक्तित्व में और इन निबन्धों में व्यक्त चिन्तनाओं में इतना पारदर्शी सारल्य एवं सुस्पष्टता है कि उपरोक्त कथन के बिना मूल्यांकन आरम्भ करना विनम्र बाबू जी के अन्दर छिपे साहित्यकार के प्रति अन्याय होता। अस्तु।

इस कृति में बाबू जी के सांस्कृतिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, अतीत गौरव तथा सामाजिक विषयों के अतिरिक्त साहित्यकारों के संस्मरण और विविध विषयों पर लिखे गये निबन्धों का सग्रह है। इनमें कई निवन्ध तीस वर्ष पहिले ही 'विशाल भारत', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' आदि में प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ निबन्ध बिल्कुल नये हैं और कुछ बीच की अवधि के। पर प्राचीन निबन्धों का मूल्य भी अभी तक इसलिये कम नहीं हुआ कि ये हमारी प्राचीन भारतीय सस्कृति के परिचायक हैं और वर्तमान की दृष्टि से प्राचीन पद्धतियों की परीक्षा के सूचक हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस सम्पूर्ण कृति को पढ़ने पर यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि लेखक अपने पार्श्ववर्ती सम सामयिक जीवन की अवस्थाओं के प्रति संवेदनशील है, अपने अतीत के प्रति अत्यन्त विश्वस्त एवं गौरवमयी भावनाओं से परितुष्ट है और उसके नवनीत को छान कर नये समाज के निर्माण के लिए अपने स्पष्ट निष्कर्ष देने को उत्सुक है। बुराई को प्रगट करने में उसे झिझक एवं सङ्कोच नहीं है। अच्छाई का उद्घोष करने में उसे आगापीछा सोचने की फुरसत नहीं है। भाषा सरल प्रवाहमयी एवं विचारों को सहज क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ है। विषय का निरूपण करते हुए विद्वत्ता या पाण्डित्य दिखाने की प्रकृति कहीं भी नहीं है प्रत्युत पुराने ग्रंथों से विषय को सरल हिन्दी में ज्यों का त्यों उतार देने की चेष्टा सब जगह दृष्टिगत होती है। पर यह सोद्देश्य है। लेखक की यह आकांक्षा है कि हिन्दी का साधारण विद्यार्थी और पाठक अपने अतीत के भन्डार में छिपे हुए रत्नों को सहज ही पहचान सके, उन गौरवमयी उपलब्धियों को प्रशंसात्मक दृष्टि से देख सके और फिर उनका अनुकरण करके अपने वर्तमान जीवन को उन्नत बना सके। यह बात इन सारे निबन्धों को पढ़ जाने पर स्वतः स्पष्ट हो जाती है। अतः इन निबन्धों में आपको अनेक जानकारी से भरे हुए तथ्यों का उल्लेख मिलेगा, पुरानी बातों का नई परिस्थितियों में क्या महत्व है इसका विवेचन मिलेगा और एक सुलझे हुए विचारवान मनीषी व्यक्ति का अत्यन्त उपयोगी सत्परामर्श मिलेगा, जिसमें विद्वत्ता के दम्भ का सर्वथा अभाव होने के कारण हृदय-ग्राहिता का विशेष गुण सर्वत्र परिलक्षित है।

आरम्भ में साँस्कृतिक विषयों पर स्वामी हरिदास तक ग्यारह निबन्धों का संग्रह है और इस खण्ड के अन्तिम दो निबन्धों में समसामयिक समस्याओं में लेखक के सद्विचार उपरोक्त परि-प्रेक्ष्य में विवेचित हैं।

पिछले चार पाँच हजार वर्षों से हिन्दू संस्कृति के महान् ग्रंथरत्न ऋग्वेद के काल से लेकर आज तक जिस बौद्धिक विकास का परमोत्कर्ष भारतीय जीवन को समुन्नत बनाये रहा उसकी ऐतिहासिकता से इस निबन्ध संग्रह का आरम्भ होता है। लेखक के निबन्ध से निम्न उद्धरण उसकी मान्यताओं को स्पष्ट करेंगे।

इसके (प्राचीन आर्य संस्कृति के) चार पाँच हजार या इससे भी अधिक वर्षों के निरन्तर विकास की ओर लक्ष्य करके प्रसिद्ध प्राच्य विद्वान् एवं विचारक मैक्समूलर लिखते हैं, "अर्वाचीन हिन्दू विचारधारा का सम्बन्ध प्राचीन विचारधारा से तीन हजार वर्ष पुराना है।" उन्होंने सन् १८८२ ई० में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में दिए हुए अपने भाषण में कहा था—

"प्रकृति की निधि, शक्ति और सौन्दर्य से युक्त यदि विश्व में हम किसी देश को ढूंढें तो वह पृथ्वी पर स्वर्ग के रूप में निस्संदेह भारत है। अगर मुझ से पूछा जाय कि किस देश के आकाश के नीचे मानवीय मस्तिष्क का अनुपम विकास हुआ है, जीवन की महानतम समस्याओं पर सर्वाधिक विचार और मनन हुआ है और उसका हल भी निकला है तो मैं कहूँगा कि वह भारत है।" पृष्ठ संख्या २। फिर प्रोफेसर मैकडानल की सम्मत्ति दी गई है—

"भारतीय साहित्य एवं संस्कृति का महत्व उनकी मौलिकता में है। जब यूनानियों ने ईसा से ४०० वर्ष पूर्व उत्तर पश्चिम मे आक्रमण किये तब तक भारतीयों ने अपनी संस्कृति स्थिर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करली थी। संसार की कोई और जाति इस प्रकार तीन चार हजार वर्ष तक निरन्तर धर्म, साहित्य और संस्कृति के विकास का दावा नहीं कर सकती।"

भारतीय संस्कृति की प्राचीनता, मौलिकता और महत्ता के उपरोक्त निदर्शन से इस कृति का आरम्भ होता है जो उस संस्कृति के और तज्जनित समाज एव साहित्य के निगूढ़ भण्डार से उपयोगी विचार-सरणि एवं मान्यताओं को निष्पादित करने की ओर अग्रसर होता है। इस निदर्शन का उपयोग हमारे सांस्कृतिक पुनरुत्थान एवं सामाजिक, राजनैतिक चेतना के पुनर्नवीकरण द्वारा हमारे जीवन को अधिक सुखी, समृद्ध एवं उत्कृष्ट बनाने के लिए हो यही उन निबन्धों का आग्रह है। हमारी आस्था को दृढ़ आधार देने का यह सफल प्रयास है इसमें सन्देह नहीं है। सत्संग पर एक तीखा प्रहार देखिये—

'खेद के साथ लिखना पड़ता है कि आजकल दम्भ की मात्रा प्रत्येक कार्य में बहुत बढ़ गई है। आजकल के सत्सङ्गी भी प्रायः अधिकांश (सब नहीं) दम्भी हैं तथा स्वार्थ-चिन्तन में रत रहते हैं। विभूति रमा ली, गीता के दो चार श्लोक रट लिये,उल्टा सीधा उनका अर्थ समझ लिया, रामायण की कुछ चौपाई अर्थ समेत कण्ठस्थ करलीं और समझने लगे अपने को मुनि, मुनि भी कैसे भृगु मुनि (कम नहीं) जिन्होंने ठेठ भगवान के वक्षस्थल पर पद प्रहार किया था। जरा ध्यान दीजिये, जब वे अपने को भृगु मुनि ही समझ बैठे हैं तो सद्ग्रस्थियों को तो वे क्या समझेंगे।' पृष्ठ १६।

इस करारे प्रहार की शैली अत्यन्त सशक्त है। फिर लेखक के उपयोगी विचार भी बहुत स्पष्ट हैं—

'सत्सङ्गियों में परस्पर मानापमान बिचार घृण्य हैं, दम्भरहित प्रेमपूर्ण वर्तात्र होने की आवश्यकता है। तर्क और शङ्काओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इनको शान्तिपूर्वक निवारण करके सच्चे सिद्धान्त निश्चित करने चाहिए। इसी से सत्सङ्ग का फल प्राप्त होगा।' पृष्ठ १७।

लेखक मथुरा वासियों के दायित्व के प्रति सजग है—

'हम मथुरा वासियों का भी जिनको भगवान को जन्मस्थली में उत्पन्न होने का गौरव प्राप्त है, एक विशेष दायित्व है। लोग दूर-दूर से इस पुण्य भूमि में दर्शन करने और उसकी रज अपने मस्तक पर चढ़ाने आते हैं। वे यहाँ के निवासियों में कुछ विशेषता देखना चाहते हैं। यदि उन्हें पतन के चिन्ह लक्षित हों तो यह हमारे लिए बड़े लज्जा की बात है।...इस पुण्य भूमि में हमारा जन्म एक वरदान है, हमे उसे सार्थक करना है।' पृष्ठ १९।

"लिंग पुराण और भगवान शिव" में सृष्टि की उत्पत्ति एवं प्राचीन भारतीय स्थापनाओं पर प्रकाश डाला गया है। इस पुराने ज्ञान को हिन्दी के साधारण पाठक तक सुस्पष्ट शैली में पहुँचाने में लेख समर्थ है। गीता और श्रीकृष्ण, वेदव्यास और स्वामी हरिदास की महता और उनकी अध्यात्म दृष्टि के प्रति हमें जागरूक करने में तद्विषयक निबन्ध पूर्णतया समर्थ हैं। धर्मों की उपयोगता के विषय में डा० भगवानदास के विचारों के साथ ही उपयोगी विवेचन लेख में सुलभ है। इन निबन्धों में पूर्ण अध्ययन की प्रामाणिकता, ऐतिहासिक दृष्टि की समीक्षा एवं सोद्देश्य निष्कर्षों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की स्पष्टता एक साथ अनुभूत है । अल्पशिक्षित एवं विद्वान् दोनों के लिये इसमें विचार की पर्याप्त सामग्री है । जहाँ गवेषणा से आकृष्ट होने वाले विद्वानों को केवल यहाँ जानकारी भर मिलेगी वहाँ साधारण पाठक को अपने मानसिक धरातल को ऊपर ले जाने के लिए पर्याप्त चिन्तन सामग्री उपलब्ध होगी । अन्वेषक को अत्यन्त विचारोत्तेजक दिशादर्शन होगा ।

एक बात स्पष्ट है । लेखक के उर्वर मस्तिष्क में किसी विशेष ग्रंथ के अध्ययन के बाद या किसी विशेष समस्या पर चिन्तत के बाद जो विचार और निष्कर्ष उसके मन में आये उन्हें उसने तुरन्त लिपिबद्ध कर दिया है । इन निबन्धों में अपनी बात कहने की ही सीमा है । विषय का सांगोपांग विवेचन या तद्विषयक समस्त सामग्री का अवलोकन करके एक शोध-प्रबन्ध जैसा लेख प्रस्तुत करना लेखक का मन्तव्य नहीं रहा । अतः समाज, संस्कृति और साहित्य के लिए एक उपयोगी चिन्तक की विचारधारा एवं उसके द्वारा अतीत सामग्री का संक्षेप में निरूपण यही इन लेखों की विशेषता है जो समाज के सभी अंगों और साहित्य के सभी प्रकार के पाठकों के लिए अपनी एकनिष्ठता एवं प्रामाणिकता के कारण समान रूप से उपयोगी है । अध्ययन के नवीन क्षेत्र हमारी ज्ञानपिपासा को परितृप्त करने में समर्थ हैं ।

गीता, राम कृष्ण, स्वामी हरियास सभी के मूल्यांकन में लेखक की प्रवृति आस्तिक महत्व के प्रतिपादन की ओर रही है । हिन्दू संस्कृति और समाज को उन्नत एवं गौरवशाली बनाने में उनका क्या योगदान रहा यही लेखक का अन्वेष्टव्य है । कतिपय उद्धरण इस बात को पुष्ट करेंगे—

उसे (प्रजा को) गीता का कर्मयोग और आत्मा की अभरता वाले सिद्धान्त अधिक रुचिकर प्रतीत हुए । अहिंसा के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते रहने की अपेक्षा रणक्षेत्र में शत्रु के प्राण-हनन की नीति जनता के हित मे थी । पृष्ठ ३२ ।

'भिक्षुणियों की संस्थाओं में अनाचर फेल गए । राजा लोग अपने प्रधान कर्तव्य प्रजा-पालन और देश की सुरक्षा के प्रति उदासीन होकर सिर मुंडा कर सन्यासियों के मध्य बैठ कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझने लगे ।—उन्होंने (शकों ने) निरीह जनता पर बड़े क्रूर अत्याचार किये । जनता उन क्रूरताओं से त्रस्त हो उठी । उसने अपने धर्म शास्त्रों से प्रेरणा ली । वह एक ऐसे राजा की कल्पना करने लगी जो युद्ध में शत्रुओं को परास्त कर दिग्विजय करे और अश्वमेध यज्ञ करके अपनी वीरता की धाक जमा दे । श्रीमद्भगवत्गीता के कर्मयोग का आह्वान किया जाने लगा । बुद्ध और बोधिसत्वों की प्रतिमाओं के स्थान पर भगवान् वासुदेव की असंख्य मूर्तियां प्रतिष्ठापित कर उनकी पूजा होने लगी । जनता की दृष्टि में श्री कृष्ण आदर्श राजनीतिज्ञ, आदर्श तत्त्वज्ञानी और आदर्श योद्धा थे । उनके द्वारा प्रतिपादित गीता ज्ञान जगत-कल्याण का मुख्य साधन समझा जाने लगा ।' पृष्ठ ४०, ४१ ।

'उसके (मौर्य सम्राट वृहद्रथ के) सेनापति पुष्यमित्र शुङ्ग ने समस्त सेना और अनेक प्रजाजनों के सामने राजा का शिर काट लिया और भागवत धर्म के आदर्शों पर राज्य की स्थापना की ।…शत्रुओं को खदेड़ने के लिए राजाओं ने धर्मशास्त्रों से प्रेरणा और जनता से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चेतना ग्रहण की और वे शत्रुओं को दमन करने के दुष्कर कार्य में सफलता प्राप्त कर सके। यतो धर्मस्ततो जय: । पृष्ठ ४१ ।

'रामायण और महाभारत दोनों ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं कि श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों अवतारी पुरुषों ने अनेक उपायों से सब जातियों (पांण्डू, श्रीड, द्रविड, काम्भोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीनी, किरात, धनद, खश) का आर्यीकरण किया। कभी इन जातियों को विधर्मी नहीं होने दिया, अनेक अनुलोम विवाहादि को धर्म सङ्गत करके जातियों में एकवंशीयता स्थापित की।' पृष्ठ ३६ ।

उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा जिज्ञासु लेखक पुराने धर्म ग्रन्थों के सर्जक समाज की भीतरी उथल पुथल में पैठकर तत्कालीन सामाजिक आवश्यकताओं और उनका समाधान करने वाले तत्वों का अनवरत खोजी है और उसकी यह दृष्टि सारे हिन्दू वाङ्मय को ऐतिहासिक, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समग्र दृष्टि से देखकर जीवन, धर्म, साहित्य संस्कृति के उन चिरन्तन मूल्यों को खोज कर हमारे समक्ष उपस्थित करना चाहती है जो हमारी संस्कृति के गौरव हैं और हमारी धार्मिक स्थापनाओं की आधारशिला हैं। उसकी यह ऐतिहासिक अन्वेषी दृष्टि साहित्यिक निबन्धों में दृष्टिगत है। इन निबन्धों में संक्षेप में पूरे हिन्दी साहित्य के इतिहास को उपरोक्त भारतीय संस्कृति आलोड़न की दृष्टि से एक नई ताजगी के साथ उपस्थित किया गया है जो छात्रोपयोगी तो है ही विद्वानों के लिए विचारोतेजक भी है। मुस्लिम कालीन बारहवीं शताब्दी के बाद के इतिहास के काल विभाजन के नामों पर टिप्पणी करते हुए हिन्दूत्व का स्वाभिमान फिर जागरूक हो उठा है। इस काल की हिन्दू साहित्य तथा धर्म की उपलब्धियों का महत्व लेखक ने सशक्त भाषा में स्थापित किया है।

गुप्तकाल के गौरव का प्रामाणिक चित्रण हमें प्रसन्नता प्रदान करता है। कौटिल्य काल के गुप्तचरों का विवरण हमारे राज्यतन्त्र की विशद व्याख्या करता है, हमें अपने अतीत के प्रति आस्थावान् बनाता है। 'तापस', 'सीता', सीताध्यक्ष', 'महादेवी' आदि शब्दों की तकनीकी व्याख्या हमें साहित्य में उनके नये अर्थ देखने को प्रेरित करती है। तुलसी के 'तेहि अवसर एक तापस आया' में तापस किसी गुप्तचर के लिए तो नहीं प्रयुक्त हुआ यह शङ्का होने लगी। पर वहां तो वह भक्त ही था। 'सीता' जहाँ जगन्माता का ध्यान कराती है वहां (कृषि उत्पादकता) मां के अन्नपूर्णा स्वरूप की ओर भी ध्यान आकृष्ट करने लगी। महादेवी नाम बहुत प्रचलित है। मेरी मां का नाम महादेवी था, मेरी एक संबंधिनी का नाम भी यही है, हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री का नाम भी यही है। महादेवी शब्द साम्राज्ञी के लिये गुप्तकाल में प्रयुक्त होता था। यह बाबू जी के विवरण (पृष्ठ १८६) से स्पष्ट होता है। अतः इस नाम का प्रचलन गुप्तकाल के इस तकनीकी अर्थ के कारण समाज में हुआ यह स्पष्ट होता है। फिर महादेवी शब्द को गुप्तकाल में इसलिए महत्व दिया गया कि वे देवी देवताओं के उपासक थे। वैष्णव धर्म के तत्तकालीन उत्कर्षों की भी यह द्योतक है।

साहित्यिक व्यक्तियों के संस्मरण व्यक्तिगत सम्बन्धों की आत्मीयता और मधुरता के भाव से ओतप्रोत होने के कारण बहुत आकर्षक बन पड़े हैं। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी के मन पर वे सौमनस्य की छाप छोड़ते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समग्र दृष्टि से पुस्तक में हमारी साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक समस्याओं, समाधानों एवं उपलब्धियों तथा हमारी संस्कृति के शाश्वत मूल्यों के अन्वेषण एवं प्रस्थापन का पर्याप्त प्रयास दिखाई देता है। भाषा सरल, सुस्पष्ट एवं प्रवाहमयी है। यह छात्रों एवं विद्वानों के लिए समान रूप से आकर्षक एवं विचारोत्तेजक है। पुस्तक कुछ कम मूल्य पर अगर उपलब्ध कराई जा सके तो हिन्दी संसार का हित होगा क्योंकि आजकल परीक्षापयोगी व बाजारू साहित्य ने हिन्दी के आंगन में कीचड़ भर दी है। बाबू जी जैसे प्रबुद्ध लेखक को यह ज्ञानपूर्ण पुस्तक जो इतनी सरल अभिव्यक्ति के साथ लिखी गई है इस कीचड़ में स्वतन्त्र चिन्तन के कमल सरीखी हैं जिसकी सुरभि सब तक पहुँचनी चाहिये।

ब्रजवार्ता (समीक्षा)

(श्री श्यामसुन्दर खत्री, ३ ई. नन्दीस्ट्रीट, कलकत्ता)

ब्रजवार्ता—लेखक श्री मोहनलाल शर्मा, एम० ए० (हिन्दी, राजनीति विज्ञान) एल० टी०, साहित्य रत्न; प्रकाशक—श्री सोमदत्त शर्मा, साहित्य रत्न, ब्रजभाषा प्रकाशन, कोसीकलाँ (मथुरा) उ० प्र०; पृष्ठ संख्या—१०८; मूल्य – तीन रूपये।

ब्रज-वार्ता ब्रज के साहित्य संस्कृति, पर्व, खेती के गीत, सारङ्गा सदा ब्रज की लोक गाथा, दो अज्ञात कवि, ब्रजत्व के पुनरुत्थान की दिशा आदि विषयों पर विद्वद्वर श्री मोहनलाल शर्मा के समय-समय पर ब्रजभाषा में लिखित निबन्धों का सङ्कलन है। इसमें बीच-बीच में और अन्त के छै-सात पृष्ठों में उनकी फुटकर कविताएँ भी हैं।

शर्मा जी की ब्रजभाषा-गद्य की शैली वास्तव में बड़ी मनोहारिणी है। उपयुक्त संस्कृत तत्सम और तद्भव शब्दों के यथावत् रूपों से अलंकृत उनकी मुहाविरेदार ब्रजभाषा विशिष्ठ रूप से मधुर, सरस, स्वच्छ और प्राञ्जल है। पुस्तक की भूमिका में श्रद्धेय बाबू वृन्दावन दास ने शर्मा जी की ब्रजभाषा गद्य की शैली की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए एक बात बड़े मार्के की कही है—

"वास्तव में विभिन्न क्षेत्रों से अनेक प्रकार से बोली जाने वाली भाषा का, माधुर्य, सौन्दर्य और उपादेयता की दृष्टि से स्थिरीकरण करना अपने आप में एक महान् कार्य है।"

इसमें सन्देह नहीं कि विभिन्न ब्रजभाषा-शैलियों में रचित पद्य और गद्य साहित्य की बहुमूल्य सम्पत्ति हमारे गौरव की धरोहर है, जिसका संरक्षण, अध्ययन, विवेचन और प्रचार हमारा अवश्यमेव कर्तव्य है। परन्तु अब यदि समय की गति के साथ चलना है, तो ब्रजभाषा की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शैली को परिमार्जित करना और उसका एक मान्य मानकं (स्टैंडर्ड) नियोजित करना परम आवश्यक है। यही नहीं, गद्य और पद्य की भाषा में एकरूपता लाने की भी आवश्यकता है। गद्य और पद्य की भाषा का एक ही मानकं होना चाहिए। इस पुस्तक के पारायण से स्पष्ट है कि शर्मा जी ने इस समयोचित आवश्यकता को महसूस किया है और इस दिशा में मार्ग प्रदर्शन किया है। आशा है कि ब्रजभाषा के साहित्यकार इस ओर ध्यान देंगे। विषय गहन तो है ही।

ब्रजवार्ता के निबन्ध भावमय, सारगर्भित और उच्च विचारों से परिपूर्ण हैं। ब्रज की होली पर कई लेख हैं, जिनमें नन्दगाँव, बरसाने तथा अन्य स्थलों में होली कैसे खेली जाती है, गान-वाद्य की कैसी धूम रहती है,साखी, चौपाई आदि लोक-काव्य की कैसी अजस्र धारायें प्रवाहित होती हैं, नर-नारी किस तरह उल्लास, उत्साह, उमङ्ग और आनन्द में मत्त हो जाते हैं—आदि बातों का अत्यन्त सरस, मधुर, विशद और ब्यौरेवार वर्णन है। साखी, चौपाई आदि के विवेचन के साथ इस रसरङ्ग मय पर्व के अत्यन्त आकर्षक शब्दचित्र प्रस्तुत किए गये हैं। शर्मा जी के कथनानुसार "होरी में ब्रज और ब्रज में होरी एक रूप ह्वै जाय है।" भादों मास के पर्वों पर भी दो लेख हैं, जिनमें मास गत पर्वों की विशेषतायें और उनके मनाए जाने की विधियों का सुन्दर वर्णन है। श्री कृष्ण जन्माष्टमी के भक्ति भावना पूर्ण और आनन्दमय समारोहों का वर्णन विशेष उल्लेखनीय है। "ब्रजभाषा में लोककाव्य"—शीर्षक लेख में लोककाव्य के जो अवतरण दिए गए हैं, वे वास्तव में बड़े प्राणमय, पुष्ट और समृद्ध हैं। लेखक के कथनानुसार ये लोक काव्य "नेह-विकसित भोरे ब्रजवासीन की उन मनोहारिणी भावनान कौ सजीव सरूप है। जामें सावन और फागुन, बरसा और बसन्त, बधाई और बिदाई तथा जनम और व्याह अपने रूप में अपनी अपनी क्षेत्रीय व जातिगत विशेषतान के सङ्ग मुखरित ह्वै उठै हैं।" एक लेख में सारङ्गा सदाब्रज की सुप्रसिद्ध प्रेमकथा जो आज भी ग्रामीण अंचलों में बहुत रुचिपूर्वक गाई और सुनी जाती है, बड़े सुन्दर ढङ्ग से वर्णित की गई है। एक लेख में ब्रजभाषा के दो अज्ञात कवि—नागरिया जी और बिहारीलाल जी का और उनकी कृतियों का परिचय देते हुए लेखक ने ब्रजभाषा की लुकी-छिपी और लुप्त प्राय पुरानी साहित्य-सम्पदा के संरक्षण और उद्धार पर बहुत जोर दिया है। "खेती के गीत"—शीर्षक लेख बहुत ही उत्कृष्ट और प्रभावशाली हैं। लेखक ने प्रारम्भ ही में लिखा है—"वास्तव में धरती सच्ची माँ है और किसान धरती के सांचे पूत। खेती उनकी तपस्या को फल है।" वर्षा-शीत-ताप के कष्टों को सहर्ष झेलने वाले परिश्रम शील कृषक कृषि-कार्यों को करते हुए समय-समय पर जो मनोमुग्धकर गीत गा-गा कर अपने घोर परिश्रम में उल्लसित होते हैं तथा अपने मन के आनन्द को व्यक्त करते हैं, उनके अवतरण दिए गये हैं और उनके हृदयहारी भाव समझाए गए हैं। शर्मा जी ने यथार्थ ही लिखा है कि "खेत उनकी कर्मशाला हैं और खेती के गीत हैं—उनकी आह्लादिनी प्रेरणा।" इस सम्बन्ध में मैं शर्मा जी के भावपूर्ण मन्तव्य को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता—

"या प्रकार खेती के गीत मानों भारतीय आत्मा की सच्ची अभिव्यक्ति हैं। इन ग्राम गीतन में ग्राम संस्कृति के शुद्ध स्वरूप को दर्शन होय है। इनमें श्रम और सौन्दर्य को सुन्दर समन्वय है। ऋतून की कठोरता ते तपतो भयो श्रमसील शरीर और भावन की सुकोमलता ते व्यंजित गीतमय हृदय ही इन खेती के गीतन अमर गायकन कौ वैशिष्ट्य है। जब ये गुनगुनामें हैं,तो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुक्त पवन इन्हें स्वर देय है, विहगावलि इनते स्पर्धा करै है और धरती कौ एक-एक कण रागात्मक ह्वै उठे है। कर्म रागमय और राग कर्ममय ह्वै जाय है, मानों धरती स्वयं गाय रही हो।"

"ब्रजत्व के पुनरुत्थान की दिशा"—नामक निबन्ध भी बहुत महत्वपूर्ण है। ब्रजभाषा, गद्य-पद्य-साहित्य, रङ्गमंच, सङ्गीत नृत्य आदि कलाओं के संरक्षण, प्रसार और उन्नयन के लिए क्या-क्या प्रयास हुए हैं और उनकी तीव्र प्रगति के लिए क्या-क्या करना चाहिए—इसकी सम्यक् विवेचना इस लेख में की गई है। वास्तव में समय की गति के अनुसार योगेश्वर श्रीकृष्ण की जन्मस्थली ब्रजभूमि की साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सर्वाङ्गीन उन्नति के लिये अनवरत प्रयत्न करना परम आवश्यक है। इसकी सफलता से न केवल ब्रजभूमि समृद्ध होगी, बल्कि भारत का गौरव बढ़ेगा। परन्तु ब्रजमण्डल को एक पृथक राज्य या प्रदेश में परिणत करने की परिकल्पना कदापि वांच्छनीय नहीं है। आज कल हमारे देश के राजनीतिक आन्दोलन कितने भयानक और दुष्परिणामपूर्ण हो रहे हैं—यह किसी से छिपा नहीं है। यदि ब्रजमण्डल ऐसे किसी आन्दोलन के चक्कर में पड़ गया तो इसकी सारी मधुमयी सुख-शान्ति को जिह्वा-ललन-भीषण राजनीति भक्षण कर लेगी। इस तथ्यपूर्ण चेतावनी को शर्मा जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में कितनी कोमलता से व्यक्त किया है—

"कछू महानुभाव वाकूँ (ब्रज कूँ) राजनीतिक इकाई के रूप में सङ्गठित करिबे कौ सपनौ सौ देखिबे लगे हैं। पर या विषय में हमें बड्यो ही सावधान रहनौ परैगौ कि कहूँ राजनीति की रसना ते ब्रज कौ शोषण नाय ह्वै जाय। ब्रजभाषा-भाषी क्षेत्र निःसन्देह एक सङ्गठित अन्तर्प्रदेश है, परन्तु या वखत भारतीय राजनीति की जैसी धारा बह रही है, वाकूं देखिकें यही विचार अधिक समीचीन लगै है कि ब्रज के सांस्कृतिक सामाजिक व साहित्यिक पक्ष कूँ ही अधिक पुष्ट कियौ जाय और राजनीतिक आन्दोलन कूँ या सों जितनौं ह्वै सकै, दूर ही रख्यौ जाय।"

ब्रजवार्ता से अन्य सभी निबन्ध, जिनका उल्लेख यहाँ स्थानाभाव के कारण नहीं हो सका है, अपना अपना अलग महत्व रखते हैं। पुस्तक में सङ्कलित शर्मा जी की कवितायें भी रससिक्त और भाव-भीनी हैं। आजकल छन्दों के नियम-पालन की परवाह नहीं की जाती। अतएव इस सम्बन्ध में कुछ न कहना ही श्रेयस्कर है।

शर्मा जी सिद्ध हस्त लेखक हैं। उनके लेख काव्य का सा आनन्द देते हैं हुए मर्म स्पर्श करते हैं। ब्रजवार्ता के प्रत्येक लेख में उनका ब्रज के प्रति अनन्य अनुराग दृष्टिगोचर होता है। सभी द्रष्टियों से यह पुस्तक आधुनिक ब्रजभाषा-साहित्य का एक बहुमूल्य रत्न है। आशा है कि इसका समुचित स्वागत और समादर होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोहा सार संग्रह और उसका संग्रहकार

(श्री वेदप्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर)

राजस्थानी, गुजराती, व्रजभाषा आदि भाषाओं के साहित्य में 'दोहा' बहुत ही प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय छन्द हैं। इन भाषाओं को यह छन्द अपभ्रंश भाषा से रिक्थ रूप में प्राप्त हुआ हैं। तब से लेकर अब तक बराबर यह छन्द प्रचलित है। इस छोटे से छन्द में एक पूरी बात कह देने की क्षमता है। इसीलिये इसका प्रचार भी अत्यधिक हुआ।

छन्द-ग्रंथों में दोहा-छन्द के अनेक भेद-प्रभेद बतलाए गए हैं। जैन कवि राजसोम ने अपने 'दोहा चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ में इसके ४४ भेद, उनके लक्षण तथा उदाहरण दिये हैं। हिन्दी की उप-भाषा राजस्थानी में तो दोहा-दूहे सबसे अधिक पाए जाते हैं। सैकड़ों कवियों ने दोहा बनाए, जिनके उल्लेख ग्रंथांतरों में मिलते हैं, उनमें से कुछ प्राप्त हैं, पर बहुत से नष्ट हो गए हैं। फिर भी लगभग बीस-बाईस हजार दोहे तो बड़ी सुगमता से संग्रह किये जा सकते हैं। इस दिशा में कुछ प्रयास हुआ भी है। व्रजभाषा, राजस्थानी आदि में दोहों के अनेक संग्रह भी मिलते हैं, जिनमें से 'सप्तसई (सतसई) संग्रह' सात सौ दोहों का संग्रह तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। हाल रचित गाथा सतसई से इनकी परम्परा चली आ रही है। सात सौ दोहों से अधिक दोहों के संग्रह ग्रंथ भी प्राप्य हैं। ऐसे ही एक विशाल दोहा संग्रह ग्रंथ और उसके संग्रहकर्ता के सम्बन्ध में यहाँ विचार किया जा रहा है।

२५ जून १९६७ के 'नवभारत टाइम्स-रविवारीय परिशिष्ट' में दारा शिकोह कृत 'दोहा सार संग्रह' शीर्षक एक लेख कैप्टिन शूरवीर सिंह जी का प्रकाशित हुआ था। उक्त लेख में कैप्टिन साहब ने तथा कथित दारा शिकोह कृत 'दोहासार संग्रह' को हिन्दी-साहित्य की एक नयी खोज बतलाते हुए लिखा था कि—"मेरे संग्रह में दारा कृत दोहासार संग्रह ग्रंथ है, जो अद्यावधि अज्ञात होते हुए हिन्दी-साहित्य का एक विशेष महत्त्व पूर्ण ग्रंथ भी है।[१]" किन्तु श्री शूरवीर सिंह जी को ज्ञात होना चाहिए कि तथा कथित दारा कृत 'दोहा सार संग्रह' हिन्दी-संसार के लिए न तो अद्यावधि अज्ञात ग्रंथ है और न ही हिन्दी-साहित्य के लिये नयी खोज है। हिन्दी-संसार उक्त संग्रह ग्रंथ से पर्याप्त समय से परिचित है। उन्हें यह भी मालूम होना चहिए कि इस संग्रह ग्रंथ के रचयिता अर्थात् संग्रहकार के विषय में भी विचार हो चुका है। कैप्टिन साहब ने लेख प्रकाशित कराने से पूर्व इस विषय में हिन्दी के इतिहास-ग्रंथों, हस्तलिखित ग्रथों की खोज-रिपोर्टों तथा पत्रि-काओं को टटोलने की बिलकुल भी चेष्टा नहीं की। यदि वे इनकी छान-बीन करने का प्रयास करते तो वस्तुस्थिति से अवगत हो जाते और ऐसा दावा करने का साहस न करते।

दारा द्वारा कराये गए एक महत्त्व पूर्ण संग्रह की प्रसिद्धि हिन्दी-जगत् में अवश्य है और दारा के साहित्य-प्रेम के कारण इस प्रसिद्धि पर संदेह भी नहीं किया जा सकता। काशी नागरी

१—नवभारत टाइम्स, रविवारीय परिशिष्ट, २५ जून १९६७, पृ० ५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रचारिणी सभा की प्रथम त्रैवार्षिक खोज-रिपोर्ट में दारा द्वारा कराये गए संग्रह का 'सार संग्रह' नाम से एक स्फुट दोहों के संग्रह का सर्व प्रथम स्पष्ट उल्लेख है।[1] मिश्र बंधुओं ने अपने प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ 'मिश्र बंधु विनोद' में तथा कथित दारा द्वारा कराये गये 'सारसंग्रह' तथा 'दोहा स्तव संग्रह' का उल्लेख किया है और रचना-काल दारा के वध के ६ वर्ष पूर्व का सं० १७१० विक्रमी दिया है।[2] दोहा स्तव संग्रह वस्तुतः दोहा सार संग्रह का विकृत रूप है। 'सार' को 'स्तव' कर दिया है। उपर्युल्लिखित दोनों ग्रंथ एक ही हैं। पं० कृष्ण बिहारी मिश्र ने अपने एक लेख में दारा को हिन्दी-प्रेमी सिद्ध करते हुए उसके एक संग्रह का उल्लेख किया है।[3] डा० रामकुमार वर्मा ने भी अपने साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में दारा कृत 'सार संग्रह' का उल्लेख किया है, परन्तु रचना-काल भूल से स० १७१० के स्थान पर सं० १७०७ दे दिया है।[4]

सं० १७९४ में लिखित और सं० १७१० में संगृहीत दारा के कराये गए संग्रह ग्रंथ की एक प्रति डा० भवानी शङ्कर जी याज्ञिक को सं० १९९० के लगभग प्राप्त हुई थी। याज्ञिक जी ने अपने विचारों को विभिन्न पत्रिकाओं व्यक्त किया था और इस सम्बन्ध में एक विस्तृत लेख 'साहित्य-सन्देश' में भी प्रकाशित कराया था।[5] डा० साहब काशी नागरी प्रचारिणी सभा की बलदेव दास बिड़ला ग्रन्थ माला के लिए 'दोहा सार संग्रह' का सम्पादन भी कर रहे थे। उनकी मृत्यु हो जाने के कारण मैं कह नहीं सकता कि उक्त ग्रन्थ का सम्पादन-कार्य पूर्ण हुआ या नहीं।

डा० साहब ने दोहा सार संग्रह के संग्रहकर्ता के सम्बन्ध में भी अपने लेख में विचार किया है। श्री याज्ञिक जी ने अपने लेख में सिद्ध किया है कि—"यह विशाल दोहा संग्रह वास्तव में दाराशाह द्वारा कराया गया था।" किन्तु वे यह स्पष्ट नहीं कर पाए कि इस सग्रह का संग्रह-कर्ता कौन है ? इस विषय में मैंने अपने विचारों को 'साहित्य-सदेश' में प्रकट किया था।[6] उन विचारों को यहाँ भी व्यक्त कर रहा हूँ। दारा शाह को स्वयं याज्ञिक जी ने भी संग्रहकार नहीं माना है। वे लिखते हैं—"पुष्पिका में 'दोहा सार कढाइयौ' से स्पष्ट है कि दाराशाह ने इसे स्वयं नहीं किया, किन्तु सार तत्त्व अन्य पण्डितों से कढ़वाया था। परन्तु इसी पुष्पिका में उसे दाराशाह

---

(१) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पहला भाग काशी ना० प्र० सभा, पृ० ६५ तथा १७६।

(२) मिश्र बंधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४५८ (सं० ३८२) द्वितीय संस्करण। 'विनोद' के प्रथम संस्करण में दोहा सार सग्रह के विषय में लिखा है—"अपने सार संग्रह में दारा कहता है कि हिन्दी कविता का एक संग्रह तैयार करने के निमित्त तथा फारसी में इसका अनुवाद करने के निमित्त उसने अनेक व्यक्तियों को नौकर रखा था।"

(खण्ड १—अध्याय २०—२१, पृ० ६५)।

(३) साहित्य समालोचक, जनवरी १९२५, पृ० ६०।

(४) पृ० ३६ (द्वि० संस्करण)।

(५) वर्ष २२ अङ्क ३।

(६) वर्ष २३ अङ्क ११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृत (करित) बताया है, जो असङ्गत जान पड़ता है। हमारी धारणा है कि यह संग्रह दारा ने न भी किया हो तो भी उसकी देख-रेख में हुआ है।"

दारा शाह ने अपनी देख-रेख में इस संग्रह को किसके द्वारा संग्रहीत कराया था, इसी पर विचार करने की आवश्यकता है। संग्रहकार का नाम अन्तिम दोहे में (जिसमें संग्रह का समय दिया है) और पुष्पिका में क्रमशः 'दिन मनि' और 'श्री मनि पण्डित' दिया है—

"सत्रह, सै दस साल में, प्रफुलित फागुन माहि।
दोहा सार कढ़ाइयौ, 'दिनमनि' दारा साहि ॥"

पुष्पिका—"इति श्री मनि पण्डित दिल्ली दिनेस श्री दारा साहि करित दोहा सार संग्रह सम्पूर्ण समाप्तः ······ ।"

यदि दोहे में आये 'दिनमनि' का सम्बन्ध 'दारा साहि' से लगा लिया जाय तो भी पुष्पिका में उल्लिखित 'श्री मनि पण्डित' का सम्बन्ध किसी प्रकार भी उससे नहीं जुड़ता। अनुमान से 'दिन मनि' और 'श्री मनि पण्डित' एक ही व्यक्ति विदित होते हैं। इस अनुमान का आधार यह है कि खोज की २० वीं त्रैवार्षिक-रिपोर्ट[1] में एक 'पिङ्गल-पीयूष' नामक रचना का उल्लेख है, जिसके रचयिता मुरलीधर हैं। इन मुरलीधर के पिता का नाम 'दिनमनि' था, जो एक धुरंधर ज्योतिषी थे और आगरा में ही रहते थे। अतः हो सकता है कि इन्हीं 'दिनमनि' से 'दारा साहि' ने उक्त संग्रह तैयार करवाया हो। ये 'दिनमनि' अकबर बादशाह के दरबारी परमानन्द शतावधानी के वंशज थे। उस वंश के लोगों में से 'पुरुषोत्तम' शाहजहाँ के और 'मुरलीधर' (दिनमनि के पुत्र) मुहम्मद शाह के दरबार में रहते थे[2]। अतः यह स्वाभाविक है कि 'दिनमनि' भी दारा के दरबार में रहे होंगे।

दूसरे ऐसी परिपाटी भी उस समय थी कि कवि अपने रचित ग्रंथों में ग्रंथ कर्ता के नाम के स्थान पर अपने आश्रय दाता का नाम दे दिया करते थे। ऐसे बहुत से उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस 'दोहा सार संग्रह' नामक ग्रंथ में भी इसी परिपाटी का निर्वाह हुआ प्रतीत होता है। अतः 'दिन मनि' ही इस संग्रह के संग्रहकार ज्ञात होते हैं, जिन्होंने श्लेष रूप में अपने नाम के साथ संग्रह कर्ता के नाम के स्थान पर अपने आश्रय दाता 'दारा साहि' का नाम भी दे दिया है।

सं० १७१० में दाराशाह द्वारा कराये गए इस संग्रह के कई नाम हैं। पुष्पिका के दोहे में इसे 'दोहा सार' बताया गया है। और गद्य में 'दोहा सार संग्रह' दिया है। ग्रन्थ के आदि में 'अथ श्री सार संग्रह के दोहरा लिख्यते' उसका नाम सार संग्रह स्पष्ट है, किन्तु उपक्रम के संस्कृत श्लोक में दोहा सार ही दिया है। 'दूहासार', 'दूहा संग्रह' अथवा 'दोहा सागर' नाम भी सुने जाते हैं।

कैप्टिन साहब को यह भी ज्ञात होना चाहिए कि इस संग्रह ग्रंथ का एक दूसरा संस्करण भी मिलता है। इस द्वितीय संस्करण में रचना-काल सं० १७२० विक्रमी दिया हुआ

---

(१) सं० २००४–२००६; सन् १९४७–४९।

(२) वंश-परम्परा इस प्रकार है—परमानन्द शतावधानी→ कपूरचन्द→ पुरुषोत्तम→ प्रेमराज→ पृथ्वीराज→ दिनमणि→ मुरलीधर।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। यह रचना-काल दारा के वध के चार वर्ष बाद का है। इस संस्करण में दारा अथवा किसी संग्रहकार का नाम नहीं मिलता, किन्तु दोहासार संग्रह के दोनों संस्करणों को देखने से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि दोनों संग्रह ग्रन्थ एक ही हैं। विविध प्रतियों में दो भिन्न रचना-काल, सं० १७१० तथा १७२० का होना एक आश्चर्य का विषय है। संभवतः इसी कारण हिन्दी-जगत् दारा द्वारा कराये गए संग्रह को वास्तविक महत्व न दे सका। दस वर्ष उपरान्त का सं० १७२० वाले संग्रह का अधिकाधिक प्रचार हुआ, क्योंकि इस संस्करण की हस्तलिखित प्रतियाँ बहुतायत से मिलती है[1]। सं० १७१० वाला दारा शाह का कराया हुआ मूल संग्रह भुला दिया गया। वृक्ष की मूल के समान ग्रंथ धूल में छिपा रह गया।

वस्तुतः दोनों संग्रहों के नाम, विषय विभाग, पाठ और दोहों का क्रम एक सा ही है। एक ही ग्रंथ के सं० १७१० तथा १७२० के दो संस्करण हैं। पहला दारा द्वारा कराया हुआ संस्करण और दूसरा १० वर्ष उपरान्त साधारण फेर-फार सहित भिन्न रचना-काल के दोहे वाला सं० १७२० का संस्करण। दूसरा संस्करण पहले से छोटा है। कई दोहे निकाल दिये गए हैं और थोड़े से अतिरिक्त दोहे बढ़ा भी दिये गए हैं। दोनों संस्करणों में पाई जाने वाली साधारण सी असमानता कुछ विशेष महत्व की नहीं है। दोनों संस्करणों में दोहों के साथ कुछ सोरठे भी हैं। उपक्रम के रूप में एक संस्कृत श्लोक है और अन्त में रचना-काल का दोहा। प्रत्येक भाव (विषय) के दोहों की संख्या स्पष्ट रूप से सूचित की गई है, किन्तु कहीं-कहीं गिनने में भूल हो गई है। सं० १७१० वाले संस्करण में ६१ भावों पर रचे गए १७७२ दोहे हैं और सं० १७२० वाले संस्करण में ५४ भावों पर चुने हुए लगभग १७०० दोहों का सङ्कलन है। इस द्वितीय संस्करण की प्रतियों में भी परस्पर अन्तर है। दोहों की संख्या में भी अन्तर है। इस संकरण की विभिन्न प्रतियों में कालान्तर में कुछ दोहे बढ़ाये गये प्रतीत होते हैं। यह संस्करण परिवर्धित तो है ही नहीं, पर संशोधित भी नहीं कह सकते। कुछ संशोधन की चेष्टा अवश्य की गई है।

उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट है कि श्री शूरवीर सिंह जी का दावा निरर्थक है। हां इतनी बात अवश्य उल्लेखनीय है कि सं० १७१० वाले संस्करण की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में कैप्टिन साहब वाली हस्तलिखित प्रति लिपिकाल की दृष्टि से अवश्य प्राचीन है। उक्त प्रति का लिपिकाल सं० १७६७ है।

---

(१) देखिए—हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की विभिन्न खोज-रिपोर्टें तथा साहित्य-संदेश वर्ष १७ अङ्क १२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्र-व्यवहार

मथुरा
१-८-६९

प्रिय सम्पादक जी,

फाल्गुन सं० २०२५ की 'व्रजभारती' में मेरा एक लेख 'बिहारी रत्नाकर में शब्दार्थ सम्बन्धी भूलें' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था, जिसमें मैंने बिहारी के तीन दोहे लेकर शब्दार्थ सम्बन्धी भूलों की ओर हिन्दी के विद्वान् और मुख्यतः व्रजभाषा के मर्मज्ञों का ध्यान आकृष्ट किया था। हर्ष की बात है कि श्री अमृतलाल चतुर्वेदी जी का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने अधिकांशतः उक्त भूलों की ताईद ही की—जैसा कि उनके ज्येष्ठ सं० २०२६ की 'व्रजभारती' में प्रकाशित हुए पत्र से परिलक्षित होता है। श्री चतुर्वेदी जी जहाँ मेरे उक्त दोहों में से दो दोहों के शब्दार्थ से अधिकांशतः सहमत हैं, वहाँ वे एक दोहे से मेरे तथा रत्नाकर जी के किये हुए शब्दार्थों से सहमत नहीं है। वह दोहा है—

लाल, तिहारे विरह की अगनि अनूप अपार।
सरसै, बरसें नीरहू झरहू मिटै न झार॥

इस दोहे में प्रयुक्त 'झर' शब्द का अर्थ मैंने झर लगना अर्थात् झड़ी बांध कर लगातार मेह बरसना किया है और अन्य प्राचीन टीकाकारों ने भी यही अर्थ लिया है, पर रत्नाकर जी ने इसका अर्थ ग्रीष्म-ताप किया है। श्री चतुर्वेदी जी भी 'झर' का अर्थ 'गरमी' लेते हैं। उनका लिखना है—"मेरी समझ में यहाँ 'झर' का अर्थ गरमी झरप ही उचित प्रतीत होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में लू, लपट चलती हीहै, जब सूर्य-ताप की तेजी से वायु गरम हो जाती है तो वह लपट कहलाती है। अतः विशारद जी का यह कहना कि सूर्य की धूप में लपट नहीं होती कम से कम मुझे तो ठीक नहीं जंचता।"

इस सम्बन्ध में मेरा फिर कहना है कि 'लू' तथा 'लपट' इन दोनों शब्दों का अर्थ एक-सा होते हुए भी विभेद रखता है—'लू' आग में नहीं होती उसमें 'लपट' की रहती है और सूर्य-ताप में 'लपट' नहीं होती केवल 'लू' ही रहती है। जन साधारण तक सूर्य-ताप से पीड़ित को 'लू' लग गई, ऐसा ही कहता है, लपट लग गई ऐसा कोई नहीं बोलता। वस्तुतः लपटें तो आग में से ही निकलती हैं, सूर्य-ताप में से लपटें नहीं निकलतीं लूएँ, ही पैदा होती हैं। लू-लपट के अर्थ में यदि यह विभेदता नहीं भी मानें तो भी मेरी सम्मति में झर (झरप) का अर्थ सूय-ताप (ग्रीष्म-ताप) नहीं हो सकता क्योंकि झरप तो आग में रहती है, सूर्य-ताप में नहीं।

श्री चतुर्वेदी जी 'झर' के शब्दार्थ पर रत्नाकर जी से मतैक्य रखते हुए भी इस दोहे में प्रयुक्त 'झार' शद्व के अर्थ पर बिल्कुल भिन्न मत रखते हैं। 'झार' शद्व का अर्थ प्रायः सभी टीका-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारों ने जलन (दाह) ही किया है, पर श्री चतुर्वेदी जी इसका अर्थ पतझार (पतझड़) करते हैं। वे लिखते हैं—"दूसरा शद्ब 'झार' दोहे के अन्त में आया है जिसका अर्थ मेरी समझ में पतझार होना चाहिए न कि जलन।...यदि 'झर' के अर्थ ग्रीष्म और झार के अर्थ पतझार किये जाते हैं तो इससे वर्षा, गरमी और जाड़े तीनों आ जाते हैं क्योंकि पतझार शिशिर में आरम्भ हो जाती है...।"

श्री चतुर्वेदी जी के झार के अर्थ पतझार करने से उक्त दोहे का अर्थ इस प्रकार का हो जायगा :—

हे लाल, तुम्हारे विरह की आग विलक्षण (तथा) अपार है कि नीर बरसते में भी (अर्थात् वर्षा ऋतु में,) ग्रीष्म-ताप में भी (अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में) और पतझार में (अर्थात् पतझड़, शिशिर ऋतु में। मिटती नहीं (वरन्) बढ़ती ही रहती है।

बिहारी रत्नाकर में इस दोहे का अर्थ इस प्रकार है—

हे लाल, तुम्हारे विरह की अग्नि विलक्षण (तथा) अपार है इसकी झार (जलन) नीर बरसने से भी बढ़ती है (और) झर (ग्रीष्म के ताप) से भी नहीं मिटती।*

मैंने इस दोहे का अर्थ इस प्रकार किया है—

हे लाल, तुम्हारे विरह की अग्नि (ऐसी) विलक्षण तथा अपार है कि पानी भी बरसे (और बरसते-बरसते) झर भी लग जाय अर्थात् झड़ी बांध कर लगातार भी मेह बरसता रहे (तो भी) इसकी झार (जलन) मिटती नहीं (वरन्) बढ़ती ही रहती है।

मैं ऐसा कोई दावा तो नहीं करता कि मेरा शद्बार्थ ही ठीक है, पर मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना: के अनुसार अपने मत का इजहार तो कर ही सकता हूँ। मैं श्री चतुर्वेदी जी के विचारों की कद्र करता हूँ और इसी कारण मैंने भरसक कोशिश की कि 'झार' का अर्थ पतझार अपने मस्तिष्क में उतारूँ, पर नाकामयाब ही रहा।

—रामस्वरूप विशारद

---

*'ग्रीष्म के ताप से भी नहीं मिटती'—ऐसा लिखने से तो यह जाहिर होता है कि ग्रीष्म के ताप से अग्नि की जलन मिट जाया करती है अर्थात् ग्रीष्म के ताप में अग्नि की जलन के मिटाने का गुण है। वस्तुतः यह गुण जल-वर्षण में ही है। पर जल-वर्षण से यह बढ़ती है, यही उसकी विलक्षणता तथा अपारता है, क्योंकि यह विरहाग्नि है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्र-पत्रिका परिचय

(श्री वृन्दावन दास)

गुरुदेव – (दीपावली विशेषांक) सम्पादक श्री वंशीधर 'नरेश'। पत्रिका के आवरण पृष्ठ पर ही लिखा है सम्पूर्ण 'व्रज-मण्डल' का परिचय। पत्रिका यथा नाम तथा गुण है। इसमें प्रकाशित कई लेख सुन्दर हैं और व्रज-मण्डल का अति संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं। व्रज-मण्डल का वर्णन शीर्षक लेख व्रजक्षेत्र के विभिन्न स्थलों की झाँकी प्रस्तुत करता है। कुल मिला कर पत्रिका अच्छी निकली। 'नरेश' जी बधाई के पात्र हैं। आशा है कि वे शीघ्र ही व्रजक्षेत्र के साहित्यकारों पर भी एक परिचयात्मक अङ्क निकालेंगे।

रसवन्ती (नवम्बर अङ्क) सम्पादक डा० प्रेम नारायण टण्डन प्रकाशक रसवन्ती कार्यालय विद्या मन्दिर प्रेस लखनऊ। यह पत्रिका अत्यन्त सुसम्पादित एव परमोपयोगी है। इसमें साहित्यिक लेख उच्चकोटि के होते हैं। प्रस्तुत अङ्क में स्वर्गीय डा० दीनदयाल गुप्त स्मृति अङ्क एवं संस्मरणीय शिक्षक अङ्क के रूप में दो विशेषाङ्कों की बिज्ञप्ति प्रकाशित की गई है। दोनों ही अङ्कों के प्रकाशन योजना स्तुत्य है और इसके लिए डा० टण्डन बधाई के पात्र हैं। रसवन्ती संग्रह करने योग्य पत्रिका है। पत्रिका विद्या-मन्दिर प्रेस रानीकटरा लखनऊ से प्रकाशित है।

साप्ताहिक भारती (झांसी)—कुण्डेश्वर विशेषाङ्क—इस विशेषाङ्क का दूसरा नाम श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी अभिनन्दन अङ्क भी इसके आवरण-पृष्ठ पर अङ्कित है। इसमें चतुर्वेदी जी के महान् व्यक्तित्व पर कई लेख बड़े सुन्दर प्रकाशित हुए हैं। स्वयं चतुर्वेदी जी ने भी कुण्डेश्वर में १४।। वर्ष शीर्षक के अन्तर्गत कुण्डेश्वर और उसके मधुवन क्षेत्र की नैसर्गिक शोभा का बड़ा सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। इस अङ्क में कुण्डेश्वर और उसके उन्नयन से सम्बन्धित दो महान विभूतियाँ श्री बनारसीदास चतुर्वेदी और ओरछेश श्री वीरसिंह जूदेव (द्वितीय) के विषय में ज्ञान-वर्द्धक सामग्री सङ्कलित की गई है। इस सत्प्रयास के लिए सम्पादक श्री पन्नालाल धूसर बधाई के पात्र हैं।

उदयन – कोटला (आगरा) से प्रकाशित। प्रस्तुत अङ्क आर० के० इन्टर कालेज पत्रिका कोटला (आगरा) का विशेषाङ्क है। इस अंक के सम्पादक हैं श्रद्धेय पं० बनारसी दास जी चतुर्वेदी। इस कालेज को साहित्यानुरागी श्री बालकृष्ण गुप्त के रूप में एक सुयोग्य प्रबन्धक मिला है। चतुर्वेदी जी ने अपने सम्पादकीय में कालेज के विद्यार्थियों को जनपदीय ज्ञान अर्जित करने का सन्देश दिया है। इस अंक से लोकप्रिय राजा श्री कुशलपाल सिंह जी के सरल व्यक्तित्व की स्मृति ताजी हो जाती है। निस्सदेह स्वर्गीय राजा बहादुर का कोटला की उन्नति में विशेष योगदान रहा है। कालेज यूनियनों द्वारा साहित्य विशेषांक प्रकाशित करने की योजना चतुर्वेदी जी ने चलाई है और हमने इधर कई कालेजों की पत्रिकाओं के विशेषांक देखे हैं। इस प्रकार हम एक-एक अंक के माध्यम से एक-एक मूर्धन्य साहित्यकार के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाल सकते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१-हमारे जवानों के शौर्य ने शत्रु के मनसूबे धूल में मिला दिए।

२-हमारे यहाँ बने हथियारों के सामने अमरीकी हथियार कामयाब न हो सके।

३-हमें अपने को अन्नोत्पादन में भी आत्म निर्भर होना है।

४-अमरीका या अन्य देशों का मुँह ताकना धोखा दे सकता है।

देश का हर व्यक्ति राष्ट्र की इस सबसे बड़ी समस्या में अपना योग दे सकता है। जिला सहकारी बैङ्क में अपना धन आप जमा करें जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित है, ब्याज दूसरे बैङ्कों से आपको ज्यादा मिलेगा और किसानों के अन्नोत्पादन के कार्य में आपके धन का उपयोग होगा।

जिला निवासियों के लिये हमारी शुभ कामनाओं के साथ हम आशा भी करते हैं कि आप अपने ही सहकारी बैंक को अपनाकर अपना तथा इस बैंक का और अपने राष्ट्र का सदैव हित करेंगे।

ब्याज की दरें

सेविंग खाता पर	४	प्रतिशत	वार्षिक
कौल डिपौजिट पर	३।।।	,,	,,
६ माह की अमानत पर	५।।	,,	,,
१ साल की अमानत पर	६।	,,	,,
२ साल की अमानत पर	६।।	,,	,,
३ साल की अमानत पर	६।।।	,,	,,
४ साल की अमानत पर	७	,,	,,
५ साल की अमानत पर	७।	,,	,,
७ साल की अमानत पर	७।।	,,	,,

मथुरा जिला सहकारी बैंक लि०, मथुरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेन्चुरी की नई देन :

कोजी कॉट

कॉटन शर्टिंग

सुन्दर सुहावने चैक्स में उपलब्ध है।
पहनने में ऊनी कपड़े-सा आनन्द मिलता है।

निर्माता—

दि सेंचुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफैक्चरिंग कं. लि.

'सेंचुरी भवन' डॉ० एनी बेजन्ट रोड, वरली
बम्बई—२५ डी० डी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

U. P. Cooperative Bank Ltd.

H. O. : LUCKNOW.

Estd. 1944

[*State Partnered, Govt. Audited, Apex Bank of the Cooperative movement*]

Regional Offices : BAREILLY, GORAKHPUR, KANPUR, LUCKNOW, and MEERUT,

Branches : AGRA, BAREILLY, FAIZABAD, RAMPUR, SITAPUR.
KANPUR–Navin Market, D. A. V. College.
LUCKNOW–M. G. Marg,
Naka-Hindola, Nirala Nagar.

PROGRESS OF THE BANK AT A GLANCE.

(Rs. in Crores)

			30-6-67	30-6-68	30-6-69
Paid up Share Capital	...	Rs.	4.14	4.31	4.35
Owned Funds	...	Rs.	6.90	7.68	8.41
Deposits	...	Rs.	17.53	20.63	25.56
Working Capital	....	Rs.	50.82	60.68	68.80

Offers Lucrative rates of interest on all types of deposit.

Current Account	....	½% per annum
Savings Bank Deposit	...	3½% „ „
Fixed Deposit	...	4 % to 6½% per annum.

D. S. Verma
General Manager

Mathura Singh
President

प्रकाशक:–श्री वृन्दावन दास अध्यक्ष व्रज साहित्य मण्डल मथुरा के लिए
श्री हर्ष गुप्त द्वारा राष्ट्रीय प्रेस, मथुरा में मुद्रित ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रजभारती

फाल्गुन सं० २०२६ वि०

सम्पादक
श्री वृन्दावन दास
बी० ए०, एल-एल० बी०

अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मन्डल, मथुरा

वर्ष २३] वार्षिक मूल्य ४) [अङ्क ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

* अनुक्रमणिका *

क.सं.	लेख	लेखक	पृ.सं.
१	सम्पादकीय	... श्री वृन्दावनदास	१
२	श्रद्धेय बनारसीदास चतुर्वेदी को वर्षगाँठ की (वन्दना)	... श्री श्यामसुन्दर खत्री	३
३	ग्रन्थालोचन	... श्री राजेन्द्र रञ्जन एम० ए०	५
४	परमप्रेमास्पद श्री बनारसीदास चतुर्वेदी (कविता)	... पं० झावरमल्ल शर्मा	६
५	काकाजी की आलोचना	... पं० रमेशचन्द्र दुबे एम० ए०	८
६	ब्रजभूमि की दो महान् विभूतियाँ भ० नेमिनाथ और राजिमती	... श्री अगरचन्द नाहटा	९
७	ब्रजभाषा साहित्य के संरक्षण को प्रश्न	... श्री मोहनलाल शर्मा एम० ए० साहित्य रत्न	१५
८	मानस में तापस प्रसंग	... श्री उदय शंकर 'शील' एम० ए०	१८
९	ब्रजसाहित्य की एक विभूति "कवयित्री ताज"	.... श्री परमानन्द पांचाल एम० ए०	२२
१०	भारतीय संगीत को ब्रजवसुन्धरा की देन	... श्री राधामोहनदास गुप्त	२६
११	कविरत्न श्री हृषीकेश चतुर्वेदी	... श्री गौरी शंकर द्विवेदी 'शङ्कर'	२८
१२	प्राचीन भारत के उपनिवेश (१)	... श्री वृन्दावनदास	३३
१३	'ब्रज ८४' में प्रचलित स्वजन शब्दावली का विवेचन	... डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा 'नीरव' एम० ए०, पी-एच० डी०	
१४	ब्रज लोक साहित्य में गड़गड्ड	... आ० कैलाशचन्द्र 'कृष्ण'	४१
१५	पुस्तक परिचय	.... श्री वृन्दावनदास	४३
१६	पत्र-व्यवहार	... श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४५
१७	अभिनन्दन ग्रन्थ परिचय	... श्री उमाशंकर दीक्षित एम० ए०	४६

★

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रजभारती

[अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य-मण्डल की मुख-पत्रिका]

वर्ष २५] मथुरा फाल्गुन सं० २०२६ [अङ्क ४

संपादकीय

स्वर्गीय डा० वासुदेव शरण अग्रवाल पत्र लेखकों में अग्रगण्य थे। उनके अगणित पत्र साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में है। इन पत्रों को जो यत्रतत्र बिखरे हुए हैं संग्रह करके ही हम इन अमूल्य निधि को सुरक्षित कर सकते हैं। श्रद्धेय श्री बनारसी दास जी चतुर्वेदी ने हमें आदेश दिया है कि हम इन पत्रों का संकलन करें। उन्होंने अपने अनेक मित्रों को हमें इस पुण्य कार्य में सहयोग प्रदान करने को लिखा है। सर्व श्री डा० सत्येन्द्र, कृष्णानन्द गुप्त, हरि गोविन्द गुप्त, यशपाल जैन, प्रभृति सज्जनों ने हमें लिखा है कि वे शीघ्र स्व० डा० अग्रवाल के पत्रों की प्रतिलिपियाँ हमें भेज रहे हैं। स्वयं चतुर्वेदी जी डा० अग्रवाल के कई पत्रों को सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित करा चुके हैं। हम समस्त उन महानुभावों से जिनके पास डा० अग्रवाल के पत्र विद्यमान हैं आग्रहपूर्वक निवेदन करते हैं कि वे उन पत्रों की प्रतिलिपि कराकर शीघ्राति शीघ्र हमारे पास भेजें। यदि वे पत्रों को मूल रूप में हमें भेज देंगे तो हम उनकी प्रतिलिपि कराके मूल पत्रों को उनके स्वामियों को लौटा देंगे। श्रद्धेय चतुर्वेदी जी ने इस श्राद्ध कर्म को करने का हमें आदेश दिया है परन्तु हम इस कार्य में विद्वानों के मूल्यवान् सहयोग से ही सफलता प्राप्त कर सकते है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी चतुर्वेदी जी को एक पत्र लिख कर इस कार्य की आवश्यकता पर जोर दिया है। हम उनसे भी प्रार्थना करते हैं कि वे इस कार्य में हमारी सहायता करें। जितनी जल्दी हमारे पास पत्र मूल रूप में या प्रतिलिपियों की शक्ल में आ जाँयगे उतनी शीघ्रता से हम संकलन कार्य पूरा करने की आशा रखते हैं। आशा है सम्बन्धित विद्वज्जन इस पुण्य कार्य में हमारा हाथ बँटाऐंगे।

डा० वासुदेव शरण जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक पृथिवी पुत्र में लिखा है कि जनपदीय भाषाऐं साक्षात् कामधेनु हैं जिनके दोहन से हमारा निरुक्त भरा पूरा बनेगा। डा० अग्रवाल वेदों के भी महान ज्ञाता थे। उनके पत्रों में अतुलित जनपदीय ज्ञान तथा भारत के अतीत की झाँकी मिलेगी। इस परिपेक्ष्य में स्व० डा० अग्रवाल के पत्रों के संग्रह का औचित्य स्पष्ट है।

इसी अंक में श्रद्धेय पं० बनारसी दास जी चतुर्वेदी का पत्र अन्यत्र मुद्रित है। उस पत्र में चतुर्वेदी जी ने डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के पत्रों के प्रकाशन का कार्य हमारे सुपुर्द करने की घोषणा की है। हम उनकी आज्ञा पालन करने को सहर्ष तत्पर हैं। हम सभी उन साहित्यिक बन्धुओं से जिनके पास डा० अग्रवाल के पत्र विद्यमान हैं विनम्र प्रार्थना करते हैं कि चतुर्वेदी जी की भावनाओं का आदर करते हुए डा० अग्रवाल के पत्रों की प्रतिलिपियाँ शीघ्रातिशीघ्र हमारे पास भेजने की कृपा करें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजा लक्ष्मण सिंह की जयन्ती

गत २५ जनवरी को ब्रज साहित्य मण्डल की आगरा शाखा द्वारा उपरोक्त जयन्ती का आयोजन आगरा में किया गया। अध्यक्षता डा० राम विलास शर्मा ने की। सर्व श्री उल्फतसिंह निर्भय प्रभूदयाल मीतल, वृन्दावन दास, राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, टीकमसिंह तोमर और अध्यक्ष महोदय ने स्वर्गीय राजा साहिब के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला। श्री राजेन्द्र रघुवंशी और उनकी पार्टी ने एक सरस और सुन्दर सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। आशा की जाती है कि आगरा शाखा इस प्रकार के आयोजनों द्वारा भविष्य में भी आगरा क्षेत्र की साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करने में अपना योगदान देती रहेगी।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन समारोह ब्रज साहित्य मण्डल की प्रणामाञ्जलि

दिनांक ३ फरवरी को दिल्ली में चतुर्वेदी जी को उपराष्ट्रपति डा० गोपाल स्वरूप पाठक द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित कर दिया गया। अभिनन्दनीय व्यक्ति की शालीनता के अनुरूप आयोजन भी भव्य ही रहा। अनेक विद्वान् वक्ताओं ने चतुर्वेदी जी की गुणावली का सरस वर्णन किया। चतुर्वेदी जी गाँधीवादी हैं परन्तु प्रिंस क्रोपाटकिन के अनन्य प्रशंसक होने के नाते वे अराजकता वादी भी हैं। तथ्य तो यह है कि चतुर्वेदी जी का अराजकतावाद गाँधीवाद से समन्वित है। चतुर्वेदी जी के अन्यतम मित्रों में अनेक ऐसे समृद्धिशाली व्यक्ति हैं जिनका साहित्य और कला में विशेष अनुराग है और जो साहित्यिक और सांस्कृतिक आयोजनों के लिए तथा सार्वजनिक संस्थाओं को सदैव मुक्त हस्त से दान देते रहते हैं। इससे विपरीत मनोवृत्ति वाले धनाढ्यों को चतुर्वेदी जी सदैव चेतावनी देते रहते हैं जिससे वे लोग समय रहते वस्तु स्थिति को समझें और क्रान्ति की सम्भावनाओं को बलवती बनाने में स्वयं ही सहायक न बन जांय।

हम ब्रज साहित्य मण्डल की ओर से चतुर्वेदी जी का पुनः अभिनन्दन करते हैं। जब वे टीकमगढ़ में 'भ्रमर' के सम्पादक थे उन्होंने क्षेत्रीय आधार पर साहित्य मण्डलों की स्थापना का अभियान चलाया था। अतः ब्रज साहित्य मण्डल तो चतुर्वेदी जी के मस्तिष्क की देन है। चतुर्वेदी जी ने ब्रजभूमि के साहित्यिक और सांस्कृतिक पुनरुत्थान में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने अनेक लेखों के माध्यम से ब्रजभूमि के पुनर्निर्माण का बड़ा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। ब्रज क्षेत्र के अनेक कार्य कर्ताओं को अगणित पत्र लिख कर उन्हें ब्रजभूमि की सेवा के लिए उत्प्रेरित किया है। अपने अभिनन्दन के जरिये से भी उन्होंने ब्रजभूमि का तो उपकार ही किया है। वे बड़ी कठिनाई से अपने अभिनन्दन को तभी राजी हुए जब उन्हें यह आश्वस्त कर दिया गया कि अभिनन्दन ग्रन्थ में ब्रज साहित्य और संस्कृति पर एक विशिष्ट खण्ड सम्मिलित कर दिया जायगा। ग्रन्थ में ब्रज साहित्य और संस्कृति खण्ड बड़ा उत्कृष्ट बन पड़ा है और इसका परोक्ष रूप से चतुर्वेदी जी को ही श्रेय है। मैं उपरोक्त खण्ड के समस्त लेखकों को जो वस्तुतः उस खण्ड की आत्मा हैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ और ब्रज साहित्य मण्डल की ओर से श्रद्धेय चतुर्वेदी जी का पुनः अभिनन्दन करता हूँ।

—वृन्दाबन दास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रद्धेय पण्डित बनारसीदासजी चतुर्वेदी को ७८ वीं वर्षगाँठ पर

वन्दना

(बा० श्यामसुन्दर खत्री ३ ई नन्दी स्ट्रीट कलकत्ता)

साहित्य-तपोवन के महर्षि
तुम सरस्वती के कंठ-हार
गंभीर-ज्ञान-गुरुता-निकेत
तुम आर्तबन्धु करुणावतार ।

जिन वीरों ने मानव-हितार्थ
कर दिए प्राण अपने निसार,
तुम उनका यश करते प्रचार,
तुम बलिदानों के गीतिकार ।

कविजन-वन्दित कविजन-वरेण्य
तुम महामहिम युग-कलाकार,
तुम सत्कवियों के सृजनहार,
कविजन पाते तुमसे दुलार ।

भावना तुम्हारी कृपापूर्ण
बरसाया करती सुधा-धार,
प्रेरणा तुम्हारी स्नेहपूर्ण
उपहार बाँटती द्वार-द्वार ।

अपने सारे सुख दुख बिसार
करते हो सदा परोपकार,
परहित-साधन क्रीड़ा बिहार,
सेवा से तुमने किया प्यार ।

हे पूज्यपाद, तुम मूर्तिमान्
मानव की गुण-गरिमा अपार,
तुम हो मानवता के गौरव,
तुम हो मानवता के सिंगार ।

तुम देश देश से लाते हो
साहित्य ज्ञान उन्नत विचार,
गुंजित हो रही दिशाओं में
तव विश्व-बन्धुता की पुकार ।

अठहत्तर वीं यह वर्ष-गाँठ
मुद-मंगलमय हो सब प्रकार,
अगणित वर्षों की आयु लहो,
प्रति जन्म-दिवस दे नव बहार ।

तुम कर्मयोग-रत योगिराज
तुम निर्मम निस्पृह निर्विकार
तुम चिर प्रफुल्ल आनन्दमूर्ति
तुमको प्रणाम शत-कोटि वार ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रन्थालोचन

(राजेन्द्र रंजन)

दम्पति वाक्य विलास

डॉ० चन्द्रभान रावत, डॉ० रामकुमार खंडेलवाल;
हिन्दी अकादमी हैदराबाद।

वृन्दावन-वासी कवि गोपाल द्वारा रचित 'दम्पति वाक्य विलास' व्रजी का अद्भुत ज्ञान-कोष है, जिसमें समाज के अनेक व्यवसाय, व्यक्ति, वस्तु, देश-देशांतर ऋतु, खेल, निवास, विद्या, ग्रंथ, विविध मानव-जाति आदि के गुण-दोषों पर एक दंपति के काव्यात्मक संवादों के माध्यम से प्रकाश डाला गया है। पुरुष किसी वस्तु के गुण का बखान करता है तो तत्काल ही स्त्री अपने तर्कों से उसके दोष उभार देती है : यथा— 'पतंग को खेल'

पुरुष :

दंग रहै दिल संग में, रहै मित्र कौ मेल।
खेलन माँझ पतंग कौ है उमराई खेल ॥

※

देख्यौ करै सैल फैल करत अनेक भाँति एक ते सरस एक रहत मिजाजी में।
सुकवि गुपाल बड़े होत दंग-बाज दंग, रह्यौ करै सदा यार बास के समाजी में॥
माँझे कों सुताय असमान में चढ़ाय ढील दै कें काट देत पैंच करत जिहाजी में।
दबे रहैं पाजी आप होत इस्क बाजी याते राजी दिल रह्यौ करै या पतंग बाजा में॥

स्त्री :

धन अरंगरु उमंग बल मित्र अंग के संग।
जीतै जुरि जुलमीन सों जब पतंग की जंग॥

※

टूटे कटे पाछें मुख जूती कौ सौ पिच्छी होत रौंद परै दाम बहु चहियत जंग कौ।
फाटी फाटी कहि लोग तारी देत रहैं हाथ रप्पन ते उड़ै गिरैं करैं प्राण भंग कौ॥
सुकवि गुपाल असमान ही कों रहैं मुख फट जात आँख होस रहत न अंग कौं।
बुरौ रहै रंग औ उपाधिन कौ संग याते खेलियै न खेल कबौं भूल कें पतंग कौ॥

कवि ने ग्रंथ के अंत में यह स्पष्ट कर दिया है कि यहाँ पुरुष-स्त्री मन और बुद्धि के प्रतीक हैं : कवि गुपाल बरनन करचौ मन बुधि कौ संवाद। इस प्रतीक का निर्वाह भी ग्रंथकार ने आदि से अंत तक किया है। मन का स्वभाव ही संकल्प-विकल्प है तथा बुद्धि का स्वभाव-दोषान्वेषण। मन में सहज भाव है तो बुद्धि में कठोर तर्क। कवि ने अपने काव्य का उद्देश्य इन्हीं मन और बुद्धि के संघर्ष से उद्भूत वैराग्य बताया है। वैराग्य प्रत्येक वस्तु में दोष-दर्शन से ही सभव है, ऐसा आचार्यों ने स्वीकारा भी है किन्तु दम्पति वाक्य विलास में गुण-दोषों का इतने उच्च स्तर पर तात्विक विवेचन करने में कवि सफल नहीं कहा जा सकता। कवि ने—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"बिन जाने गुन दोष के होइ न संग्रह त्याग।
त्याग किये बिन होइ नहिं हरि चरनन अनुराग॥"

की बात कह तो दी, परन्तु स्वयं कवि की वृत्ति इस ओर रम नहीं सकी है। कवि का वस्तु विवेचन हल्का और बाजारू-शैली का है। भाषा भी अपेक्षाकृत साहित्यिक स्तर की न होकर दैनिक-प्रयोग के निकट की है। तथापि इतने व्यापक क्षेत्र में एक-एक वस्तु को निरखने-परखने और उसमें गुण-दोष का सूक्ष्म-दर्शन करने में कवि ने जिस कौतुक-कला का सहारा लिया है वह बड़ी रोचक, रंजक और कुतूहल भरी है।

इसका संपादन करके डॉ० चद्रभान रावत एवं डॉ० रामकुमार खंडेलवाल ने महत्त्व का कार्य किया है और यह सिद्ध कर दिखाया है कि अभी व्रजभारती का रत्नागार जौहरियों की बाट जोह रहा है। परंतु मक्षिकास्थाने मक्षिकापातः के न्यायानुसार संपादक-द्वय ने पाठ-विज्ञान की अपनी मान्यता को निरखे-परखे बिना लिपि कारों की ज्यों की त्यों अनुकृति की है। यद्यपि भूमिका में 'भाषा- लिपि सबंधी विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उन्होने व्रजी के प्रमुख सिद्धान्त स्थिर अवश्य किये हैं पर अपने सपादन में शब्दों को विकृत होने से रोका नहीं है। अपने कुल-गोत्र से प्रच्छन्न वे शब्द वस्तुतः इतने अजनबी बन गये हैं कि पहचाने ही नहीं जाते। इतना ही नहीं एक ही स्थान पर एक ही शब्द के चार चार रूप मिलते हैं, जैसे पृष्ठ ७० पर श्रुक्रत, श्रुकत एवं सुक्रत, ४४७ पर पतीवरता आदि। इसी प्रकार काठ को बंज (२८८), सेमसक्रति (७८), अहममफास (६९) बीघिन, कस्तब (६६) कावी (३६) यमिरत (३३), व्रेटा (३१, बाइवे (२८) शिक्षा, डिमांक गुरषाण्ड बिरकत देवालीन, चहिथँ आदि आदि असंख्य शब्द ऐसे ही बन गये हैं। ग्रंथ की वर्तनी में विराम अर्द्ध विराम अनुस्वार विसर्ग आदि की पूर्ण उपेक्षा बरती गई है। पेज ५ की पाद टिप्पणी है। अणुसधान के सात पूट पड़न है ऐसे वाक्यों की संख्या भी कंपोजीटरों की कृपा और प्रूफरीडरों के कोप से बहुत अधिक है। यदि अधिकांश शब्दों की विकृति को कंपोजीटरों के मत्थे मढ़ भी दें तब भी पाठ-विज्ञान के क्षेत्र में इस ग्रंथ की संपादन-दृष्टि ने एक प्रश्न प्रस्तुत किया है और वह यह कि "क्या पुरा ग्रंथों के संपादन में हमें पुरानी प्रतियों के लिपिकों को ही अपना आधार मानना चाहिये? और वह भी इस सीमा तक??

वास्तव में यह तो नहीं कहा जा सकता कि पुराने ग्रंथों के लिपिक पंडित ही हों। तब हो सकता है कि वे कुछ का कुछ लिखें तथा शब्दों को तोड़-मरोड़ दें अथवा वर्त्तनी की गलतियाँ करें और इस प्रकार कवि की भाव-हानि भी हो सकती है ऐसी स्थिति में यही उचित है कि ग्रंथ की अनेक प्रतियों का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद ही अपने विवेक को संपादन का आधार बनाना चाहिये। 'दम्पति वाक्य विलास' के सपादकों के सामने समस्या यह भी थी कि उन्हें सभवतः २-३ प्रति ही मिल सकी हैं। ऐसी स्थिति जो भी उन्होने प्रस्तुत किया वह अभिनंदनीय ही है।

सत्य और स्वराज्य काव्य

शिव शकर त्रिपाठी, प्रकाः लोकायन दारागंज इलाहाबाद-६।

'सत्य और स्वराज्य' तीन सर्गों में बापू के जीवन पर लिखा गया खण्ड काव्य है। भाषा सरल सहज और मधुर, शैली जीवन्त और आकर्षक, शब्दावली प्रचलित और बोधगम्य एवं अलंकारों का मधुमय प्रयोगः—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो जन गंगा को सिर पर ले
वह नील कंठ मतवाला है ।
दीनों दुखियों का कष्ट गरल
हँस हँस कर पीने वाला है ।।

जिसमें बल सत्य अहिंसा का
सागर सा स्नेह उफनता है ।
दृढ़ता के आगे महापुरुष
दानव को मानव करता है ।।

खंड काव्य की रचना बालकों के लिये गांधी के महान् आदर्शों का बोध उपस्थित करने में पूर्ण समर्थ है । लेखक का बालकों के हृदय में सत्य के प्रति पूजा-भाव जगाने का संकल्प इससे अवश्य पूरा होगा, ऐसी आशा है ।

रक्त के अक्षर

शिव शंकर त्रिपाठी, लोकायन दारागंज इलाहाबाद-६ ।

श्री त्रिपाठी के हृदय का वह सजग स्वर जिसकी प्रेरणा भारत के कण-कण में व्याप्त है 'रक्त के अक्षर' में प्रखर हुआ है । शिवाजी के शौर्य की यह गाथा नौ सर्गों में युवकों के ओज को जगा रही है । त्रिपाठी जी की ओजस्विनी वाणी का परिचय 'रक्त के अक्षर' के शब्द-शब्द में ध्वनित है ।

प्रलयावह ज्वाला की उठकर
बिखरेंगी अगणित चिनगारी ।
अभिमान निगलने हेतु
काल सी मारेगी वह किलकारी ।।

※

अवतार तुम्हारा वीर हुआ
इस हेतु अंश ले शंकर का
दुर्नीति मिटा दो वत्स उठो,
ले लो त्रिशूल प्रलयंकर का ।

इस खंड काव्य के माध्यम से वीर रस की भागीरथी प्रवाहित करने के प्रयत्न हेतु त्रिपाठी जी बधाई के भाजन हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परम प्रेमास्पद बन्धुवर श्री पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी

(पं० झावरमहल शर्मा खेतड़ी राजस्थान)

गुणिगण-गणनारम्भ में पहले आता नाम,
देखा हिन्दी-क्षेत्र में, श्लाघनीय तव काम ।
निजको निज परिवार को, भूले रहते आप
कीर्त्ति-कथा परिकीय में, कभी न मानी 'धाप' *
रसमय जीवन तत्व से, बनारसी' ला देह,
'दास' रूप आतिथ्य से, है मुखरित तव गेह ।

बन-उपबन की भक्ति से, मनः प्राण तव पूत,
सदा रहेगी विन्ध्य को, तेरी याद सपूत ।
मातृभूमि बलि-वेदि पर, हुए वीर बलिदान,
उनके यश का आपने, किया निरन्तर गान ।
जो साहित्यिक स्वर्गगत, हुए नाम अवशेष,
उनके स्मारक यज्ञ में अभिरुचि रखी विशेष

पत्रों की लेखन-क्रिया, प्रेषण में बेजोड़,
दिखता मुझे न आप सम, जो कर सकता होड़ +
दलगत हो या वर्ग-गत, देश-भेद-विद्वेष,
निज मानस में आपने रखा न इसका लेश ।
धन्य आपकी लेखनी, धन्य हृदय का भाव,
दर्शन का मेरे रहा, इस अवसर पर चाव ।

ग्रन्थ-समर्पण दिवस का, सुन्दर मिला सुयोग
चंडीगढ़ का फैसला, मेरे हित दुर्योग ।
स्वीकृत मेरी भी करें, शब्द-सुमन की भेट,
चाहा, मैंने गाँव से, पहुँचूँ दिल्ली ठेठ ।
पर भाई ! दुर्भाग्य वश, अटक गया अध बीच,
हरियाना बाधक हुआ बना बीच में कीच ।

आयोजक इस यज्ञ के, उनको कृपया आप,
हाथ जोड़ अवगत करें साथी का संताप ।
आयु दीर्घ हो आपकी, रहें सदा नीरोग,
नव-पौरुष का कीजिये रचना में उपयोग ।
मेरी मङ्गल कामना, मेरे मन यह चाह,
रचना सत्साहित्य का बढ़ता रहे प्रवाह ।

* राजस्थानी भाषा का शब्द— अर्थ-तृप्ति
+ ,, ,, ,, ,, बरावरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काका जी की आलोचना

[श्री रमेश चन्द्र दुबे एम० ए०]

बाबू वृन्दावन दास जी की कृति 'भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य' काका जी (पं० अमृत लाल चतुर्वेदी) को हस्तगत हुई। हमने उनके विचार इस पर जानने चाहे। काका जी बोले, हमने नेंक पढ़ी और बन्द करि कें धरि दई। वामें कहूँ लिखी हती कि वेदिन में लिखी है कि ऋषी लोग माँस खातहते। ऐसी बात लिखिबे को इन्हें का अधिकार। जे का जानें वेदनि को अर्थ। अंगरेजिन के गलत अनुवाद पढ़ि कें वेदनि को अर्थ करन चले हैं। "हमने पूछा आपने फिर पुस्तक नहीं देखी। काका जी बोले, फिर एक दिना देखी तो अच्छी मालूम पड़ी। हमें वामें बहुत सी नई जानकारीं मिलीं। सो हमने तारीफ लिखि दईं। मैंने कहा, हाँ काका जी! बाबू जी बहुत अध्ययनशील लेखक हैं। बहुत उपयोगी पुस्तक लिखी है उन्होंने और काका जी ने पूर्ण सहमति व्यक्त की और कहा कि हम उनका अभिनन्दन करने की योजना शीघ्र ही तैयार कर रहे हैं।

चर्चा एक 'खरी-खोटी' किताब की भी आई। बोले, भैया जी (पं० श्री नारायण चतुर्वेदी) ने मारि के तारीफ लिख दई है। हमने तो 'खरी-खरी' लिखी है 'खोटी' तो हम पै आति नाहिं है। सुनि कै बनारसी बोले, 'जि तुमने ठीक नाहिं करी' तो हमने कही लेहु फारि फेंकत हैं और हमने बाय फारि कें फेंक दयो। हमने पूछा, ऐसी क्या खरी-खरी आलोचना आपने लिख दी? बोले, ऊँट कहीं 'बिलबिलाता' है, वह तो 'बलबलाता' है। ऐसी कितनी हूँ भूलें देखि कें खरी-खरी लिख दई हतीं। चलो अब फाड़ि ही दई। वैसे पुस्तक अच्छी है। बड़ो मनोरंजन भयो वासें।

हमको काका जी की इस सहज आलोचना में बड़ा रस आया इसलिए यह वार्ता आपके आमोदार्थ लिपिबद्ध कर दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रज भूमि की दो महान् विभूतियां—
भ० नेमिनाथ और राजिमती

(श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर)

जैन धर्म भारत का प्राचीनतम धर्म है। विद्वानों के मतानुसार आर्य लोग बाहर से आये और वेदादि प्राचीनतम ग्रन्थ उन्हीं के ऋषि-मुनियों ने बनाये। तब प्रश्न होता है कि भारत में प्राचीन लोग कौन थे और किस धर्म को मानते थे ? इस प्रश्न का कुछ समाधान जैन आगमादि ग्रन्थों से होता है। जैन धर्म के २४ तीर्थङ्कर सभी भारत के विभिन्न भागों में जनमे, साधना करके सर्वज्ञ बने और अनेक प्रदेशों में घूम कर धर्म प्रचार किया। उन तीर्थङ्करों में सबसे पहले भगवान ऋषभदेव हुए जिनके बड़े पुत्र भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। कई पुराणों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि भगवान ऋषभदेव को वैदिक धर्मानुयायियों ने भी अवतारों में सम्मिलित कर लिया। भागवत् महापुराण में भगवान ऋषभदेव का चरित्र भी संक्षेप में दिया है। उनके पुत्र भरत से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा इसका उल्लेख भी कई पुराणों में मिलता है। ऋषभदेव के १०० पुत्र और २ पुत्रियाँ थीं। जब ऋषभदेव ने यहाँ के युगलिकों की कई असुविधाओं और कष्टों को देखा तो उन्होंने एक नई संस्कृति का निर्माण किया पुरुषों की ६४ कला और स्त्रियों की ७२ कला या विद्या लोगों को सिखायी। इससे पहले भारतभूमि भोग भूमि थी। जिसे उन्होंने कर्म भूमि के रूप में परिणत कर दिया।

भगवान ऋषभदेव की पुत्री ब्रह्मी को जो लिपि ऋषभदेव ने सिखायी उसका नाम ब्राह्मी लिपि प्रसिद्ध हो गया जो भारत की प्राचीनतम लिपि है। दूसरी पुत्री सुन्दरी को अङ्क विद्या सिखायी इससे गणित के क्षेत्र में हमारे देश ने बहुत उन्नति की और नाम पाया। इस तरह वर्तमान सभ्यता और संस्कृति, विद्या और कला के प्रथम पुरषकर्ता भगवान ऋषभदेव हुये। उन्होंने जब गृहस्थावस्था और राज्य का त्याग करके सन्यास ग्रहण किया तब अपने १०० पुत्रों को राज्य बाँट दिया। उन पुत्रों के नाम से भारत के कई प्रदेश विख्यात हुए। अर्थात् उनके नाम से प्रदेशों का नामकरण हो गया। इसकी चर्चा कई जैन ग्रन्थों में पायी जाती है।

भगवान ऋषभदेव की परम्परा में २२ वें तीर्थं कर भगवान नेमिनाथ हुए। उनका जन्म ब्रज प्रदेश के शौरीपुर नामक नगर में हुआ जो आज भी जैनतीर्थ के रूप में विख्यात है। वटेश्वर नामक ग्राम से एक मील दूर यह शौरीपुर जैन तीर्थ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों के मान्य है। दोनों सम्प्रदायों के वहाँ मन्दिर बने हुए हैं जिनमें से दिगम्बर मन्दिर में कई प्राचीन मूर्तियाँ और अवशेष प्राप्त हैं। समय-समय पर जैन यात्री भगवान नेमिनाथ की इस जन्म-भूमि की यात्रा करके अपना अहोभाग्य मानने हैं। पुरातत्त्व की दृष्टि से शौरीपुर के ध्वंशावशेषों में अनेक प्राचीन वस्तुयें मिली हैं। सर कनिंघाम ने यहाँ की मूर्तियों, शिला लेखों, ताम्रपत्र, प्रस्तर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खण्डों का संग्रह किया था। मन् १८७० में कर्लाइल ने यहाँ की प्राचीन वस्तुओं को गाडों में भर कर आगरा भिजवादी जिनमें भगवान ऋषभदेव की मूर्ति सम्वत् १०८४ या ९४ की थी।

५ वीं शताब्दी के वासुदेव हिन्डी नामक प्राचीन कथा ग्रंथ में लिखा है कि हरिवंश में शौरी और बीर नामक दो भाई हुए। जिनमें शोरी ने शौरीपुर और वीर ने शौवीर नामक नगर बसाया। शौरी के पुत्र अन्धक वृष्णि के भद्राराणी से समुद्र विजय आदि १० पुत्र हुए और कुन्ती और माद्री दो कन्यायें हुई। वीर के पुत्र भोजवृष्णि हुए, उनका पुत्र उग्रसेन हुआ उग्रसेन के बन्धु, सुवन्धु और कंस आदि ६ पुत्र हुए। इनमें से समुद्र विजय ने शौरीपुर में और उग्रसेन एवं कंस ने मथुरा का राज्य किया। समुद्र विजय के पुत्र श्री अरिष्ठनेमि या नेमिनाथ हुए। जो आगे चलकर २२ वें तीर्थंकर कहलाये। समुद्र विजय के छोटे भाई वासुदेव के पुत्र श्री कृष्ण हुए। जिन्होंने कंस को मार कर मथुरा का राज्य लिया। पर मगध के पराक्रमी राजा जरासन्ध के भय से श्री कृष्ण और समुद्र विजय को यादवों के साथ वहाँ से प्रयाण करना पड़ा। वे पश्चिमी समुद्र के तटवर्ती सौराष्ट्र प्रदेश में पहूँचे और वहाँ द्वारिका नगरी बसाकर यादवों सहित श्री कृष्ण ने लम्वे समय तक राज्य किया।

भगवान नेमिनाथ बड़े पराक्रमी थे। उनके पराक्रम से श्री कृष्ण भी चकित हो गये। और उनके बल को कम करने के लिए उनका विवाह करना आवश्यक समझा पर श्री नेमिनाथ ब्रह्मचारी ही रहना चाहते थे। अन्त में श्री कृष्ण ने बड़ी युक्ति पूर्वक अपनी रानियों द्वारा प्रपञ्च करके नेमिनाथ से विवाह की स्वीकृति जबरदस्ती करवाली और उनकी सगाई मथुरा के राजा उग्रसेन की पुत्री राजिमती के साथ कर दी। जब बारात लेकर नेमिनाथ यादबों के साथ विवाह करने मथुरा पहूंचे तो बहुत से पशुओं को एक बाड़े में आक्रन्द करते देखकर अपने साथियों से पूछा कि इतने पशु-पक्षियों को यहां क्यों एकत्रित किया गया है ? और यह आक्रन्द क्यों कर रहे हैं ? तब सारथी ने कहा कि ये आपके बारातियों के मांस प्रेम के लिये एकत्रित किये गये हैं और मरने के भय से आक्रन्द कर रहे हैं। यह सुनकर नेमिनाथ का हृदय बेचैन हो गया और सारथी से कहा कि मेरे विवाह के निमित से इतने पशु-पक्षी मारे जायें, ऐसा विवाह मुझे नहीं करना है, रथ को वापिस मोड़ लो। और इन पशु-पक्षियों को बाड़े से बाहर निकाल दो। सभी लोगों ने उन्हें बहुत समझाया पर दयालु नेमिनाथ ने जो निश्चय किया वह कह दिया उससे टस से मस नहीं हुये। राजिमती को अनब्याही छोड़कर वे द्वारिका की ओर मुड़ चले और उज्जयन्तगिरनार पर्वत पर जाकर दीक्षित हो गये। राज्मिती अपने मन से नेमिनाथ को वर चुकी थी। इसलिये बहुतों के समझाने पर भी वह दूसरे से विवाह करने के प्रस्ताव से सहमत नहीं हुई और नेमिनाथ के पास जाकर दीक्षित हो गयी। नेमिनाथ और राजुल के इस प्रसङ्ग को लेकर जैन मुनियों और और विद्वानों ने बहुत बड़ा साहित्य निर्माण किया है। राजिमती के विरह की कल्पना को लेकर पचासों बारहमासे बनाये गये और सैकड़ों गीत, भजन, स्तवन स्तुति आदि रचे गये।

भगवान नेमिनाथ का जन्म शौरीपुर में हुआ और राजिमती का मथुरा में। अतः यह दोनों महान् व्यक्ति ब्रज प्रदेश की बिरल विभूति हैं। भगवान नेमिनाथ ने पशु पक्षियों पर दया का एक महान् आदर्श उपस्थित किया और राजिमती ने एक बार मन से निश्चित किये हुए पति के अतिरिक्त किसी से भी विवाह न कर अपने पति का अनुगमन करने रूप महान् सती का आदर्श

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपस्थित किया। आज भी इन दोनों महापुरुषों की स्मृति सारे जैन-समाज में बनी हुई है। और उन दोनों के सैंकड़ों भजन गाये जाते हैं।

नेमिनाथ और राजिमती के इस विवाह प्रसङ्ग और दीक्षित होते के बाद राजिमती की परीक्षा का विशिष्ट प्रसङ्ग प्राचीन जैनागम उत्तराध्ययन सूत्र के २२ वें 'रहनेमिजं अध्ययन' में पाया जाता है। उत्तराध्ययन सूत्र पारम्परिक मान्यता के अनुसार भगवान महावीर ने अपने अन्तिम समय के प्रवचन के रूप में कहा था अतः २५०० वर्ष पुराना और सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उत्तराध्ययन पर जितनी अधिक टीकायें लिखी गयी हैं केवल कल्प सूत्र को छोड़कर और किसी भी आगम पर नहीं लिखी गयीं।

उत्तराध्ययन का रहनेमिज अध्ययन ५१ प्राकृत गाथाओं में है। इसकी एक प्रारम्भिक गाथा देकर ५२ गाथाओं का हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जा रहा है। जिससे व्रज प्रदेश की दो महान् विभूतियों के सम्बन्ध में संक्षिप्त जानकारी मिल जायेगी।

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढए।
वसुदेव त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए ॥१॥

सौर्यपुर नगर में वसुदेव नामा महत्ती समृद्धि वाला राजा राज्य करता था, जो कि राजा के लक्षणों से युक्त था।

वसुदेव राजा की दो भार्याएँ थीं—एक रोहिणी, दूसरी देवकी। उन दोनों के क्रम से राम और केशव ये दो पुत्र हुए, जो कि बड़े प्रिय थे।

सौर्यपुर नगर में राजलक्षण संयुक्त और महती समृद्धि वाला समुद्रविजय नाम का राजा था।

समुद्रविजय की शिवा नाम्नी भार्या थी और उसका पुत्र महायशस्वी, परम जितेन्द्रिय और त्रिलोकी का नाथ भगवान अरिष्टनेमि नेमिनाथ हुआ।

वह अरिष्टनेमि नामा कुमार, स्वर लक्षणों से युक्त और एक हजार आठ लक्षणों का धारक था तथा गौतम गोत्र और कृष्ण कांति वाला था।

वज्र ऋषभ नाराच सहनन के धरने वाले, समचतुरस्त्र संस्थान से युक्त उस अरिष्टनेमि कुमार के लिए राजिमती कन्या को भार्या रूप में केशव याचना करता है।

वह राजवर कन्या सर्व लक्षण सम्पन्न, अच्छे स्वभाव वाली, सुन्दर देखने वाली, परम सुशील और प्रदीप्त बिजली के समान कान्तिवाली थी।

तदनन्तर राजिमती के पिता ने समृद्धि वाले वासुदेव से कहा कि यदि वह कुमार मेरे घर आ जाय तो मैं उसको अपनी कन्या दे दूँगा।

सर्वोषधिमिश्रित जल से स्नान कराया गया, कौतुकमङ्गल किया गया और दिव्य वस्त्र पहनाये गये तथा आभूषणों से विभूषित किया गया।

वासुदेव के मदयुक्त और सबसे बड़े गन्ध हस्ती नामा हस्ती पर चढ़े हुए वह नेमिकुमार इस प्रकार शोभा पा रहे हैं, जिस प्रकार सिर पर रखा हुआ चूड़ामणि नामक आभूषण शोभा पाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तदनन्तर ऊँचे छत्र, दोनों चामर और दशार्द्ध चक्र से सर्व प्राकर से आवृत हुए राजकुमार विशेष शोभा पा रहे थे।

उस समय क्रमपूर्वक रचना की गयी चतुरंगिणी सेना से तथा वादित्रों के प्रधान शब्द से आकाश व्याप्त हो रहा था।

इस प्रकार की सर्वोतम द्युतियुक्त समृद्धि से परिवृत्त हुए वृष्णिपुंगव अपने भवन से निकले।

तदनन्तर जब नेमिकुमार आगे गये तो उन्होंने संत्रस्त हुए, बाड़ो और पिंजरों में बन्द करने से अत्यन्त दुःख को प्राप्त हुए प्राणियों को देखा, जो कि जीवन के अन्त को प्राप्त हो रहे हैं तथा जो मांस के निमित्त नियुक्त किये गये है। उन प्राणियों को देख कर नेमिकुमार अपने सारथि से इस प्रकार बोले—

ये सब सुख के चाहने वाले प्राणी किस लिये पिंजरों में डाले हुए और बाड़े में बँधे हुए हैं ?

तदनन्तर सारथि ने कहा कि ये सब भद्र-सरल–प्रकृति के जीब आपके विवाहकार्य में बहुत से पुरुषों को भोजन देने के लिए एकत्रित किये गये हैं।

उस सारथि के बहुत से प्राणियों के विनाश सम्बन्धी वचन को सुनकर दयार्द्र हृदय और महाबुद्धिमान राजकुमार मन में विचारने लगे।

यदि ये बहुत से जीव मेरे कारण से मारे जाते हैं तो मेरे लिये यह परलोक में कल्याण प्रद नहीं होगा।

महान् यश वाले श्री नेमिभगवान् दोनों कुण्डल, कटि सूत्र तथा अन्य सब भूषण सारथि को अर्पण कर देते हैं।

जिस समय भगवान् ने दीक्षा से लिये मन के परिणाम किये उस समय देवता भी अपनी सर्व ऋषि और परिषद के साथ उनका दीक्षा महोत्सव करने के लिये आ गये।

तब भगतान् देवता और मनुष्यों से घिरकर उत्तम शिविका में विराजमान होकर द्वारका से निकल कर रैवतक पर्वत पर जा पहुँचे।

उद्यान में पहुँचकर और सर्वोत्तम शिविका से उतर कर सहस्रों पुरुषों से घिरे हुए भगवान् अरिष्ट नेमि ने चित्रानक्षत्र के योग में श्रमणवृति को ग्रहण किया अर्थात् दीक्षित हो गये।

तदनन्तर भगवान् अरिष्ट नेमि ने, स्वभाव से सुगन्धित और कोमल तथा कुटिल केशों को अपने आप ही पांच मुट्ठी से बहुत ही शीघ्र लुञ्चन कर दिया अर्थात् अपने हाथ से केशों को सिर पर से अलग कर दिया, जिनका कि आत्मा समाधियुक्त था।

वासुदेव ने लुप्तकेश और जितेन्द्रिय—भगवान से कहा कि हे दमीश्वर ! तू इच्छित मनोरथ को शीघ्र से प्राप्त कर।

हे भगवान् ! आप ज्ञान, दर्शन और चारित्र से तथा तप क्षमा और निर्मोलता से सदा वृद्धि को पाते रहें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार वे दोनों राम और केशव, यादव वंशी तथा अन्य बहुत से पुरुष भगवान अरिष्टनेमि को वन्दना करके द्वारकापुरी को वापस आ गये।

वह राजकन्या राजीमती जिन भगवान की दीक्षा को सुनकर हास्यरहित, आनन्द-रहित और शोक से व्याप्त हो गई।

राजीमती विचार करती हुई कहती है कि धिक्कार हो मेरे इस जीवन को, जो मुझे उसने—भगवान नेमिनाथ ने—सर्वथा त्याग दिया। अतः अब तो मेरे लिये भी दीक्षित होना ही श्रेयस्कर है।

तदनन्तर धैर्ययुक्त और धार्मिक अध्यवसाय वाली उस राजीमती ने कूर्च और फनक (ब्रुश और कंघी) से संस्कार किये हुये अपने भ्रमर सदृश केशों को अपने हाथ से ही लुञ्चन कर दिया अर्थात् अपने ही हाथ से उखाड़कर सिर से अलग कर दिया।

वासुदेवादि राजीमती के प्रति जो लुञ्चित केश और इन्द्रियों को जीतने वाली है—कहते हैं कि हे कन्ये! तू इस संसाररूप दुस्तर समुद्र से शीघ्र से शीघ्र पार होजा।

वह शीलवती और बहुश्रुता राजिमती दीक्षित होकर उस द्वारिकापुरी में बहुत से स्वजन तथा परिजनों को दीक्षित करने लगी।

रैवतगिरि पर जाती हुई वह वर्षा से भीग गई और वर्षा के होते हुए ही वह एक अन्धकारमयी गुफा में जाकर ठहर गई।

भीगे हुए वस्त्रों को फैलाती हुई यथाजात-नग्न-राजीमती को देखकर रथनेमि मुनि का चित्त भग्न हो गया। उसने राजीमती ने-भी उस मुनि को पीछे ही देखा।

वहाँ पर एकान्त स्थान में उस संयत को देखकर भयभीत होती हुई राजीमती अपनी दोनों भुजाओं से अपने शरीर को गुप्त करके कांपती हुई बैठ गई।

तदनतर समुद्र विजय के अंग से उत्पन्न होने वाला वह राजपुत्र रथनेमि डरती और कांपती हुई राजीमती को देखकर इस प्रकार कहने लगा।

हे भद्रे! मैं रथनेमि हूँ। अतः हे सुन्दरि! हे मनोहरभाषिणि! हे सुन्दर शरीरवाली! तुम मुझको सेवन करो। तुम्हें किसी प्रकार की भी पीड़ा नहीं होगी।

तुम इधर आओ। प्रथम हम दोनों भोगों को भोगें क्योंकि यह मनुष्य जन्म निश्चय ही मिलन अति कठिन है। अतः भुक्त भोगी होकर—भोगों को भोगकर फिर पीछे से हम दोनों जिन मार्ग को ग्रहण कर लेंगे।

भग्नचित और स्त्री परिषह से पराजित हुए उस रथनेमि को देखकर असंभ्रान्त—निर्भय हुई राजीमती ने वहाँ अपने आत्मा—शरीर को वस्त्रों से ढ़ांप लिया।

तदनन्तर नियम और व्रत में भली भांति स्थित हुई वह राजकन्या—राजीमती—अपने जाति, कुल और शील की रक्षा करती हुई उसके—रथनेमि के—प्रति इस प्रकार कहने लगी।

यदि तू रूप में वैश्रवण और लीला—विलास में नलकूबर के समान भी होवे, अधिक क्या कहूँ, यदि तू साक्षात इन्द्र भी होवे तो भी मैं तुझे नहीं चाहती।

अगन्धन कुल में उत्पन्न होने वाले सर्प, धूम जिसका केतुध्वजा है ऐसी जाज्वल्यमान अग्नि में गिरना तो स्वीकार कर लेते हैं परन्तु वमन की हुई वस्तु को फिर स्वीकार नहीं करते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हे अयश की कामना करने वाले ! तुझे धिक्कार हो, जो कि तू असंयत जीवन के कारण वमन किये हुए को पीने की इच्छा करता है। इससे तो तुम्हारा मर जाना ही अच्छा हैं।

मैं उग्रसेन की पुत्री हूँ और तुम समुद्र विजय के पुत्र हो। हम दोनों को गन्धन कुल के सर्पो के समान न होना चाहिये। अतः तुम निश्चल होकर संयम का आराधन करो।

यदि तू उक्त प्रकार के भाव करेगा, तो जहाँ-जहाँ पर स्त्रियों को देखेगा वहाँ-वहाँ वायु से हिलाये गये वृक्ष विशेष की तरह तू अस्थितात्मा हो जावेगा अर्थात् तेरा आत्मा सदा के लिए अस्थिर हो जावेगा।

जैसे गोपाल अथवा भंडपाल उस द्रव्य का ईश्वर–स्वामी नहीं होता, उसी प्रकार तू भी संयम का अनीश्वर हो जायगा।

रथनेमि ने संयमशीला राजीमती के पूर्वोक्त सुभाषित वचनों को सुनकर अंकुश द्वारा मदोन्मत हस्ती की तरह अपने आत्मा को वश में करके फिर से धर्म में स्थित कर लिया।

क्रोध, मान, माया और लोभ को जीत कर तथा पाँचों इन्द्रियों को वश में करके, उसने–रथनेमि ने–अपमे आत्मा का उपसंहार किया अर्थात् प्रमाद की ओर बढ़े हुए आत्मा को पीछे हटाकर धर्म में स्थित किया।

मन, वचन और काया से गुप्त होकर इन्द्रियों को जीत कर और पूर्ण दृढ़ता से स्थिरता पूर्वक उसने जीवन पर्यन्त श्रमण धर्म का पालन किया।

उग्र तप का आचरण करके राजीमती और रथनेमि वे दोनों ही केवली हो गये। फिर सम्पूर्ण कर्मो का क्षय करके सर्व प्रधान सिद्धि मोक्षगति को प्राप्त हो गये।

इस प्रकार तत्ववेता पण्डित और विचक्षण लोग करते हैं तथा भोगों से निवृत हो जाते हैं, जिस प्रकार पुरुषोत्तम वह रथनेमि निवृत्त हुआ।

महासती राजिमती ने पथभ्रष्ट रथनेमि को जिस तरह के वोधमय उपदेशों से प्रभावित कर हाथी को अंकुश द्वारा वश में करने के रूप में प्रतिवोध दिया वह भारतीय नारी का उद्दात्त और गौरवशाली वाक्य सदा स्मरण किये जाने योग्य है। जैसे उज्वल और आदर्शमय चरित्र वाली नारियों में ही भारत गौरवान्वित हुआ है।

जैन समाज में जिस तरह भगवान नेमिनाथ का स्मरण व स्तवन किया जाता है उसी १६ या २४ महासतियों में राजिमती का पवित्र नाम भी प्रातः स्मरणीय है। मथुरा में जनमी हुई इस महासती की गौरव गाथा लाखों व्यक्तियों को आदर्श प्रेरणा और मार्ग दर्शन दे रही है।

ब्रज प्रदेश का मथुरा नगर तो जैन संस्कृति का शताब्दियों तक केन्द्र रहा है। कङ्काली टीले की खुदाई से प्राप्त जैन पुरातत्त्व से यह भली भाँति स्पष्ट हो गया है। जिन प्रभ सूरि के विविध तीर्थ कल्प आदि अनेक जैन ग्रन्थों से मथुरा और ब्रजप्रदेश का जैन सस्कृति से घनिष्ट सम्बन्ध रहा, प्रमाणित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रजभाषा साहित्य के संरक्षण कौ प्रश्न

(मोहनलाल शर्मा एम० ए०, साहित्य रत्न, फिरोजपुर)

आधुनिक काल में ब्रजभाषा साहित्य कौ विकास सूत्र धूमिल होइबे कौ प्रधान कारण वाके उचित संरक्षण कौ अभाव रह्यौ एँ। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जबलौं भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी कौ प्रबल संरक्षण रह्यौ तब लौं ब्रजभाषा हिन्दी साहित्य की प्रमुख भाषा रही। वाके बाद वापै इतने आक्रमण प्रत्याक्रमण भए कै वाकी गति मन्द परि गई। बाबू श्री श्याम-सुन्दर दास और आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल के श्रेष्ठतम प्रयासन सों हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक एकरूपता कौ जो आबद्धसरूप प्रकाश में आयौ वाते ब्रज कौ भक्ति साहित्य और रीति काव्य कौ कछू भाग उजागर भयौ, जाते ब्रजभाषा साहित्य की प्रतिष्ठा बनी रही। काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग—हिन्दी की ऐसी संस्था रही यें कै जिनकी सेवा-साधना पै हम सबन कूँ गर्व रहयौ एँ और आजऊ एँ पर इन मान्य संस्थान को ऊ ध्यान ब्रजभाषा साहित्य के सम्पूर्ण संरक्षण के ताँईं काऊ सुनियोजित सरूप में नांय गयौ, जितनौ जानौ चहिए औ। जब तल छुट प्रयास ई होते रहे।

यों तौ पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के ऊ समै में पण्डित श्रीधर पाठक, पण्डित नाथूराम 'शङ्कर' शर्मा, पण्डित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' श्री वियोगीहरि, श्री दुलारेलाल जी, बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर,श्री अनूपशर्मा और श्रीबालकृष्णशर्मा नवीन आदि महानुभाव अपने व्यक्तित्व के प्रभाव सों ब्रजभाषा कौ नाम उजागर करके बाकूँ संरक्षण देते रहे। डा० धीरेन्द्र वर्मा की ब्रजभाषा सम्बन्धी शोध और आचार्य किशोरीदास वाजपेयी कौ व्याकरण ऊ या काल की प्रमुख रचना हीं। परन्तु उचित संरक्षण के अभाव में ना जानें या काल में ऊ कितने ई पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न' अपने कोकिल कण्ठी कमनीय स्वरन सों ब्रजमाधुरी की मीठी तान सुनाइकें सदा के तांई लीन ह्वै गए। जिनकौ नाम लेबाऊ अब कोई नांय एँ। भलौ होय श्री कविरत्न जी कौ कै जिनकूँ हाथ कौ सहारौ समै पै मिलि गयौ जाते उनकौ काव्य आज ब्रजभाषा कौ गौरव बढ़ाय रह्यौ एँ, नाँय तौ उनकौ ऊ उई रस्ता होतौ।

ब्रजभाषा साहित्य के सर्वांगीण संरक्षण और संवर्धन की आवश्यकता अनुभव करिकें ई डा० सम्पूर्णानन्द, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, बाबू गुलाब राय, पण्डित हरिशङ्कर शर्मा, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी और श्री नारायण चतुर्वेदी आदि मूधन्य विद्वान साहित्यकार महानुभावन की प्रेरणा ते सन् ४० में अखिल भारतीय ब्रज-साहित्य मण्डल की स्थापना भई जानें अपने प्रारम्भ काल में या दृष्टि सों बड़े उत्साह के संग काम कियौ जाते सम्पूर्ण ब्रजक्षेत्र में एक सांस्कृतिक जागरण भयौ और पुरातन के संरक्षण के संग-संग नवीन रचनात्मक विकास कौ सूत्रपात भयो। मण्डल के प्रारम्भिक १५ बरसन की साहित्यिक गति विधि बड़ी ही उल्लेखनीय रही और मण्डल के तत्वावधान में श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी, ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी, डा० सत्येन्द्र, श्री गोपालप्रसाद व्यास, श्री प्रभूदयाल मीतल, श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, श्री रामनारायण अग्रवाल, श्री बरसाने लाल चतुर्वेदी और अन्य ऐसे ही कार्य कर्ता महानुभावन की साधना ते जो उपलब्धि भई, वाकौ स्थायी महत्त्व एँ। मण्डल के प्रकाशन 'ब्रजभारती' कौ सुयोग्य सम्पादन, ब्रज ग्राम्य साहित्य कौ सङ्कलन और नई प्रतिभानु कूँ उभरिबे के ताँईं सामान्य साहित्यिक मञ्च की प्राप्ति कौ सुअवसर या काल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की प्रधान देन मानी जाइ सकै ह्वै । अपने सीमित साधनन के होते भए ऊ मण्डल के प्रारम्भिक काल में ब्रजभाषा साहित्य के संरक्षण कौ कछू ठोस प्रयास भयौ हौ पर आगें चलिकें वाहू की गति मन्द परिगई और हालत जैसी ही, बाहू ते बुरी बनि गई।

परिणाम ई भयौ कै ब्रजभाषा साहित्य कौ कोई धनीधोरी नाँय रह्यौ। प्रायः समस्त उत्तरी पश्चिमी भारत में जा भाषा कौ साहित्य अपने समै कौ सर्वश्रेष्ठ साहित्य मानौ जाय एँ और आजहू जा भाषा की साहित्यिक उपलब्धि काऊ तरँ तेऊ कम नाँय एँ, वाकी चिन्ता और साज संवारि करिबे वारौ कोउ नाँय एँ ई कैसी आश्चर्य की बात एँ।

कितने ई महानुभावन के मन में सांचे रूप ते ई टीस एँ पर समै के आगें काऊ की पेस नाँय बसाय। स्यात् याही टींस सों कुलबिलाय कें गिरते परते ब्रज साहित्य मण्डल में एक पोत फिरते प्राण प्रतिष्ठा करिबे कौ सङ्कल्प लैकें बाबू वृन्दावन दास जी ने अपने एकाकी प्रयत्न सों 'ब्रजभारती' कौ पुनरुद्धार कछू साल पहलें कियौ और वाके माध्यम ते एक वेर फिरते टूटी भई कड़ीन कूँ जोरिकें सुदृढ़ शृङ्खला निर्माण करिबे के ताँई आगे आए। अपने सेवामयी जीवन काल के या उत्तरार्ध में जा तीव्रगति और लगन के सङ्ग वे लगि रहे यें ऊ वस्तुतः स्तुत्य एँ। उनको अदम्य आशावाद मण्डल के भवन कूँ लैबे के ताँई कृत संकल्प एँ। उनके प्रयासन सों सहयोग की दिसान के दरवाजे ऊ खुलन लगे एँ और कछू नांय तौ इतनौ तौ भयौ ई एँ कै ब्रजभाषा साहित्य की चिन्ता करिबे बारौ एक संगठन एक पत्रिका के माध्यम सों सांस तौ लेन लग्यौ एँ। पर खाली इतने तेई तो समस्या कौ समाधान नाँय होय।

आजकल साहित्यिक संस्थान की साधनहीनता कौ सबकूँ पतौ एँ। फिर इन संस्थान में ऊ अब पैसा लगाइबे वारे महानुभाव उँगरियान पै गिनिबे लायक हैं। प्रकाशकन कौ दृष्टिकोण एक दम व्यावसायिक बनि गयौ है। परिणाम ई हैं रह्यौ एँ कै पुरानौ साहित्य लुप्त हों तौ जाय रह्यौ एँ, ब्रजभाषा के साहित्यकार ब्रजभाषा में रचना करिबौ छोड़ते जाइ रहे एँ और जो कछू कर ऊ रहे एँ उनकी कछू रीझ बूझ नाँय एँ।

ब्रजभाषा के रससिद्ध कबि श्रद्धेय पं० अमृतलाल चतुर्वेदी ने बड़े भरे भए हिरदै सों या दशा माऊँ संकेत भर लिख्यौ है कै—"भाषा सों तौ गिरि कें अब ब्रजबोली रह गई है, सोऊ जा दसा में कै इने गिने लोग जाइ भलेंई बोलि लेंइ पर पढ़े लिखिन की तौ मैया मत्ति है। उन्हें ब्रजभाषा बोलवे में, आपस में ऊ, सरम लगति है। तौऊ जाकौ उद्धार तौ करनोई है। जि बात ठीक है कै बोली रोई भाषा बन्ति हैं पर जो भाषा सौं बोली रहि जाय तब का कर्‌यौ जाय। जाके लए भगीरथ प्रयत्न करनौ परैगौ। जाकें जएँ शुद्ध प्रचार बुद्धि सों प्रेरित हैं कें काम करनौ है, वानिज्य बुद्धि सों काम नहीं बनेगौ।" (ब्रजभारती-वर्ष २३ अङ्क-२)

या सामूहिक आत्मविनाश कूँ रोकिबे के तांई बड़ौ भारी बांध लगानौ पड़ैगौ। अब तक कौ जो ह्वैभयौ है, वाते उठिबे के ताँई सबकूँ एक सङ्ग प्रयत्न करिनौ परेगौ तबई जायकें हम अपनी या राष्ट्रीय सांस्कृतिक व साहित्यिक धरोहर कूँ चिर स्थायी बनाइ सकिगे।

या सम्बन्ध में मेरौ विनम्र निवेदन है कै निम्नांकित सुझावन पै ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष और अन्य विद्वान महानुभाव विचारि करिकें कछू क्रियाशील होइबे की दिशा में सचेष्ट हुँगे—

१. लखनऊ के हिन्दी भवन में ब्रजभाषा साहित्य कौ कक्ष होय—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अबई तक कहूं भी ऐसो कोई श्रेष्ठ साहित्यिक संग्रहालय नांय विकसित ह्वै सक्यो है जहाँ पै ब्रजभाषा को सम्पूर्ण साहित्य संग्रहीत है कैं विधिवत् रख्यो होय और प्रयोग में आइ रह्यो होय। या अभाव की पूर्त्ति लखनऊ में निर्माणाधीन हिन्दी भवन आंशिक रूप से करिसकै एँ। ब्रजभाषा हिन्दी की मान्य सहभाषा एँ और उत्तर-प्रदेश में वाको एक विशिष्ट स्थान एँ। उत्तर-प्रदेश सरकार लखनऊ में एक भव्य पाँच मञ्जिलो भवन २७ लाख रुपैयन की लागत सौं बनबाय रई एँ, जाको शिलान्यास ऊ है चुक्यो एँ। ई एक भौत ई प्रसन्नतादायक पग एँ। आवश्यकता या बात की एँ कै ब्रज के विद्वान, साहित्यकार, पत्रकार और समस्त साहित्यिक व सांस्कृतिक संस्थान के अधिकारीगण मुख्य मन्त्री महोदय और प्रदेशीय प्रशासन के अन्य सम्बन्धित अधिकारी महानुभावन ते जोर डारिकैं हिन्दी भवन में एक ब्रजभाषा साहित्य कक्ष की स्थापना करामें जो ब्रजभाषा साहित्य सग्रहालयको एक लघु रूप होय। सौभाग्य ते या समै प्रदेशीय प्रशासन में माननीय श्री लक्ष्मीरमण जी आचार्य वित्तमत्री एँ जिनको ब्रज की साहित्यिक गतिविधीन तें सदा तेई वड्यो घनिष्ट सम्बन्ध रह्यो यै। उनके प्रयास सौं या विषय में सफलता मिलिजाय तो ब्रजभाषा की प्राचीन पाण्डुलिपीन के अन्वेषण, संरक्षण, शोध, सम्पादन व प्रकाशन के अवरुद्ध द्वार खुलि जाँय।

२. उदयपुर में मीरा भवन में ब्रजभाषा साहित्य को कक्ष होय—

राजस्थान में ब्रजभाषा को भौतसाहित्य ना केवल देसी रजवाड़ेन के पुस्तकालयन में वरन् गाम-गाम में भर्यो पर्यो एँ। श्री कृष्णप्रेम में मदमाती मीरा ब्रजनन्दन और ब्रज की महिमा विस्तार में राजस्थान की अग्रणी भक्त रही एँ। उनकी पावन स्मृति में बनाए जाइबे वारे भवन में ब्रजभाषा के राजस्थानी सादित्य को एक कक्ष अवश्य होनो चहिए जामें तद्विषयक समस्त साहित्य संग्रहीत है कै उपलब्ध होय सकै। याते न केबल प्रेम दिवानी मीरा कूँ शाश्वत शान्ति मिलेगी वरन् उनकी उज्ज्वल यश-कीर्त्ति के अनुरूप और भारतीय साहित्य की या महान धरोहर कूँ नष्ट होइबे तें बचारबे के तांई एक महान प्रयास होइगो। या सम्बन्ध में माननीय श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय को सहयोग भौत कछू प्रतिफलित है सकै एँ।

ब्रज क्षेत्र के समस्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय अपनी अपनी सुविधानुसार प्रति वर्ष अपने विद्यालय की वार्षिक पत्रिका (मैगजीन) प्रकाशित करैं एँ। ई भौतई आवश्यक एँ कै उन पत्रिकान में कम ते कम एक तिहाई पृष्ठ ब्रजभाषा में कविता, निबन्ध, वार्त्ता, संस्मरण, कहानी, एकांकी और गद्यगीत लिखिबे के तांई प्रोत्साहन दियो जाय अनिवार्य रूप ते प्रत्येक पत्रिका में ब्रजभाषा को कछू न कछू अंश अवश्य होय। पद्य की अपेक्षा गद्य लिखिबे की ओर ज्यादा ध्यानदियो जाय तो याते एक तो ब्रजभाषा गद्य के मांऊ जो उपेक्षा को भाव बनि गयो एँ, ऊ दूरि होइगो। दूसरे, जा भाषा एँ हम दिन रात अपने घरन में बोलें एँ वाकी महत्ता को अनुभव सामाजिक रूप ते होयगो और वाही भाषा में अपने अपने जनपद की सांस्कृतिक झलक साहित्यिक रूप ते उभरकैं ऊपर आवैगी। तीसरे, जो साहित्यकार ब्रजभाषा में रचना करि रहे एँ, उनकूँ प्रोत्साहन मिलैगो। चौथे, ब्रजभाषा के भिन्न-भिन्न रूप सम्मुख आमिगे और पारस्परिक सांमजस्य ते एक साहित्यिक रूप को विकास गद्य के क्षेत्र में होइगो और पाँचवे, राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास मै एक प्रभावशाली योगदान होइगो जाते ऊ जनभाषा के रूप में अधिक ते अधिक ग्राह्य बन सकैगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानस में तापस प्रसंग

(श्री उदयशङ्कर 'शील', एम. ए. साहित्यकुटीर दतिया)

रामचरित मानस में 'तापस प्रसङ्ग, एक ऐसा प्रसङ्ग है जिसके सम्बन्ध में विद्वान् एक मत नहीं। कुछ लोग इस प्रसंग को स्वयं गोसाईं जी कृत तथा कुछ लोग क्षेपक मानते हैं। यमुना तीर पर श्री राम-सीता-लक्ष्मण-निषाद के पहुँचते हो तीर वासी उनके दर्शन की कामना से अपने गृह-कार्यों को छोड़कर दौड़ पड़ते हैं। श्रीराम को तपसी के वेश में देखकर सब दुःखी हो उठते हैं। इतने में ही वहाँ एक तापस आ जाता है—'तेहि औसर एक तापसु आवा।' कथा का प्रवाह इसी अर्द्धाली के साथ ठहरकर एक नया मोड़ ले लेता है। तापस था कौन—जो बीच में एकाएक आ जाता है और कुछ क्षण के बाद उसका कोई वृतांत ज्ञात नहीं होता है। इस पर विद्वानों ने अपना-अपना अलग अभिमत दिया है।

कुछ विद्वान इस तापस को अग्नि, कुछ लोग कामदगिरि, कुछ लोग अगस्त्य ऋषि का शिष्य तथा कुछ लोग स्वयं गोसाईं तुलसीदास मानते हैं। कहना न होगा कि 'तापस' स्वयं में एक विवाद है। इसी कारण से आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि "जो जिसके मन में आता है—बताते हैं।"[1] यही बात इस प्रसंग के सम्बन्ध में भी है। कुछ लोग इसे क्षेपक मानकर मानस में स्थान देना उपयुक्त नहीं समझते हैं। इसके ठीक विपरीत विद्वान् इस प्रकरण को स्वयं गोसाईं जी द्वारा लिखित मानकर इसे मानस में स्थान देना आवश्यक मानते हैं। वैसे विचार-पूर्वक देखा जाये तो मानस में तापस प्रसंग' की कोई आवश्यकता ज्ञात नहीं होती। यह प्रसंग बीच में घुसा है और अयोध्या काण्ड जैसे योजनागत वैशिष्ट्य से युक्त एवं सुसम्बद्ध सोपान में तापस प्रकरण जैसा शिथिल प्रसंग पूरे सोपान की सुन्दरता को चौपट कर देता है।

'तापस प्रसंग' को मानस में स्थान प्राप्त होने का एक ही सबल आधार है और वह है—सभी प्रामाणिक मानस की प्रतियों में यह प्रसंग मिलता है। अपनी प्राचीनता के ही कारण यह प्रसंग मानस में गृहीत है। वैसे इस प्रसंग को मानस में रखने का कोई औचित्य नहीं। तापस प्रसंग पूर्णतः क्षेपक है और गोस्वामी जी की मृत्यु के बाद किसी क्षेपक कर्ता ने इसकी रचना कर इसे रामचरित मानस में मिला दिया होगा। यहीं कारण है कि कालान्तर में तैयार की गयी मानस की कुछ प्रतियों में तापस प्रसंग की कथा का सविस्तार वर्णन हमें मिलता है और इस वर्णन से तापस था कौन, इस विवाद का निराकरण तो हो ही जाता है, साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रसंग क्षेपक है। तापस प्रसंग की पूरी कथा लिखने के पूर्व यह बता देना आवश्यक है कि यह प्रकरण हमें मानस की एक हस्तलिखित प्रति में मिलता है जिसका लिपिकाल सम्वत् १८५१ विक्रमी है और जो रामप्रसाद कायस्थ के पुत्र श्री आत्माराम कायस्थ द्वारा

१—गोसाईं तुलसीदास पृ० १७३, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भृगुआश्रम (बलिया—उ० प्र०) में बसन्तपुर निवासी श्री मनसा राम के पुत्र श्री भगतराम के पठनार्थ तैयार की गयी थी। बालकांड की पुष्पिका द्रष्टव्य है "इति श्री राम-चरित्र मानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल विज्ञान संपादनो नाम प्रथम सोपानम् ।१। समाप्त ।। सुभ सम्वत् १८५१ समै नाम आस्विनि कृष्णा पञ्चम्यां रविवासरे विलिष्य श्री आत्माराम स्यात्मज रामप्रसाद कायस्थ मुकाम भृगु आश्रम पाठार्थक भगतराम सुत बाबू मनसा राम कै मा. बसन्तपुर कल्यानं करोति श्री सुभमस्तु सुभं ।।"[1] यह प्रति भारी भरकम है और मानस की प्रकाशित प्रतियों से दुगुनी नहीं तो डेढ़गुनी अवश्य है। इस मानस की प्रति में त्रिविध नये प्रसंगों का समावेश हुआ है। अयोध्याकांड के अन्तर्गत ही निम्नाङ्कित पाँच नये प्रसंग मिलते हैं—

१—भरत के ननिहाल की कथा।

२—धनमुख केतु की लड़ाई तथा उसका वध।

३—तापस की कथा।

४—वाल्मीकि मुनि के पूर्व जन्म कथा।

५—अन्धी-अन्धा की कथा।

इन कथाओं का वर्णन इस ढंग से हुआ है कि सहसा इन्हें क्षेपक कहने में संकोच होता है क्यों कि अब तक प्रकाशित मानस की क्षेपक युक्त प्रतियों में तथा इस प्रति की वर्णित कथाओं में अन्तर है। चार चौपाई के बाद एक दोहा, सोरठा या छन्द का विधान इसमें अपनाया गया है जो अयोध्या काण्ड के अनुरूप है। इसमें वर्णित तापस कथा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—"यमुना तट पर अवस्थित ग्रामवासी श्री राम-सीता-लक्षमण को तापस वेश में देखकर बहुत दुःखी होते हैं। इसी समय वहाँ एक तापस आ जाता है। वह थोड़ी अवस्था का है तथा भगवान राम के चरणों में उसकी दृढ़ भक्ति है। उसकी अतिशय प्रीति देख कर राम वट वृक्ष की शीतल छाया में बैठ गये। उनका संकेत पाकर निषाद कंद-मूल-फल लाता है। रघुकुल मणि उस तापस को, जो मालवमुनि का पुत्र था, अपने पास बिठा लेते हैं और उसे कन्द-मूल-फल का आहार कराते हैं। पश्चात् शयन हेतु लक्ष्मण और निषाद साथरी डँसाते हैं। श्री रामचन्द्र ने तापस को एक साथरी पर बिठाया और दूसरे पर स्वयं आसीन होकर तापस की दृढ़ शिव भक्ति की सराहना करने लगे। श्री राम ने गालत्र पुत्र की भक्ति से प्रसन्न होकर उसे वरदान माँगने के लिए कहा—किन्तु तापस ने वरदान न माँगकर श्री राम की स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी। उसने अन्त में कहा—हे नाथ! मैंने अपने पिता से सुना है कि आपके (राम) समान कोई नहीं है।" और पुनः वरदान माँगता है—

"मन क्रम चहौं न आन, श्रीपति सीता लखन जुत।
मम उर दृढ़ अस्थान, करौं सर्व सुर सीसमनि ।।"

ऐसा कहकर गालव पुत्र श्री राम के चरणों में लिपट गया। राम ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया और "एवमस्तु मन वांछित तोरा।" कहकर सांत्वना दी।

१—मांनस की यह हस्तलिखित प्रति लेखक के संग्रह में है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इतने में सूर्यास्त हो जाता है। श्री राम, लक्ष्मण सहित संध्या वंदन करते हैं। सब लोग कन्द-मूल-फल का आहार करते हैं। श्री राम पौराणिक कथाएँ सुनाते हैं। कथा कहते-कहते दो घड़ी रात बीत जाती है। श्री राम गालव पुत्र, लक्ष्मण और निषाद को शयन करने की आज्ञा देते हैं और स्वयं सीता सहित शङ्कर-पार्वती का ध्यान कर विश्राम करते हैं।

प्रातः काल सब लोग यमुना में स्नान करते हैं। नित्य क्रियादिक के बाद राम ने गालव पुत्र को जाने की आज्ञा दी। राम के इस प्रकार का निदेश पाकर गालब पुत्र (तापस) विह्वल हो उठा—

'हिमकर सहिस नाथ मुख बानो।
सुनत जलज जिमि सो मुनि ज्ञानी॥'

मुख सुखेउ उर दाह अति, जुगल नैन भरि वारि।
परेउ राम पद कमल गहि, वटु वपु दसा विसारि॥

श्री राम ने गालव पुत्र को हृदय से लगा लिया और अपनी भक्ति प्रदान की तथा उसे पुनः घर जाने को कहा। तापस ने अति विनीत भाव से भगवान राम से निवेदन किया—

प्रभु संग तजि आश्रम केहि हेतु।
जाइ कहहु दिनकर कुल केतू॥

श्री राम ने गालव पुत्र को यह आश्वासन देकर विदा किया कि "जब मैं द्वापर में श्री कृष्ण रूप में अवतरित होऊँगा तो तुम भी मेरे पुरोहित रूप में जन्म लेकर सदैव मेरे साथ रहोगे।" स्वयं श्री मुख से प्राकट्य की बात सुनकर गालब पुत्र बहुत प्रसन्न हुआ और अपने आश्रम को चला गया। यह तापस पूर्व-जन्म में दक्ष था। शङ्कर ने उसे वरदान दिया था कि 'गालव मुनि के पुत्र रूप में जब तुम्हारा जन्म होगा, तब श्री राम का दर्शन करोगे।' इस समय वहीं दक्ष गालव मुनि का पुत्र हुआ और तापस वेश में भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुआ।

तापस प्रसंग की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं। गालव पुत्र (तापस) यमुना तट पर श्री राम की स्तुति करता है—

लोचन सजल निमेष नेवारी। विमल बुधि उमगी अतिभारी।
बोले वचन परम मतिधीरा। जै प्रनतारत हर रघुबीरा।

जै जै सीअवर देव उदारा। भुज विशाल भञ्जन भुअ भारा।
जै वदनाम्बुज सहज सोहाऐ। राकापति सत कोटि लजाऐ।

जटा जूट सिर परम पुनीता। जै सुरेश गुन ग्यान अजीता।
नर नागर आगर सुभ करनो। जै पालन सुरभी सुर धरनी।

छन्द—धरनी सवै जगदीस भृकुटी कुटिल सोक नसावनं।
जै तरुन अरुन सरोज निर्मल नैन मैन लजावनं॥

सुख सींव सुषमा सींव अगनित केकी कंठ विमोहहीं।
उर रुचिर विप्र पदाब्ज संजुत मनिक उस्तुभ सोहहीं॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तनस्याम उपमाधाम पूरनकाम अधम उधारनं।
परमातमं जै जगदातमं जै जै श्री राम भौ भै दारनं।।

जै जैति निर्गुन रूप सगुन सरूप गो द्विज कारनं।
भै प्रगट अनुज समेत कृपानिकेत विपिन विहारनं।।

सोरठा—मुनि पद सरिस सुवेषु कटि तूनीर कर चाप सर।
वरनि सकहि नहि सेस एह छबि तुलसी हिय वसै।।

तापस प्रसंग की अन्तिम पंक्तियाँ जो प्रसंग का अन्त करती हैं और कथा को सम्बद्ध करते हुए प्रसंग को आगे बढ़ा देती हैं, निम्न हैं—

चौपाई—'तापस रघुवर मिलन कहानो। परम रुचिर जे मन क्रम वानी।।
कहत सुनत मन मोद बढ़ावहि। ते नर नारि परम सुख पावहिं।।

छन्द-पावहिं परम सुख मूल रघुवर चरन भक्ति सोहावनी।
छल विगत जेन्हकै हृदये प्रीअ रघुनाथ कीरति पावनी।।
अस जानि सिखवन मानि कलिमल पुञ्ज कपट दुरावहू।
मन मुदित तुलसीदास निति सिय राम पद ल लावहू।।

दोहा-कुघरपती जाना सुता ताप तीजा अनुकूल।
तासु हृदय प्रिय हरि चरित्र, मानस मङ्गल मूल।।

चौपाई—हरि चरित्र सुन्दर पुनि ताता। कहौं सुमिरि त्रैलोक विधाता।
लखन राम सीस जमुनाकूला। राजन उपमा परम अतूला।
रवि तनुजा तट ग्राम नेवासी। बनिता पुरुष धरम गुन रासो।
बाल जुआन जठर तजि गेहू। प्रभु ढिग आइ समेत सनेहू।
हेतु समुझि लोचन फल पावहिं। ऐक ऐक सन इहै सुनावहि।
ते पितु मातु बहुत घटि कैऊ। जिन्ह ऐसे बालक वन दैऊ।
राम लखन सिअ चरन निहारी। सोच सनेह विकल नर नारी।
समुझि करम गति धीरज भैऊ। प्रभु सङ्ग मन दै ते गृह गैऊ।

दोहा-तब रघुवीर अनेक विधि सखहिं सिखावन दीन्ह।
राम रजायसु सीस धरि भवन गवन तिन्ह कीन्ह।।

इस प्रकार नवोपलब्ध प्रति में आलोच्य प्रसंग अधिक परिवर्धित रूप में है और इससे तापस का स्पष्टीकरण ऋषि गालव के पुत्र से होता है। किन्तु, जब तक परिवर्धित पाठ की प्रामाणिकता का परीक्षण नहीं हो जाता तब तक उसे निर्णयात्मक रूप में स्वीकार कर लेना संगत नहीं है। तुलसी साहित्य के अध्येताओं को इस संदेहास्पद प्रसंग पर फिर से विचार करना आवश्यक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रज साहित्य की एक विभूति—

"कवयित्री ताज"

(श्री परमानन्द पांचाल एम० ए०, पो० जंगपुरा, नई दिल्ली–१४)

ब्रज साहित्य की अभिवृद्धि में न केवल मुस्लिम कवियों का ही योगदान रहा है, बल्कि अनेक मुस्लिम कवयित्रियों ने भी इस साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया है। कृष्ण भक्ति कवियों में जहाँ हम 'रसखान' जैसे रससिक्त कवियों को 'कोटिन' कलधौत के धामों को भी ब्रज कुञ्जन के करीलों पर वारते हुए पाते हैं, वहाँ ताज जैसी कवयित्री को भी हम यहाँ तक कहते हुए सुनते हैं—

"नन्द के कुमार कुरबान तोरी सूरत पै, न्वाढ़े नाल प्यारे हिन्दवानी ह्वै रहूंगी।"

मीरा की भाँति ही कृष्ण के चरणों पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाली, धर्म तथा जाति के कृत्रिम बन्धनों को तोड़कर स्वच्छन्द रूप से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाली इस महान कवयित्री के जीवन के विषय में अभी तक भी विद्वानों में मत-भेद है। वैसे तो शिवसिंह सरोज में भी इनका उल्लेख मिलता है, किन्तु वहाँ इनका वर्णन कवियित्री रूप में ही किया गया है। शिवसिंह सरोज के अनुसार 'ताज' का जन्म सम्बत् १६५२ है। मुन्शी देवी प्रसाद ने इनका परिचय स्त्री रूप में तो दिया है किन्तु उन्होंने इनके जन्म को सम्बत् १७०० के लगभग माना है। पण्डित झाबर मल शर्मा ने अपने एक लेख 'क्याम खानी नवाब अलम खाँ और उनकी हिन्दी कविता' में उल्लेख किया है कि 'ताज' नवाब फदन खाँ की पुत्री थी और अकबर से उसका विवाह हुआ था, किन्तु ठोस प्रमाणों के अभाव में इसे स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने ताज कृत एक पुस्तक 'बीवी बांदी का झगड़ा' खोज निकाली है। यदि हम यह मान लें कि यह कृति 'ताज' की ही है तो इससे यह सिद्ध हो जाता है कि ताज सं० १७२१ ई० में जीवित थी क्योंकि यह रचना सं० १७२१ पूर्व मानी जाती है। ऐसी स्थिति में ताज का अकबर के समकालीन मानना ही निराधार हो जाता है। डा० आनन्द स्वरूप पाठक ने भी आकाशवाणी से प्रसारित अपनी एक वार्ता में 'बीबी बांदी के झगड़े' को ताज कृत ही माना है। इसकी पुष्टि में उन्होंने ताज का निम्न उद्धरण दिया है—

आगम बाद हाँसी सुनि आवे, रोवत मानस 'ताज' हँसावे।

डा० सावित्री सिन्हा ने श्री गोविन्द गिल्ला भावे के निम्न पत्र का उद्धरण दिया है जिससे उनके जीवन पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। गोविन्द गिल्ला भाई ने यह पत्र श्री निर्मल जी को लिखा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"ताज नाम की एक मुसलमान स्त्री कवि करौली ग्राम में हो गई है। वह नहा धोकर मन्दिर में भगवान का नित्य प्रति दर्शन करती थी, इसके पश्चात् भोजन ग्रहण करती थी, किन्तु एक दिन वैष्णवों ने उसे विधर्मिणी समझ कर मन्दिर में दर्शन करने से रोक दिया। ताज उस दिन उपवास करके मन्दिर के आंगन में ही बैठी रह गई और कृष्ण का नाम जप करती रही। जब रात हो गई तब ठाकुर जी स्वयं मनुष्य का रूप धारण कर भोजन लेकर ताज के पास आये और कहने लगे, तूने आज जरा-सा भी प्रसाद नहीं खाया, ले अब इसे खा।....प्रातः काल जब सब वैष्णव आए, तो ताज ने सारी बातें उनसे कह सुनाई। ताज के सामने भोजन का थाल देखकर वे अत्यन्त चकित हुए। वे सभी वैष्णव ताज के पैरों पर गिर पड़े और क्षमा प्रार्थना करने लगे। तब से ताज प्रति दिन भगवान के दर्शन करके प्रसाद ग्रहण करने लगी। पहले ताज मन्दिर में जाकर ठाकुर जी का दर्शन कर आती थी तब और दूसरे वैष्णव दर्शन करने जाते थे।

'ताज परम वैष्णव और भगवद भक्त थी। ठाकुर जी की कृपा से वह भक्त हो गई। जब मैं करौली गया था तब अनेक वैष्णवों के मुँह से मैंने यह बात सुनी थी, वहीं मैंने इनकी अनेक कविताएं भी सुनीं। उसी समय इनकी कितनी ही कवितायें मैंने लिख भी ली थीं। ताज की दो सौ कवितायें मेरे हाथ की लिखी हुई मेरे निजी पुस्तकालय में हैं।'*

उक्त पत्र के अनुसार ताज करौली ग्राम की निवासिनी थी और उसका जन्म एक मुस्लिम परिवार में हुआ था। ये कृष्ण की अनन्य भक्त थी। कृष्ण भक्ति भावना से ओत प्रोत, इसकी वाणी ही काव्य रूप में मुखरित हो उठी। अन्तर्भावना को शब्द मिलते ही कविता कामिनी थिरक उठी। ताज गुन-गुनाने लगी—

"छैल जो छबीला सब रङ्ग में रङ्गीला
बड़ा चित का अड़ीला कहूँ देवतों से न्यारा है।
माला गले सोहे नाक मोतीसेत सोहे कान
कुण्डल मन मोहे लाल, मुकट सिर धारा है॥
दुष्ट जन मारे सब, सन्त जो उबारे 'ताज'
चित्त में निहारा प्रन प्रीतिकरन वारा है।

कृष्ण के छैल छबीले रूप का वर्णन करने के अतिरिक्त, ताज की एक विशेषता यह भी है कि वह भारतीय परम्परा के अनुसार गणेश की स्तुति भी करती है—

'गण-पति गण सिरताज है, तुम्हें नमाऊं शीश।
ज्ञान देव पूरण हमें, जानेगे सुत ईश॥

ताज की कविता में माधुर्य है, प्रेम है, श्रद्धा है, शृङ्गार है, किन्तु वह दैहिक न होकर अपार्थिव है। कृष्ण की महिमा से वह पूर्णतया परिचित है। उनके पराक्रम को देख वह आश्वस्त है कि उसका उद्धार करने वाला कृष्ण तो उसका अपना है।

* मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ पृष्ठ १८६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय दर्शन, इतिहास और संस्कृति से वह पूर्णतया परिचित थी। गीता में उल्लिखित "कर्म-वाद" के प्रति भी उसे पूर्ण निष्ठा थी। कर्म की महिमा विषयक उसका यह सवैया देखिए—

कर्म सो बुद्धि हूँ ज्ञान मुनै अरू
कर्म सो चातक स्वाति जो पीवे।
कर्म से जोग अरु भोग मिले,
अरु कर्म सो पङ्कज नीर न छीवे॥
कर्म सो 'ताज' मिले सुख देह की,
कर्म सो प्रीति पतंग ज्यु देवे।
कर्म के यों ही अधीन सबै,
अरु कर्म कहू के अधीन न हौवे॥

ताज अन्ध विश्वासिनी कदापि नहीं थी। धर्म के अनेक मिथ्या आडम्बरों के प्रति भी वह सजग है। वेद पुराण और गंगास्नान से भी बढ़ कर उसे नन्द कुमार श्री कृष्ण पर ही अधिक आस्था है—

"काहू को भरोसो वेद चारहू जो पढ़ै होत,
काहू को भरोसो गङ्गा न्हाए सहस्र धार को।
काहू को भरोसो सब देवन को पूजे ताज,
काहू को भरोसो विधि शङ्कर उदार को॥

× × ×

तारन तरन कृष्ण सुने जो जहान बीच।
मो को तो भरोसो एक नन्द के कुमार को॥

ताज का काव्य—

ताज कृष्ण काव्य की कवयित्री हैं। उसके काव्य में प्रेम है, समर्पण है। कृष्ण के प्रति उनकी अगाध भक्ति उन्हें मीरा के समक्ष ले जाती है। कृष्ण काव्य के अधिकांश लेखकों से जहां पद शैली का अनुसरण किया है, वहां ताज ने कवित्त और सवैया शैली को ही अपने काव्य का माध्यम बनाया है जिसमें उसे आशातीत सफलता भी मिली है। एक साधारण मुस्लिम महिला के लिए यह बहुत गौरव की बात है। काव्य कला की कसौटी पर उनके काव्य की उद्‌भुत सफलता निश्चय ही एक महान उपलब्धि है।

उनके काव्य में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, सन्देह, भ्रांति तथा उदाहरण जैसे अनेक अलंकारों का समावेश मिलता है। अनुप्रास उपयुक्त शब्दों का चयन देखते ही बनता है,

'देखे बिना चन्द के चकोर चित चाय रहे।'

उत्प्रेक्षा अलकार का एक सुन्दर निर्वाह भी यहाँ दृष्टव्य है, देखिये—

नेकु विहाय न रैन कछु, यह जन भयानक मार भई है।
मौन में भानु समाज सुदीपक अंगन में मनो आगि दई है॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताज के काव्य में जहाँ कृष्ण के प्रति अलौकिक प्रेम की व्यञ्जना है वहाँ कहीं-कहीं लौकिकता के भी दर्शन होते हैं। उनका कवि हृदय, अपने अलौकिक अराध्य देव की दिव्य भाव-भंगियों का पार्थिव चित्रण कर बैठता है, जो प्रायः उत्तर कालीन भक्त कवियों के काव्य में रीति-कालीन शृङ्गारिक चित्रण का बीज रूप ही है। कल्पना, भाव तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से ताज के अनेक कवित्त बेजोड़ बन पड़े हैं। उनकी प्रौढ़ भावनायें, प्रांजल भाषा तथा परिष्कृत शैली, अलंकारों के योग से एक अद्भुत चित्रण प्रस्तुत करती हैं। प्रतीक्षा की लम्बी घड़ियों और सूने भवन में जलते हुए दीपक का आलोक प्रेमी के अंगों को प्रचण्ड सूर्य की भांति जलाता है। देखिए :—

चैन नहीं मन में, मलीन सूनैन भरे जल में न तई है।
ताज कहे पर्यंक यों बाल, ज्यों चेप की माल बिलाय गई है ।।
नेकु विहाय न रैन मधु, यह जान भयानक भार भई है।
भौन में भानु समान सुदीपक, अंगन में मनो आगि दई है ।।

'ताज' की भाषा में प्रधानतः ब्रज भाषा की छटा है। उनके कवित्त और सवैये विशुद्ध ब्रज भाषा में हैं, किन्तु चूँकि ताज पञ्जाब की निवासिनी थी अतः उनकी भाषा में 'त्वाढ़े नाल' जैसे पञ्जाबी शब्दों का समावेश होना स्वाभाविक ही है। फारसी शब्दों की वर्तमानता का कारण भी सहज सम्भाव्य है, क्योंकि इनका आरम्भिक जीवन इस्लाम के वातावरण में गुजरा था।

'सुनौ दिल जानी, मेरे दिल की कहानी।
तुम दस्त की विकानो, बदनामी भी सहूँगी में ।।

इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में "वहिश्त"[1] "कुरवान" जैसे अनेक शब्दों का समावेश है।

प्रीतम प्रवीन सुनौ कहूँ कै बेर तुम्हें,
मित्र का मिलाप 'भिस्त' की निशानी हैं।

खेद है कि कृष्ण काव्य की इन महान कवयित्री का काव्य अभी उपेक्षित ही पड़ा है। इनकी यत्र तत्र बिखरी पड़ी रचनाओं का सङ्कलन किया जाना बहुत ही आवश्यक है। हिन्दी साहित्य मनीषियों के लिए 'ताज' के काव्य की उपेक्षा एक चुनौती नहीं तो क्या है? डा० सावित्री सिन्हा के शब्दों में 'यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि ताज अपने युग की एकमात्र सचेष्ट कलाकार थी। मीरा की अनुभूतियों की प्रखरता ही कला बन गई थी, उनकी भावनाओं के अजस्र श्रोत के प्रवाह में सुन्दर-मुक्ताएँ मिलती हैं परन्तु ताज की अनुभूतियाँ उनकी प्रतिभा तथा कला के स्पर्श से कुन्दन बन गई हैं।[2]

१—बहिश्त (स्वर्ग)।

२—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ पृष्ठ १९३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय संगीत को ब्रज वसुन्धरा की देन

(श्री राधामोहन दास गुप्त, कानपुर)

भारतीय संस्कृति में पुरातन युग से संगीत का अपना महत्व है। वैदिक काल में ही सामवेद के कारण संगीत का गौरवपूर्ण स्थान था। उसका अस्तित्व वेद से भी पूर्व का माना गया है। नाद को कण्ठ से या वाद्य यन्त्रों से प्रकट करते हैं। अन्य शास्त्रों की तरह 'सङ्गीत शास्त्र' भी भारतीय ऋषियों की परिपक्व बुद्धि का परिचायक है। नाट्य-शास्त्र और काव्य-शास्त्र की तरह सङ्गीत के भी प्रथम आचार्य होने का गौरव महामुनि भरत को ही प्राप्त है। भरत मुनि के 'नाट्य शास्त्र' में गायन, वादन और नृत्य तीनों कलाओं का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। स. १२१५ वि. के लगभग देवगिरि में शारङ्ग देव नामक सङ्गीत के एक सुप्रसिद्ध आचार्य हुए, जिनका रचा हुआ 'सङ्गीत रत्नाकर' सङ्गीत शास्त्र का प्रमाणिक ग्रंथ माना जाता है।[1] वर्तमान समय में हमारे सामने उस युग के संगीत का यथार्थ स्वरूप जानने का कोई भी साधन नहीं है। मुसलमानी युग में प्राचीन संगीत-ग्रंथ नष्ट कर दिये गये। जो ग्रंथ आज कल प्राप्त हैं, उनको भी बहुत समय तक विद्वानों ने कण्ठस्थ कर सुरक्षित रखा और अवसर पाकर इन ग्रंथों को फिर लिपिबद्ध कर लिया गया, किन्तु इन उपलब्ध ग्रंथों से प्राचीन 'हिन्दू संगीत' की यथार्थ रूप-रेखा ज्ञात नहीं होती है।

ध्रुपद और धमार की गायकी को प्रसारित करने का श्रेय अखिल रसामृत सिन्धु श्री श्यामा-श्याम के नित्य विहार के अमर गायक श्री वृन्दावनस्थ निधुवन निकुञ्जवासी रसिक-अनन्य-नृपति स्वामी श्री हरिदास जी महाराज को ही था। कहते हैं—उनके समक्ष समस्त राग रागिनियाँ आज्ञा की प्रतीक्षा में प्रत्यक्ष खड़े रहते थे। 'दीपक' गाने पर दीप जल उठना, 'मेघ' गाने पर पानी बरसना, 'श्री' गाने पर बसंत की बहार छा जाना, यह तो उनके संगीत के सामान्य परिणाम थे। इनमें 'दीपक' को सिद्धि तानसेन को, 'मेघ' की बैजू बाबरा को और गोपाल नायक को 'मालकोष' की सिद्धि देने की कथा तो लोक में प्रसिद्ध है ही।[2] निःसदेह उनका संगीत दैवी संगीत था और उनमें अनन्त शक्ति थी। तानसेन द्वारा स्वामी श्री हरिदास के अद्भुत संगीत की प्रशंसा सुनकर सम्राट अकबर को उनसे मिलने की प्रबल उत्कण्ठा हुई थी। अपनी उत्सुकता की पूर्ति के लिये सम्राट अकबर छद्मवेष में तानसेन के साथ उसके खवास के रूप में वि० सं० १६२७ में वृन्दावन आया था।[3] वहाँ पर उसे श्री स्वामी जी के मुख-कमल से गायन सुनने का सुयोग प्राप्त हुआ, जिसे वह सुनकर कृत-कृत्य हो गया। उनका गायन उनके उपास्य 'श्री श्यामा-कुञ्ज-बिहारी' के लिए था। वे किसी भी दशा में राजा महाराजा को अपना संगीत सुनाना पसन्द नहीं करते थे।

१—अष्ट छाप-परिचय; लेखक श्री प्रभुदयाल मीतल, पृष्ठ सं० ३५२।

२—धर्म (१ नवम्बर, १९५३ ई०), पृष्ठ सं० १५,

३—गर्जेटियर आफ मथुरा, पृष्ठ सं० १९१,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय संगीत का समग्र रूप ब्रज का रास है और यहाँ पर रास की अत्यन्त प्राचीन परम्परा रही है।[1] ब्रज के लोक नाट्य 'रासलीला' को नवीन रूप में पुन: प्रचलित करने का श्रेय श्री घमण्ड देव, श्री नारायण भट्ट, स्वामी श्री हरिदास, गोस्वामी श्री हित हरिवंश और श्री बल्लभाचार्य जी को है। संगीत शब्द में गायन, वादन और नृत्य इन तीनों का समावेश होता है। इन तीन कलाओं के समुच्चय का नाम संगीत है। स्वामी श्री हरिदास जी इन तीनों कलाओं में पारंगत थे। उनकी रचनाओं में गायन, वादन और नृत्य से सम्बन्धित अनेक परिभाषिक शब्द वाद्य यन्त्रों के नाम और बोल तथा नृत्य की अनेक मुद्राओं और तालों के संकेत मिलते हैं। आपके प्रामाणिक १२८ ध्रुपद माने जाते हैं। इसमें १८ 'सिद्धांत के पद' और ११० 'केलिमाल' के नाम से प्रसिद्ध हैं, जो संगीत की ध्रुपद शैली में गायन करने योग्य हैं।

भारतीय साहित्य में महर्षि बाल्मीकि के 'रामायण' कालिदास के 'मेघदूत' और महाकवि जयदेव के 'गीत गोविन्द' को गीति-काव्य होने का गौरव प्राप्त है। अपनी संगीत-लहरी और काव्य-माधुरी के कारण 'गीत-गोविन्द' भारतीय गीति-काव्य की अमर कृति मानी जाती है। प्रारम्भ से ही गेय-काव्य की प्रचुरता रही है। चंडीदास, विद्यापति, कबीरदास और गोस्वामी तुलसीदास की पदावली भी हमें गेय-काव्य के रूप में ही मिलती है। वृन्दावन के युगल मधुरोपासक श्री श्री भट्टदेव, श्री हरिव्यास देव, श्री हित हरिवंश, श्री हरिराम व्यास, गोस्वामी श्री राम राय, श्री बीठलविपुल देव, श्री विहारिण देव, श्री नागरी देव, श्री ललित किशोरी देव, श्री रूप सखी, श्री पीताम्बर देव, श्री भगवत रसिक देव, श्री ध्रुवदास, श्री सूरदास मदन मोहन, भक्तिमती मीराबाई, चाचाहित श्री वृन्दावन दास, श्री घनानन्द, कृष्णगढाधिपति, श्री नागरीदास आदि महानुभावों ने विभिन्न राग-रागितियों में श्री युगल की केलि का सरस वर्णन किया है। अष्ट छाप के सभी महानुभाव कीर्तनकार थे और उनकी रचनाओं में काव्य और संगीत का चमत्कार होने के कारण उसमें 'गीति-काव्य' की पूर्णता है। उस समय में गोकुल और गोबर्धन भी संगीत के केन्द्र थे। जहाँ पुष्टि सम्प्रदाय के भक्तों द्वारा कीर्तन के रूप में संगीत की साधना होती थी। इन सभी महानुभावों की रचनाओं में संगीतात्मकता का गहरा पुट आ गया है। गेय पदावली को विषय रस, समय और वातावरण के अनुकूल राग, रागिनियों में बांधा गया है। पदों और शब्दों में माधुर्य, नाद, सौन्दर्य लाने के लिये उन्हें लय और संगीत की सान पर चढ़ाकर खरादा गया और घिसा गया। भाषा की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

१—ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, लेखक श्री प्रभुदयाल मीतल, पृष्ठ सं० ४४६,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कविरत्न श्री हृषीकेश चतुर्वेदी

व्यक्तित्व और कृतित्व

(श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर' झाँसी)

कविरत्न श्री हृषीकेश चतुर्वेदी को कवितायें कई वर्षों से पढ़ता आ रहा था। सन् १९४६-४७ में ज्येष्ठ पुत्र, रामेश्वर प्रसाद के विवाह के अवसर पर आगरा में उन से भेंट भी हुई थी किन्तु उनके निकट सम्पर्क में आने का सुअवसर मिला सं० २०११ विक्रमी (सन् १९५४ ई०) से।

श्री बुन्देलखण्ड रामायण महासभा झाँसी का ३७ वाँ वार्षिकोत्सव, श्रावण शुक्ल सप्तमी सं० २०११ विक्रमी के दिन झाँसी में हुआ था। 'महासभा' के तत्वावधान में हुए 'श्री तुलसी जयन्ती समारोह की अध्यक्षता करने के लिए श्री चतुर्वेदी जी आगरा से झाँसी पधारे थे।

'महासभा' के सञ्चालकों ने इसी समारोह में इस लेखक को स्वर्ण-पदक और 'बुन्देलखण्ड—साहित्य शिरोमणि' की उपाधि सहित अभिनन्दन-पत्र दिया था। यह सब कार्य श्री चतुर्वेदी जी की अध्यक्षता में ही सम्पन्न हुए। पश्चात् अध्यक्ष पद से श्री चतुर्वेदी जी ने सँस्कृत और हिन्दी दोनों ही भाषाओं में अपनी ऐसी चमत्कारिक कवितायें सुनाईं कि उपस्थित जन-समुदाय मन्त्र-मुग्ध से होकर अन्त तक सुनते रहे।

समारोह के पश्चात् और दूसरे दिन भी उनकी कविताओं की यत्र-तत्र सर्वत्र प्रशंसा होती रही। झाँसी से चलते समय श्री चतुर्वेदी ने आगरा आने का सस्नेह निमन्त्रण दिया और अपने संग्रहालय की विशेष चर्चा की।

सं० २०१६ विक्रमी में आगरा जाने और श्री चतुर्वेदी जी का ही अतिथि होने का सुअवसर मिल गया।

लेखक ने देखा कि श्री चतुर्वेदी जी की बैठक में महर्षि अरविन्द, राजर्षि श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन, राष्ट्र कवि डा० श्री मैथिलीशरण गुप्त, कविवर श्री निराला, डा० श्री वृन्दावन लाल वर्मा, श्री गुलाबराय एम० ए० और डा० रामविलास शर्मा के चित्र लगे हुए थे।

संग्रहालय में अनेकानेक विलक्षण वस्तुयें थीं। एक ही चित्र एक ओर से देखने पर एक नेता का जान पड़ता था तो दूसरी ओर से देखने पर दूसरे नेता का।

एक पत्थर था जो जल में नहीं डूबता था। उसको देख कर 'मानस' में वर्णित नल-नील द्वारा सेतु-बन्धु की रचना करने की घटना स्मरण हो आई।

श्री चतुर्वेदी जी की आलमारियाँ इन विचित्र वस्तुओं से भरी पड़ी हैं और साथ में संक्षिप्त विवरण भी दिया गया है। गणित के चार्ट और चमत्कारिक कवितायें बरबस दर्शकों का मन मोह लेती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री चतुर्वेदी जी बड़े ही मनमौजी जीव हैं। अपने कमरे में ही वे टेप रिकार्डिङ्ग मशीन भी रक्खे रहते हैं। उन्होंने लेखक से आग्रह किया कि कोई कविता सुनाए उसने 'बुन्देल खण्ड के कवि' शीर्षक कविता सुनाई जो उनने रिकार्ड कर ली।

श्री चतुर्वेदी जी हँसमुख और अत्यन्त विनोद प्रिय व्यक्ति हैं। उनकी विनोद प्रियता से मित्र मण्डली में सदैव ताजगी बनी रहती है। उनके दरबार में कवि और शायर दोनों ही एक समान आदर प्राप्त करते हैं क्योंकि उनकी साप्ताहिक रत्न दीप गोष्ठी में सङ्गीत और साहित्य दोनों का ही समावेश रहता है। संस्कृत, हिन्दी और उर्दू की कविताओं का सस्वर पाठ होता है।

'रत्नदीप' (सांस्कृतिक संस्था) की गोष्ठी प्रति सोमवार की संध्या के समय उन के निवास स्थान, चौबे जी का कटरा किनारी बाजार में होती है। 'सर्व-जन-हिताय' और सर्वोन्नतये संस्था के प्रधान लक्ष्य हैं। गोष्ठी के अध्यक्ष को पहिनाई गई माला पहिने ही रहना होता है उसको उतार कर एक ओर नहीं रखने पाता, ऐसा संस्था का नियम है। गोष्ठी में पढ़ी गई उत्तम रचनाओं को छपवा कर बटवाने का भी नियम है।

नवम्बर १९६० ई० में इन पंक्तियों के लेखक को भी गोष्ठी अध्यक्षता करने का सुअवसर मिला था। उस गोष्ठी में पढ़ी गई कविता अधिक पंसद की गई थी अतएव उसका उत्तरार्द्ध छपवा कर वितरित किया गया था।

आतिथ्य-सत्कार श्री चतुर्वेदी जी अत्यन्त स्नेह पूर्वक करते हैं। प्रतिदिन दो अतिथि उनके साथ भोजन अवश्य करते हैं। बैठक में भी पानों का वितरण दिन भर चलता ही रहता है। कविवर श्री चातक जी तो उनके स्थायी-अतिथि हैं।

श्री चतुर्वेदी जी दृढ़ आस्तिक व्यक्ति हैं नियम से अपने घर के मन्दिर में पूजा-पाठ करते हैं, प्रतिदिन तिलक लगाते हैं, तब कहीं भोजन करते हैं।

महीने में एक बार वे अपने शिर के बालों को काले मसाले से रँगवाते हैं जिससे वे बराबर काले और चमकीले प्रतीत होते हैं, उनने बतलाया था कि विगत बीस वर्षों से उनका यह क्रम नियम से चलता आ रहा है।

उनका जन्म पौष कृष्ण ३ सं० १९६४ विक्रमी (२२–१२–१९०७) के शुभ दिन आगरा में हुआ था। शिक्षा आगरा में ही हुई। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी में बी० ए० तक उनने शिक्षा प्राप्त की किन्तु स्वाध्याय करके विशेष योग्यता वे निरन्तर प्राप्त करते रहे।

श्री चतुर्वेदी जी को ही पुत्र-रत्न की प्राप्ति उनकी आठवीं पीढ़ी में हुई थी। उनका सुयोग्य पुत्र भी सब प्रकार श्री चतुर्वेदी जी का ही उत्तराधिकारी है।

श्री चतुर्वेदी जी की काव्य-साधना

युवा-काल से ही श्री चतुर्वेदी जी काव्य-कला का प्रादुर्भाव हो गया था। उनका प्रथम पद्य चतुर्वेदी मासिक-पत्रिका में सन् १९२१ में, जब वे केवल १४ वर्ष के थे, तब प्रकाशित हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया था। पश्चात् सस्कृत से हिन्दी में अनुवाद और अंग्रेजी से रूपान्तर करने की ओर प्रवृत्त हुए। रघुवंश, मेघदूत, गङ्गालहरी और श्री मद् भगवद् गीता के श्लोकों का उनने भावपूर्ण भाषानुवाद (छन्दोबद्ध) किया।

अंग्रेजी में ब्राइन, मिल्टन और शेली आदि के ग्रंथों का अनुशीलन कर उनको हिन्दी में रूपान्तर करके सन् १९२९ ई० में प्रकाशित करवाया।

गीता का पद्यानुवाद विविध छन्दों में किया गया है। उदाहरणार्थ दो छन्द पढ़िए—

वीर छन्द - धर्म भूमि, कुरु भूमि मध्य, मम सुत औ पाण्डव सज रण साज।
हुए जो एकत्र, किया क्या, संजय ! वहाँ उन्होंने आज॥
—प्रथम अध्याय—१।

सुमेरु छन्द—कभी सन्यास की करते प्रशंसा, कभी हैं योग के गुण आप गाते।
अधिक कल्याण कर हो, किन्तु तो भी वही समझाइए मुझको कृपा से॥
—पाँचवा अध्याय—१।

श्री चतुर्वेदी जी की प्रथम—पुस्तक, 'हृषीकेश-गीतांजलि' और रस रङ्ग सन् १९२५ ई० में प्रकाशित हुए थे जब वे केवल १८ वर्ष के ही थे।

सन् १९२६ ई० में श्री मद् भगबद् गीता के तीन अध्यायों का पद्यानुवाद प्रकाशित हुआ इस वर्ष ही वृद्ध नाविक अंग्रेजी का पद्यानुवाद प्रकाशित हुआ। सन् १९३३ में सप्तश्लोकी मेघदूत और सन् १९३६ में विजया वाटिका प्रकाशित हुई।

सन् १९४३ में श्री रामकृष्ण काव्य १९५२ में श्री कृष्ण ताण्डव स्तोत्रम् और १९५८ में श्री राम कृष्णायन प्रकाशित हुई। सन् १९५६ में 'छेड़ छाड़' नामक पुस्तक में हास्यात्मक पद्य प्रकाशित हुए।

श्री चतुर्वेदी जी ने संस्कृत, ब्रज-भाषा, खड़ी बोली और उर्दू सब में ही सफलता पूर्वक कवितायें लिखी हैं। यथा—

संस्कृत—

(श्री कृष्ण-ताण्डव—स्तोत्रम् से)

नवीन - मेघमण्डली-मनोज्ञ - विग्रहच्छविः,
कला-कलाप-कान्ति मत्प्रसन्न-नीरजाननः।
'मरीचि-मालि-नन्दनी'-प्रिय स्त्वतीव सुन्दर-
स्तनोपु रीत-सिक्-तनुः श्रियज्जगद् धुरन्धरः।८।

नये मेघ-मण्डल जैसी सुन्दर शारीरिक छबि वाले, कलाओं के समूह से कान्तियुक्त प्रसन्न-मुख कमल वाले, सुन्दरी सूर्य पुत्री (यमुना) के प्रिय; अत्यन्त सुन्दर, पीताम्बर धारी, जगत् की धुरी को धारण करने वाले (श्री कृष्ण) श्री (सम्पत्ति) को प्रदान करें।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिंदी—

(श्री राम कृष्ण काव्य से)

श्री राम पक्ष (तोटक छन्द, स+स+स+स)

भल जीव-दया सह-साहस ह्वै,
नव–दास सदा बन तीव्र-व्रती।
रन–धीर बनों वरि रामु हि सो,
'करता' जग को; सब के निज को ॥५॥

भावार्थ—साहस सहित ही जीव-दया अच्छी है, अतः जीव-दया का सदैव के लिये तीव्र व्रत लेकर संसार के दास बनों। श्री राम को आदर्श रूप में चुन कर रण धीर बनो। जो जगत के कर्त्ता तथा सब के निज के हैं।

उक्त पंक्तियों को दूसरी ओर से पढ़ने पर यही छन्द श्री कृष्ण पक्ष में इस प्रकार होगा—

(मोदक छन्द भ+भ+भ+भ)

तीव्र–व्रती नव–दास सदा वन,
ह्वै सह–साहस 'यादव जी' लभ।
को जनि के बस? को गज–तारक?
सो हि मुरारि बनों वर–धी नर ॥६॥

भावार्थ सदा के लिये तीव्र व्रत लेकर जगत् के दास बनो। साहस सहित श्री कृष्ण को प्राप्त करो। भक्त के वश में कौन है ? गजेन्द्र को मुक्ति देने वाला कौन है ? ऐसे उन भगवान विष्णु ने श्रेष्ठ-बुद्धि वाले मनुष्य श्री कृष्ण का रूप धारण किया।

ब्रजभाषा—

(श्री राम कृष्णायन से)

श्री रामायण (द्रुत-बिलम्बित वृत्त, न+भ+भ+र)

विषय– श्री रामादि का जन्म –

सजग आनक-दुन्दुभि ह्वै गये,
सु–भुज चार नरोत्तम औतरे।
ससि – मुखाकृति, सुन्दर – नैन हैं,
समुद देखत मातु–पिता तिन्हें ॥२॥

भावार्थ—(अयोध्या में) बड़े-नगाड़े जाग गये। वहाँ सुन्दर भुजाओं वाले चार उत्तम पुरुषों ने अवतार लिया। वे चन्द्रमा के समान मुखाकृति तथा सुन्दर नेत्रों वाले है जिन्हें मातायें तथा पिता सानन्द देखते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री कृष्णायन (द्रुत-विलम्बित वृत्त, न+भ+भ+र)

विषय--श्री कृष्ण जन्म

सजग "आनक दुन्दुभि" ह्वै गये,
"सु-भुज चार" नरोत्तम औतरे।
ससि-मुखाकृति, सुन्दर-नैन हैं
स-मुद देखत् मातु-पिता तिन्हें ॥२॥

भावार्थ--श्री बासुदेव जी सतर्क हो गये, सुन्दर चतुर्भुज (श्री विष्णु) उत्तम नर-रूप में अवतरित हुए। वे चन्द्रमा के समान मुखाकृति तथा सुन्दर नेत्रों वाले हैं। जिन्हें माता-पिता सानन्द देखते हैं।

'छेड़-छाड़' नामक पुस्तक में हास्यात्मक पद्यों का संग्रह है। सामाजिक-विषमताओं के कारण जन साधारण में कितनी अशान्ति है इसको व्यक्त करते हुए कितने ही छन्दों में उनने हृदयस्पर्शी चोटें की हैं जिनको पढ़ते ही हृदय गद्गद् हो जाता है।

"वानरो वा, नरो वा" शीर्षक में आप राष्ट्र नेता, अभिनेता, पत्रकार और कवि के लिए कहते हैं--

वैठते हैं ऊँचे, बड़ी उन की सभी में पूँछ,
लम्बी है पहुँच, भय किसी से न खाते हैं।
निपट निःशङ्क हो, कहीं भी कूद पड़ते हैं,
बल अपने का कल-कौतुक दिखाते हैं॥
खाते हैं कुलाँच, पग-पग पै उछलते हैं,
दाँत दिखलाते, कभी आँख से डराते हैं।
"वानर हैं, वा नर ?" न पूँछो, इन्हीं लक्षणों में,
नेता, अभिनेता, पत्रकार, कवि आते हैं॥

कविरत्न श्री चतुर्वेदी जी ने जिस प्रकार की कविताओं द्वारा राष्ट्र-भाषा-हिन्दी का मन्दिर अलंकृत किया है उससे ब्रजभाषा और राष्ट्र-भाषा-हिन्दी दोनों को ही गौरव प्राप्त हुआ है। उनके काव्यों में केवल प्रदर्शन या काव्य-कला ही नहीं भरपूर अर्थ गाम्भीर्य भी है।

श्री चतुर्वेदी जी से अभी बहुत-कुछ आशायें हैं, वे शतजीवी हों जिससे उनकी कविताओं द्वारा प्राचीन और अर्वाजीन विचार धाराओं का समन्वय हिन्दी-जगत को उपलब्ध होता रहे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन भारत के उपनिवेश (१)

(श्री वृन्दावन दास)

प्राचीन-काल में भारत के दक्षिण और दक्षिणपूर्व में औपनिवेशिक विस्तार हुआ। गंगा के मुहाने से कुमारी अन्तरीय तक पत्तनों की एक शृङ्खला थी। भारतीय पत्तन पलुरा से जो वर्तमान गञ्जम के निकट था मलय प्रायद्वीप को सीधा समुदी मार्ग था। पुराणों में आठ द्वीपों का उल्लेख है। वामन पुराण में स्पष्ट लिखा है--

इन्द्रद्वीप कशेरुश्च ताम्रपर्णोगभस्तिमान्।
नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वारुणस्तथा॥

इन्द्रद्वीप, कशेरू, ताम्रपर्णी, गभस्तिमान्, नागद्वीप, कटाह, सिंहल और वारुण ये आठों द्वीप थे। इन्द्रद्वीप आधुनिक अण्डमान, नागद्वीप नीकोबार, कटाह केड़ा, सिंहल सीलोन, वारुण बोर्नियो सुवर्णद्वीप सुमात्रा, यवद्वीप जावा बलिद्वीप वाली सुवर्ण भूमि बर्मा को कहते थे।

श्री लङ्का--

सबसे पहिले लङ्का में पदार्पण करने वाले आर्य नेता राम थे। इसका उल्लेख बाल्मीकि रामायण में है। राम के बाद कई शताब्दियों का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है। गुजराज प्रान्त के अन्तर्गत सिंह पुर के राजकुमार विलय ने अपने सात सौ साथियों के साथ लङ्का में प्रवेश किया। वह समुद्री मार्ग से लङ्का में आया था। लङ्का पर आकर उसने वहाँ अपना अधिकार कर लिया और अपने पिता महाराज सिंहबाहु के नाम पर उस द्वीप का नाम सिंहल रक्खा। कहते हैं विजय का लङ्का में प्रवेश बुद्ध की परिनिर्वाण तिथि के दिन ही हुआ था।

बाल्मीकि रामायण के अनुसार लङ्का के आदिवासी राक्षस थे जिनकी बड़ी उच्च सभ्यता थी और उनका सम्राट रावण बड़ा पराक्रमी और समृद्धिशाली था। सिंहली वृत्तों के आधार पर कथनों का सार यह है कि यहाँ के निवासी यक्ष और नाग थे। इस प्रकार इन दोनों प्रकार के उपलब्ध साक्ष्यों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

विजय की इस यात्रा के सम्बन्ध में अनेक लोक कथायें प्रचलित हैं। कहते हैं विजय और उसके साथी ऐसे नक्षत्र में जन्मे थे कि उन्हें कोई न कोई अद्भुत कार्य करना ही बदा था। उनकी गतिविधियाँ महाराज सिंहबाहु को अच्छी न लगीं और उसने एक जहाज में विजय को उसके सात सौ साथियों सहित बैठा दिया। उन लोगों में कुछ अच्छे नाविक भी थे और यही कारण था कि वे समुद्री मार्ग को तय करके लङ्का पहुँचे। लङ्का में उस समय यक्ष लोग रहते थे जिनकी रानी ने एक बार तो प्रतिरोध करने की ठानी परन्तु वह विजय को देख कर उस पर आसक्त हो गई और राजपाट उसको समर्पित करके उससे विवाह का प्रस्ताव किया था। विजय ने उसके साथ विवाह तो किया परन्तु उसके साथियों ने अन्य यक्षकुमारियों के साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया। फलतः विजय ने पाण्ड्य नरेश से भारतीय लड़कियाँ भेजने का अनुरोध किया। कहते हैं पाण्ड्य नरेश ने एक राजकुमारी सहित ७०० लड़कियों को लङ्का विजय और उसके साथियों के साथ विवाह हेतु भेज दिया।

विजय ने ३८ वर्ष राज्य किया। उसने ताम्रपर्णी नगरी बसाई और उसी को अपनी राजधानी बनाया। उसके साथियों ने भी अनुराधपुर, उजयिनी, उरुवेला आदि नगर बसाये। मालुम होता है विजय और उसके साथी कट्टर हिन्दू थे, उन्होंने बौद्ध धर्म अङ्गीकार नहीं किया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था। परन्तु उनके कुछ ही समय बाद लङ्का में बौद्ध धर्म का प्रवेश हो गया। अशोक के काल में राजा तिष्य ने बहुत से उपहारों के साथ एक शिष्ट मण्डल अशोक के समीप भेजा। अशोक ने अपने अनुज महेन्द्र को बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ लङ्का भेजा। स्त्रियों में बौद्ध धर्म का प्रचार करने को संघमित्रा को भेजा, वह अपने साथ बोधिवृक्ष की शाखा भी ले गई थी जिसका कि लङ्का में बड़ा स्वागत हुआ। उस शाखा से एक वृक्ष प्रस्फुटित हुआ जो आज भी विद्यमान है।

महेन्द्र के विषय में भी बड़ी रोचक कथायें प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार महेन्द्र अशोक का पुत्र था जो कि वेदिसागिरी के एक व्यापारी की कन्या देवी से उत्पन्न हुआ था। अशोक ने यह अवैध विवाह उस समय किया था जब वह अपने पिता बिन्दुसार के राज्य काल में उज्जयिनी का शासक था। अशोक के उत्तराधिकार ग्रहण करने पर देवी तो अपने पिता के पास उज्जैन में ही रही परन्तु उसकी सन्तान अशोक द्वारा पाटलिपुत्र ले जाई गई। महेन्द्र ने आरम्भ से ही धार्मिक वृत्ति दिखलाई और वह एक बौद्ध भिक्षु हो गया।

इसके विपरीत अन्य भारतीय लोक कथा के आधार पर महेन्द्र को अशोक का अनुज बताया जाता है और यह भी कहा जाता है कि अपनी युवावस्था में महेन्द्र का चाल-चलन बहुत खराब था। उसके विरुद्ध जघन्य अपराधों की एक सूची बन गई थी। उन शिकायतों के आधार पर जो उसके विरुद्ध सम्राट अशोक के पास पहुँचाई गई थी महेन्द्र को प्राणदण्ड दिया जा सकता था। अशोक ने महेन्द्र से कहा, "यदि मैं तुम्हारे बध किये जाने की आज्ञा देता हूँ तो मेरी प्रतिज्ञा टूटेगी और पितरों की दृष्टि में मैं दोषी ठहराया जाऊँगा और यदि तुम्हें छोड़ता हूँ तो यह न्याय का गला घोटना होगा और जनता में मेरा अपयश होगा, अतः तुमको सात दिन का कारावास दिया जाता है इसमें तुम अपने लिए खूब सोच विचार लो।" कहते हैं उस एकान्त, अन्धकार पूर्ण कोठरी में प्रतिदिन उससे द्वारपाल कहता कि अब उसके जीवन-काल में से एक दिन और घट गया और अपनी मृत्यु को सन्निकट जान महेन्द्र को पश्चात्ताप हुआ और उसने बुद्ध की शरण में जाने का निश्चय किया। सातवें दिन वह 'अर्हत' हो गया था और सब कुछ त्याग कर हिमालय पर जाने को तय्यार था। अशोक ने उसे बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए उपयुक्त समझ कर धर्म विजय अभियान पर भेजा। वह दक्षिण भारत के प्रदेशों में होता हुआ लङ्का पहुँचा था। एक मत तो यह है कि उसने स्थल मार्ग से जाना इसलिए पसन्द किया कि वह अन्तिम बार उज्जयिनी में अपनी माता के दर्शन करके ही समुद्र यात्रा करना चाहता था। दूसरा मत यह है कि धर्म के प्रचार और अनेक बिहारों की स्थापना की दृष्टि से ही वह स्थल मार्ग से लङ्का को गया था।

महेन्द्र ने तिष्य को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। तिष्य ने महेन्द्र और उसके साथ भिक्षुओं के लिए महा बिहार उद्यान के एक मठ बनवाया। तिष्य ने अपने लिए भी देवानाम्प्रिय की उपाधि धारण की।

विजय के वंशजों ने कई शताब्दियों तक राज्य किया। चोलों से यहाँ के राजाओं का जो संघर्ष हुआ उसका विवरण चोल राजाओं के वृत्तान्त में आया है। चोल आधिपत्य से मुक्त कराने वाला राजा था विजय बाहु जिसने सन् १०७० ई० में चोलों को पराजित किया। उसके बाद पराक्रम बाहु बड़ा प्रभाव शाली राजा हुआ। उसने ११५३ से ११८६ ई० तक राज्य किया। उसने अनेक भवनों और बिहारों का निर्माण किया और बौद्ध धर्म का पुनर्गठन किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिंद चीन—

जैसा कि इस प्रदेश के नाम से ही विदित है इसमें भारतीय और चीनी सभ्यताओं और संस्कृतियों का सम्मेलन हुआ। यहाँ आकर भारतीय राजकुमारों ने ईसा की पहिली या दूसरी शताब्दी में राज्यों की स्थापना की। यह पता नहीं चलता कि भारतीयों ने पहिले हिन्दी चीन में राज्य स्थापित किया अथवा दक्षिणी बर्मा, मलय प्रापद्वीप, सुमात्रा, जावा आदि में। परन्तु चीनी लेखकों और शिला लेखों से जो इन्हीं क्षेत्रों में प्राप्त हुए थे यही तथ्य स्थिर होता है कि भारतीयों ने पहिले दक्षिणी बर्मा, मलय, सुमात्रा जावा आदि में ही राज्य स्थापित किये और हिन्द चीन में बाद को।

चीनी लेखों से पता चलता है कि ईसवी सन् की पहली शती में हिन्द चीन में फूनान नामक एक महत्व पूर्ण राज्य था। यहाँ पहिले पहिल कौण्डिन्य नामक एक भारतीय ब्राह्मण ने अपना राज्य स्थापित किया। कोण्डिन्य का यहाँ की रानी से युद्ध हुआ। परन्तु जब कौण्डिन्य के प्रहार से रानी की नाव डूबने लगी तो कौण्डिन्य ने स्वयं डूबती हुई रानी को बचाया। रानी उस पर आसक्त हो गई और दोनों का विवाह हो गया। कौण्डिन्य एक महान् राज्य-निर्माता के रूप में प्रसिद्ध हुआ। कम्बोडिया, चम्पा तथा जावा सुमात्रा और बोर्निओ के कुछ राजवंश कौण्डिन्य को ही अपना पूर्व पुरुष मानते थे। एक किम्बदन्ती यह भी है कि कौण्डिन्य की उत्पत्ति द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के वंश में हुई थी। एक मान्यता यह भी है कि कौण्डिन्य पल्लव वंशी था। यह निर्विवाद है कि कौण्डिन्य इस देश में सभ्यता लाया। पहिले यहाँ के निवासी यहाँ तक रानी भी नंगे रहते थे। कौण्डिन्य ने रानी को एक ऐसा वस्त्र पहिनाया जिसमें होकर सिर ऊपर निकलता था और उस वस्त्र से सिर के नीचे का सारा भाग ढका रहता था।

कौण्डिन्य के उत्तराधिकारी भी प्रभावशाली हुए। एक उत्तराधिकारी के शासन काल में भारत से दूत मण्डल आया था। २४० ई० में उसने बदले में अपने दूतों को भारतीय राज्यों में भेजा था। चीनी लेखकों ने फूनान और उसके निवासियों का तत्कालीन वृत्तान्त लिखा है जो बड़ा रोचक है। वे लिखते हैं—"राज्य के नगरों के चारों ओर दीवारें थी। राजा और सामन्त-गण महलों में रहते थे। निवासी बदशक्ल, कृष्ण वर्ण, अस्त व्यस्त केशों से युक्त तथा नग्न रहा करते थे। उनके व्यवहार में कुछ असभ्यता थी परन्तु वे चोरी नहीं करते थे। वे पुराने ढङ्ग से खेती करते थे। वे चित्ते हुए आभूषण पहिनते थे। उनके भोजन के बहुत से बर्तन चाँदी के बने होते थे। करों की अदायगी सुवर्ण, चाँदी, मोती और सुगन्धियों में की जाती थी। उनके पास पुस्तकें और संग्रहालय भी थे। उनकी लिखावट मध्य एशिया के लोगों की भाषा को भारतीय लिपि में लिखने के समान थी ऐसा प्रतीत होता है कि फूनान में ईसा से पहिली सात शताब्दियों में बौद्ध धर्म का प्रचार था और सातवीं शती में हिन्दू धर्म का प्रचार हो गया।

फूनान में भारतीय संस्कृति का खूब विकास हुआ। एक चीनी लेखक के अनुसार वहाँ एक हजार से अधिक ब्राह्मण रहते थे। वहाँ के लोग ब्राह्मणों के उपदेशों का पालन करते थे और उनको विवाह में अपनी पुत्रियाँ अर्पित करने को तत्पर रहते थे। वे ब्राह्मण अहर्निश अध्ययन करते थे।

कम्बुज राज्य सातवीं सताब्दी में भववर्मा नामक राजा के समय में पनपा। भववर्मा के उत्तराधिकारी महेन्द्र वर्मा ने फूनान पर चढ़ाई करके उसके बहुत बड़े भाग को जीत लिया। उस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समय कम्बुज राज्य में वर्तमान सम्पूर्ण कम्बोडिया तथा कोचिन चीन सम्मिलित था। उसने ईशान-पुर नामक एक नवीन नगर की स्थापना की। इस वंश का अन्तिम राजा जयवर्मा प्रथम था जिसने ६८१ ई० तक राज्य किया। आठवीं शताब्दी में कम्बुज पर जावा नरेश का अधिकार हो गया। परन्तु नवीं शताब्दी के आरम्भ में जयवर्मा द्वितीय ने कम्बुज को पुन: स्वतन्त्र करा दिया और शक्तिशाली बनाया। उसने ५० वर्ष से भी अधिक समय तक राज्य किया, कई बार अपनी राजधानी को बदला और हिरण्य दाम नामक ब्राह्मण को बुला कर देश की सुरक्षा के लिए तान्त्रिक अनुष्ठान करवाया। उसके पुत्र जयवर्मा तृतीय ने राज्य को बढ़ाया और उसे साम्राज्य का रूप दिया।

जयवर्मा तृतीय के वाद इन्द्र वर्मा ने ख्याति प्राप्त की और एक नया वंश चलाया। उसका पुत्र यशोवर्मा ८८९ ई० में राज्य सिंहासन पर बैठा। उसे यशोधर पुर नामक एक नगर बसाया जिसे उसने अपनी राजधानी भी घोषित किया। यशोवर्मा एक वीर योद्धा तो था ही वह स्वयं महान् विद्वान् और दूसरे विद्वानों का आश्रय दाता था। उसके समय में कलाओं और विद्या की बड़ी उन्नति हुई। उसने पतञ्जलि के महा भाष्य पर एक टीका लिखी थी। उसमें धार्मिक सहिष्णुता भी अगाध थी। शैव होते हुए भी वह बौद्ध धर्म के प्रचार में कभी बाधक सिद्ध न हुआ।

यशो वर्मा का वंश कई पीढ़ियों तक चलता रहा। सन् १०१० ई० सूर्य वर्मा प्रथम कम्बुज के राज्य सिंहासन हर बैठा। वह विद्वान् था और काव्य, धर्म शास्त्र और दर्शनों के गहन अध्ययन में रुचि लेता था। उसने सम्भवत: बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया था।

सन् १११३ ई० में सूर्य वर्मा द्वितीय कम्बुज का राजा हुआ। उसने सम्पूर्ण कम्बुज राज्य का एकीकरण किया। उसके राज्य में दक्षिण वर्मा और मलय का उत्तरी भाग सम्मिलित था। उसने चीन में दो दूत मण्डल भेजे। उसकी सेना में कहते है दो लाख हाथी थे। उसने अपने गुरु दिवाकर के आचार्यत्व में कोटिहोम, लक्षहोम, महाहोम आदि अनेक यज्ञ सम्पन्न किये। अङ्ग कोरबाट का प्रसिद्ध विष्णु मन्दिर सूर्य वर्मा ने ही बनवाया था।

सन् ११८१ में जय वर्मा सप्तम कम्बुज का अन्तिम महान् राजा था। उसने चम्पा और दक्षिणी वर्मा को कम्बुज में सम्मिलित कर दिया। उसके राज्य में कम्बुज की सीमायें सबसे अधिक विस्तार को प्राप्त हुईं। उसके साम्राज्य में सम्पूर्ण कम्बोडिया, कोचिन चीन, लाओस, स्याम, दक्षिणी वर्मा और उत्तरी मलय सब सम्मिलित थे। जय वर्मा ने अगकोर थोम नामक एक नई राजधानी का निर्माण किया जिसके विशाल खण्डहर आज भी दर्शनीय बने हुए हैं।

कम्बुज भारतीय सभ्यता एव संस्कृति का महान् केन्द्र था। उसके नगरों के नाम भारतीय ढङ्ग के थे जैसे ताम्रपुर, आढ्यपुर, ध्रुवपुर, विक्रमपुर आदि। उसमें भारतीय आदर्शों के अनुसार दान शालायें और आरोग्य शालाएँ थी। वहाँ अनेक ब्राह्मण रहते थे जो वेद और वेदाङ्ग धर्म शास्त्र का अध्ययन मनन करते और प्रचार करते थे। भारत और कम्बुज में आवा-गमन भी प्रचुर रूप से था। वहाँ अभिलेख संस्कृत में मिले हैं जिनमें वात्स्यायन, विशालाक्ष प्रवरसेन, मयूर, गुणाढ्य का उल्लेख मिलता हैं। दिवाकर भट्ट का विवाह कम्बुज की राज-कुमारी से हुआ। हिरण्य दाम ने तान्त्रिक अनुष्ठान किया था। कम्बुज में अनेक आश्रम थे। यशोवर्मा ने सौ आश्रम स्थापित किये थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कला भी भारतीय थी। अङ्ग कोरवाट का मन्दिर और अङ्गकोर थोम खन्डहर वास्तु कला के अद्भुत उदाहरण हैं। इनकी संसार के महान् आश्चर्यों में गणना होती है। अरब यत्रियों ने तो कम्बुज को उसकी भारतीयता के कारण भारत का एक अभिन्न अङ्ग माना है। भारतीय संस्कृति का सुन्दर दर्शन कम्बुज में १५ वीं शताब्दी तक अक्षुण्ण बना रहा।

(क्रमशः)

★

'व्रज ८४' में प्रचलित स्वजन शब्दावली का विवेचन

(डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा 'नीरव' एम० ए०, पी-एच० डी- कोल्लम्)

[जिस स्वजन शब्दावली का यहाँ विवेचन किया जा रहा है वह धार्मिक क्षेत्र 'व्रज ८४' के उन हिन्दू लोगों में प्रचलित है जिनके पुरखे कई पीढ़ियों से यहाँ रहते चले आ रहे हैं]

सभी सामाजिक समुदायों के मनुष्य आपस में विभिन्न प्रकार के बँधनों से बँधे हुए होते हैं। इन्हीं बंधनों के परिणाम स्वरूप ही समुदायों का अस्तित्व है अन्यथा बन्धन समाप्त होते ही ये समुदाय भी विशृङ्खलित हो जाएँ। इन बन्धनों में सबसे अधिक विश्वव्यापी तथा प्रमुख बन्धन प्रजनन-सहज प्रवृत्ति (Reproductive Instinct) पर आधारित है। यह प्रवृत्ति परिवार (Family) नामक एक सामाजिक समुदाय की उद्भाविका है। 'परिवार' एक साथ निवास, प्रजनन तथा आर्थिक सहयोग से सम्पुष्ट एक सामाजिक समूह होता है जिसमें कम से कम दो उभयलिंगी प्रौढ़ अवश्य होते हैं जो समाजानुमोदित सम्बन्ध का पालन करते हैं। इसमें एक या एक से अधिक औरस या दत्तक संतान का अस्तित्व भी समाहित है। परिवार तीन प्रकार के कहे जा सकते हैं—(१) केन्द्रक परिवार (Nuclear Family) में पति-पत्नी तथा अविवाहित बच्चे होते हैं। ब्रज में केन्द्रक परिवारों का अस्तित्व अभी न के बराबर ही है किन्तु पश्चिमी सभ्यता तथा आर्थिक विषमताएँ ऐसे परिवारों को अस्तित्व में लाने में सहायक सिद्ध हो रही हैं। (२) विस्तरित परिवार (Extended Family) में एक से अधिक केन्द्रक परिवार होते हैं। इस वर्ग में बहुविवाही परिवार (Polygamous Family) भी समाहित हो जाता है। ब्रज ८४ में अधिकाँश परिवार इसी श्रेणी के हैं। यह परिवार-प्रणाली 'संयुक्त परिवार' प्रणाली भी कही जा सकती है। (३) बहुजननीय परिवार (Polygenesis Family) एक से अधिक प्रकार की जनन-कोशिका (germ-Cell) से व्युत्पन्न होता है। ऐसे परिवार 'बहुपतित्वप्रथा वाले परिवार' (Polyandrous Family) तथा 'बहुपत्नीत्व प्रथा वाले परिवार (Polygymy Family) होते हैं। ब्रज ८४ में ऐसे परिवार कुछेक निम्नवर्गीय जाति के लोगों में कहीं-कहीं मिलते हैं।

बहुपतित्व प्रथा वाले परिवार दो प्रकार के होते हैं – (१) भ्रातृक (Fraternal) जब एक ही पत्नी के पति आपस में भाई-भाई होते हैं। 'टोडा' जाति में यह प्रथा प्रचलित है। ब्रज ८४ में यह प्रथा प्रचलित नहीं है। महाभारत में द्रौपदी के पाँच पति होने का उल्लेख है—(आदि पर्व १९५। २८; १९६। ८) किन्तु द्रौपदी के इन पाँच पतियों का होना द्रुपद की अनिच्छा और कुन्ती की आज्ञा पालन का ही सूचक है, सर्व सामान्य प्रथा का द्योतक नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(आदि पर्व १६५ । २८ ; ६६६ । ८) । महाभारत आदि पर्व १६६ । १५ के अनुसार बार्क्षी प्रचेता का विवाह आपस में भाई-भाई दस सशित व्रत पुरुषों के साथ हुआ था—

तथैव मुनिजा बार्क्षी तपोभिर्भावितात्मनः ।
संगताभ्रूद्दश भ्रतृनेकनाम्न प्रचेतसः ।।

(२) अभ्रातृक (Nonfraternal जब एक ही पत्नी के पति आपस में भाई-भाई नहीं होते । 'मरक्वियन' जाति में यह प्रथा प्रचलित है । ब्रज ८४ में यह प्रथा भी प्रचलित नहीं है । महाभारत आदि पर्व १६६ । १४ के अनुसार जटिला ने सात ऋषियों से एक साथ विवाह किया था—

श्रूयते हि पुराणेऽपि जटिला नाम गौतमी ।
ऋषीनध्यासितवती सप्त धर्मभृतांवरा ।।

याति कन्या माधवी के चार पति थे— उद्योग पर्व ११६ । २१ कुरु आदि उत्तर प्रान्तों में महाभारत काल में बहुपतित्व वरण तथा स्वातन्त्र्य प्रथा कुछ-कुछ प्रचलित थी । कुन्ती से पाण्डु की कही गई उक्ति से इसकी पुष्टि होती है—आदि पर्व १२७ । ७ बहुपत्नीत्व प्रथा वाले परिवार भी दो प्रकार के होते हैं— १. लेवीरेट (Levirate) प्राचीन यहूदियों में यह प्रथा प्रचलित थी कि कोई पुत्र न होने पर मृतक का भाई विधवा से विवाह कर लेता था । ब्रज ८४ में कहीं-कहीं यह प्रथा छोटी जातियों में कुछ भिन्न रूप में प्रचलित हैं, यथा पति के मरने पर वह विधवा मृतक के छोटे (कभी-कभी बड़े) भाई की पत्नी हो जाती है, चाहे उसके इससे पहले ही एक या अधिक पत्नियाँ क्यों न हों । (२) (Sororal) इस प्रथा के अनुसार सबसे बड़ी बहिन जिस व्यक्ति की पत्नी बनती है, उसकी छोटी बहिनें भी उसी व्यक्ति की पत्नी मानी जाती हैं । ब्रह्मा के मानसपुत्र दक्ष प्रजापति ने काश्यप को तेरह तथा धर्म को दस कन्याएँ दान की थीं । उन्होंने चन्द्र को सत्ताईस कन्याएँ दान की थीं—शल्यपर्व ३५ वाँ अध्याय; शान्ति पर्व २०७ वाँ अध्याय । विचित्रवीर्य की पत्नी अम्बिका, अम्बालिका ऐसी ही पत्नियाँ थीं ।

दशरथ तथा कृष्ण के कई पत्नियाँ थीं । पाण्डु की पत्नियों का नाम कुन्ती और माद्री था । पाँचों पांडवों की एक से अधिक पत्नियाँ थीं । नीलगिरि के मूल निवासी 'तोदवो' में बहुपतित्व तथा बहुपत्नीत्व दोनों ही प्रथाएँ प्रचलित हैं । पति के भाइयों के लिए भी एक ही पत्नी मान ली जाती है । इसी तरह एक ही स्त्री के कई पति आपस में भाई-भाई ही माने जाते हैं (चाहे वे इस सम्बन्ध से पूर्व भाई-भाई न रहे हों) । कुछ लोग कई-कई पत्नियाँ भी रखते हैं ।

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति दो प्रकार के परिवारों में रहता है । १. वह परिवार जहाँ उसका जन्म तथा पालन-पोषण हुआ है । २. वह परिवार जहाँ वह अपने परिवार की स्वयं स्थापना करता है तथा बच्चों को जन्म देता है । परिवार में रहते हुए मानव की प्रजनन-वृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है । प्रजनन की यह इच्छा मानव-समुदाय में दो प्रकार के बन्धनों को जन्म देती है — १. ऐसा बन्धन जो पति-पत्नी तथा उनके सम्बन्धियों के मध्य स्थापित होता है । ऐसा बन्धन जो जनक-जननी तथा उनकी सन्तान के मध्य स्थापित होता है । प्रथम प्रकार का बन्धन वैवाहिक (Matrimonial) कहा जा सकता है । यह बन्धन सामाजिक परम्परानुमोदित विवाह अथवा न्यायालयीय विवाह (Civil Marriage) के कारण उत्पन्न होता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

'वैवाहिक स्वजन' प्रायः आपस में 'रक्त-सूत्र' से बद्ध नहीं होते, यथा— पति-पत्नी; ससुर-जमाई। द्वितीय प्रकार का बन्धन 'नाभिकीय' (Nuclear) कहा जा सकता है। यह बन्धन 'रक्त-सूत्र' से बद्ध होता है, यथा—पिता-पुत्र; दादी-नाती।

किसी जाति के व्यक्तियों के मध्य पारस्परिक व्यवहार का सम्बन्ध 'स्वजन-सम्बन्ध' कहा जाता है। दो व्यक्तियों का आपसी व्यवहार समाज के प्रभाव से नियन्त्रित रहता है। किन्हीं दो स्वजनों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध (Direct Relation) 'प्राथमिक सम्बन्ध' (Primary Relation) कहा जा सकता है, यथा—पिता-पुत्र सम्बन्ध (नाभिकीय); पति-पत्नी सम्बन्ध (वैवाहिक)। उन दो स्वजनों का सम्बन्ध जो प्राथमिक सम्बन्धियों के माध्यम से होता है, अप्रत्यक्ष सम्बन्ध (Indirect Relation) होता है। ऐसे सम्बन्ध को 'गौण' (Subsidiary) या 'गौणातिगौण' (Tertiary) सम्बन्ध कह सकते हैं। यथा—चाचा-पिता का छोटा भाई (नाभिकीय); साला-पत्नी का भाई (वैवाहिक)। १. प्राथमिक सम्बन्ध (Primary Relation) एक केन्द्रक परिवार (Nuclear Family) के सदस्यों में होता है, यथा—भाई-बहिन; पति-पत्नी; माता-पिता; पिता-पुत्री; माता-पुत्र। यह सम्बन्ध सामाजिक मान्यताओं तथा परिवार व्यवस्था पर आधारित है। इस सम्बन्ध का एक उपरूप रक्तीय सम्बन्ध (Consanguinial Relation) है जो एक ही पूर्वज के वंशजों में होता है, यथा—पुत्र, नाती, पोता; पिता, दादा, परदादा। २. गौण सम्बन्ध (Secondary Relation) प्राथमिक सम्बन्धी का प्राथमिक सम्बन्ध होता है, यथा—पिता का भाई (चाचा या ताऊ)। ३. गौणातिगौण सम्बन्ध (Tertiary Relation) प्राथमिक सम्बन्ध के प्राथमिक सम्बन्ध का प्राथमिक सम्बन्ध, यथा—पिता के भाई की पत्नी (चाची या ताई)।

किसी समाज में स्वीकृत स्वजन-शब्दावली उसके विभिन्न पारवारिक स्वजनों के पद-अभिधानों की द्योतक होती है। यह शब्दावली सामान्यतः दो प्रकार की होती है— १. श्रेणीकारणिक (Classificatory) तथा २. वर्णनात्मक (Descriptive) श्रेणीकारणिक शब्दावली कई स्वजन-सम्बन्धों को अपने में समाहित कर लेने वाली होती है, ये शब्द एक अथवा दो पीढ़ी के विभिन्न व्यक्तियों तथा कभी-कभी वैवाहिक स्वजनों के लिए भी समान रूप से प्रयुक्त होते हैं, यथा—असम की 'सेमा' नागा जाति में 'आजा' शब्द माता, पिता के भाई की पत्नी, माता की बहिन के लिए; 'आपू' शब्द पिता, पिता के भाई, माता की बहिन के पति के लिए; 'आमी' शब्द पिता की बहिन, पत्नी की माता, पति की माता, पति के भाई की पत्नी के लिए समान रूप से प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी में uncle, Nephew, Cousin तथा हिन्दी में ससुर, समधिन ऐसे ही शब्द हैं। ये शब्द 'विभेद-हीनता' के सूचक हैं। वर्णनात्मक पद सम्बोधक-सम्बोधी का आपसी सम्बन्ध प्रदर्शित करते है, यथा—पति-पत्नी, पिता-पुत्र; दादी-नाती; मामा-भानजा। वर्णनात्मक शब्दावली का एक शब्द एक स्वजन सम्बन्ध की ओर ही संकेत करता है, यथा—भाई, पिता, बहिन।

जिस प्रकार बहुत से व्यक्तियों को उनके 'वास्तविक नाम' से सम्बोधित न कर उनके स्वजन उन्हें उनके घरेलू नाम से (Pet-name) से सम्बोधित करते हुए देखे जाते हैं, उस प्रकार कुछ लोग अपने कुछ स्वजनों को संदर्भीय 'वर्णनात्मक पद' से सम्बोधित न कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किसी अन्य 'वर्णनात्मक पद' या 'संकेतित शब्द' से सम्बोधित करते हुए देखे जाते हैं, यद्यपि तत्सम्बन्धी समाज में सम्बोधित किए जाने वाले व्यक्ति के लिए 'वर्णनात्मक शब्द' वर्तमान होता है, यथा––कोई पुत्र अपने पिता को 'पिता' या बाप (बापू) न कहकर 'चाचा' (पिता का छोटा भाई) या 'दादा' (पिता का पिता) जैसे वर्णनात्मक शब्दों से सम्बोधित करता है। माँ को भाभी, ताऊ को भैया जी कहना भी इसी प्रकार है। पति-पत्नी तो आपस में प्रायः ऐसे अवसर पर संकेतित शब्दों का ही व्यवहार करते हुए देखे जाते हैं, यथा– जी (जैसे—सुनते/सुनती हो जी; इधर आना जी) या × × की माँ / × × के पिताजी। ये वर्णनात्मक या संकेतित शब्द आह्वान शब्द (Call wards) कहे जा सकते हैं। आह्वान शब्दावली सन्दर्भीय शब्दावली से भिन्न होती है। अतः सन्दर्भीय शब्दावली ही वास्तविक स्वजन शब्दावली है। आह्वान शब्दावली में स्वजन शब्दावली के शब्द प्रयुक्त होने पर भी वे यथार्थ स्वजनता की ओर संकेत नहीं करते।

स्वजन शब्दावली सामाजिक व्यवहार तथा पारिवारिक विस्तार की द्योतक है। किसी समाज की भाषा तथा उसकी शब्दावली के विकास-विस्तार से यह शब्दावली भी प्रभावित होती है। जिस समाज में स्वजनों का पारस्परिक सम्पर्क जितना कम होता है उसमें श्रेणीकरणिक शब्द उतने ही अधिक होते हैं। स्वजन-सम्बन्ध में हम ज्यों-ज्यों आगे (अर्थात् गौण तथा गौणातिगौण सम्बन्धों) की ओर बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों ही हमें श्रेणीकरणिक शब्दावली अधिक प्रयुक्त होती हुई प्राप्त होती है किन्तु प्राथमिक सम्बन्धों में वर्णनात्मक शब्दावली का ही प्रयोग होता है। श्रेणीकरणिक शब्दावली भाषाशास्त्रीय-अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त है। जब कभी सम्बन्धियों के बारे में अभिन्नता होती है, तब प्रायः श्रेणीकरणिक शब्दावली का ही प्रयोग किया जाता है। विभिन्न समाजों में प्रचलित यह श्रेणीकरणिक शब्दावली रक्त सम्बन्ध तथा विभिन्न आधारों पर आधारित है। कोई श्रेणीकरणिक शब्द केवल किसी एक विशिष्ट आधार पर ही आधारित नहीं कहा जा सकता। कभी-कभी एक शब्द के साथ कई आधार जुड़े रहते हैं।

—※—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रज लोक साहित्य में गहगड्ड

(आ० कैलाशचन्द्र 'कृष्ण', मथुरा)

ब्रज-भाषा का लालित्य और उसके उच्चारण का माधुर्य अपनी कोमलकान्त पदावली से जन जन का मन बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इसमें शोरसेनी अपभ्रंश के काल से आज तक निरन्तर शब्द साहित्य की अपार श्रीवृद्धि हुई है—अरबी, फारसी, संस्कृत, अवधी, बुन्देलखन्डी, मालवी, पंजाबी, जोधपुरी और गुर्जर आदि भारत की सभी भाषाओं के शब्दों को इसने अपने में आत्मसात् किया है। किंवा यों कहिये कि ब्रज-भाषा ने उत्तर भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं का सौष्ठव बढ़ाया।

संस्कृत भाषा से तो ब्रज-भाषा का शब्द साहित्य बहुत कुछ अपना साम्य रखता है। संस्कृत के अनेक शब्दों को ब्रज-भाषा ने स्वयं में स्वर्ण वैदूर्य की भाँति सँजोया है। इस भाषा का व्याकरण संस्कृत की ही भाँति नियमबद्ध एवं परिष्कृत है। हाँ लोक साहित्य के कुछ क्रिया-पद और सर्वनाम वाच्य शब्द अवश्य परिवर्तित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ संस्कृत के 'त्वं कुत्र गच्छसि' का हिन्दी रूप तुम कहाँ जा रहें हो का ब्रज-भाषा की दृष्टि से 'तुम कितकूँ जातो' या 'तुम कितै जातौ' हो जाता है।

संस्कृत में गम्भीर या गभीर शब्द गहरे के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसी भाँति संस्कृत के गर्त्त शब्द का अर्थ हिन्दी या ब्रज-भाषा में गड्ढा है। तो गम्भीर गर्त का अर्थ ब्रज-साहित्य में गहरे गड्ढे के लिए प्रयोग में आता है। गम्भीर की भाँति संस्कृत में इसी के पर्याय में गह्वर शब्द भी आता है जो संस्कृत में गम्भीर या गभीर के उपरान्त ही प्रयुक्त हुआ मालूम होता है। सम्भवत: गह्वर संस्कृत में प्राकृत अपभ्रंश से ही आया प्रतीत होता है। क्योंकि प्राकृत में गह्वर के स्थान पर 'गहुवर' का प्रयोग मिलता है। पालि भाषा में उसके व्याकरण नियम के आधार पर 'गहर' की प्राप्ति होती है। इस प्रकार गभीर, गम्भीर, गह्वर गहुवर और गहर सभी शब्द अपना रूप और अर्थ स्पष्ट रखते हैं।

ब्रज लोक साहित्य में उच्चारण की दृष्टि से गभीर या गम्भीर शब्द गँभर, गभर, गह्वर, गहुअर, गहवर और पुन: गहर तथा गह का रूप धारण कर माधुर्य प्रस्तुत करने लगा। इसके इन रूपों का प्रयोग अष्टछाप के सूरदासादि एवं मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' में प्राप्त होता है। आज भी बरसाने की पहाड़ियों में अवस्थित एक वनस्थली को ब्रजवासीजन गह्वर वन या घैंवर वन के नाम से पुकारते है।

पंजाबी भाषा जो ब्रज-भाषा के समीप की प्रान्तवर्ती भाषा है, ने इसी गह्वन शब्द का प्रयोग गबर और गबरू किया। पंजाबी भाषा में आज भी सामर्थ्यवान्, दृढ़ युवा पुरुष को गबरू कहा जाता है। वैशाखी के सांस्कृतिक मेले में भारबड़ा नृत्य के अवसर पर दृढ़ युवा पुरुष के

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के सुरुचिपूर्ण नृत्य को देखकर जन समुदाय कह ही उठता है 'गबरू मेरे देस दा बाँका छैल जबान।'

शनैः शनैः गंभीर गर्त शब्द गंभीर गड्डा के अर्थ में प्रयुक्त होता है हुआ ब्रजलोक साहित्य में 'गहगड्ड' नाम से परिवर्तित हो गया । गंभीर या गह्वर का यथार्थ अर्थ गहरे के साथ ही लोक समुदाय में घना, घनघोर, भारी, मोटा, पुष्ट, अधिक शक्ति सम्पन्न के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। ब्रज-जनलोक में 'अजी व्वामें बड़ी गहगड्ड ताकतु ऐं' कह व्यवहार में आता है। वर्तमान में लगभग २ शताब्दी से 'गहगड्ड' भाँग छानने के विषय में प्रौढ़ रूढ़ि बन गया अर्थात् जो व्यक्ति जितनी अधिक भाँग छाने या पिये तो उससे आज भी कहा जाता है कि 'कहो मित्र कैसी छनी' और कहाँ छनी।' इस प्रकार के पूछने पर वह व्यक्ति यही कहता है कि 'भैया, आजु तौ ऐसी गहगड्ड छनी ऐ कि बड़े ही अमल आय रहे हैं।'

यद्यपि ब्रज-वासियों में पहले की अपेक्षा भाँग पीने की प्रवृत्ति में आज के शिक्षा प्रसारण से बहुत कुछ न्यूनता उत्पन्न हुई है तथापि कुछ वर्ग विशेष तो सम्प्रति भी भाँग छानना आवश्यक समझता ही है। इस विषय में उस वर्ग में बड़ी धारणाएँ और किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। हाँ तो ब्रजलोक साहित्य में 'गहगड्ड' शब्द प्रौढ़तम रुढ़ि बन गया । लोक-साहित्य-सौष्ठव में गहगड्ड के अनेक उदाहरण मिलते हैं। साहित्य की रीतिकालीन परिपाटी के आधार पर स्वयं दूती नायिका के वचनों में गहगड्ड का एक उद्धरण ब्रजलोक साहित्य में बड़ा ही प्रेमास्पद है। जिसमें एक नायिका ने किसी युवा बलिष्ठ व्यक्ति को भाँग पियक्कड़ और अधिक भोजनो जानकर उससे अपने यहाँ ठहरने तथा भोजन के निमन्त्रण ग्रहण की प्रार्थना की, उक्ति है कि—

हरी हरी पत्ती भाँग की अरु मिरचन कौ ठट्ठ।
हम घोटें तुम पियौ मुसाफिर खूब छनें गहगड्ड ।।छनें गहगड्ड०

अर्थात् नायिका के शब्दों में कहा गया है कि पथिक मेरे यहाँ कालीमिर्च और भाँग का भंडार है। आओ, जरा ठहरो तो, आपको मैं स्वयं घोटकर पिला दूँगी। आपको घोटने का भी श्रम न होगा। इस पर वह पथिक उत्तर देता है कि—

भाँग पियें ते उदर में, भूख बढ़ैगी भड्ड।
यहां कहाँ सों भोजन धरे, छानों ना गहगड्ड ।।नहिं गहगड्ड०

अर्थात् मैं भाँग नहीं छानूँगा क्योंकि भाँग पीने से भूख बहुत लगती है । यहाँ भोजन का सुपास नहीं है। यह सुन नायिका कहने लगी—

कनक चीज मेरे घर धरी, घी भोदी की हट्ट ।
मैं पोऊँ तुम खाउ मुसाफिर, खूब छनें गहगड्ड ।।छनें गहगड्ड०

अर्थात् मेरे घर गेंहूँ बहुत हैं और पुष्ट भोजन के लिए घी रुपयों से परचूनी की दुकान से मँगवा लूँगी। आपको स्वयं अपने हाथों से बनाकर भरपेट भोजन करा दूँगी । यह सुन पथिक फिर बोला—

भोजन कर सुस्ती बढ़ै, होय सिज्जा सुख सज्ज।
यहाँ ऐसौ साधन नहीं, छानूँ नहिं गहगड्ड ।।नहीं गहगड्ड०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थात् मैं गहगड्ड भाँग नहीं छानूँगा । क्योंकि भोजनोपरान्त शरीर में आलस्य आता है और सोना आवश्यक हो जाता है । यहाँ कोई साधन सुविधा नहीं है । इस पर नायिका कह उठी—

फूलन की तो सेज बिछी हैं, अरु तकियन के ठठ्ठ ।
खाय पीय के सोउ मुसाफिर, खूब छनें गहगड्ड ।।छनें गहगड्ड०

अर्थात् आपके शयनार्थ फूलों की शैया पर गद्दे तकिये सभी कुछ मौजूद हैं । खा पीकर आराम करो । इस पर भी वह मार्गचारी मुझे अभी बहुत दूर जाना है और आवश्यक कार्य से शीघ्र पहुँचना है आदि कहकर "नहीं गहगड्ड" ३: कहता हुआ चला ही गया और न रुका ।

इस प्रकार 'गहगड्ड' शब्द की भाँति और भी बहुत से शब्द ब्रजलोक साहित्य में अपना गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं ।

पुस्तक परिचय

(श्रीवृन्दावनदास)

गाँधी-चरित्र माला—(महाकवि व्रजेश रचित) सम्पादकः—डा० चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा एम० ए०, पीएच-डी०

प्रकाशक तारा प्रकाशन मन्दिर ६४ वजीर गंज फैजाबाद मूल्य पचास पैसे ।

महाकवि व्रजेश प्रसिद्ध कवि नरहरि और आचार्य विश्वनाथ के वंशज थे । उनके काव्य के विषय में पुस्तक के भूमिका लेखक डा० चन्द्रिका प्रसाद अपने वक्तव्य में कहते हैं, "गाँधी चरित्रमाला के रचनाकार महाकवि व्रजेश ब्रजभाषा के प्रतिष्ठित काव्याचार्य थे। वे मतिराम, देव, भिखारीदास, पद्माकर और रत्नाकर आदि मुक्तक कारों की परम्परा में आते हैं। उनके काव्य में मतिराम जैसी स्वच्छता, विहारी जैसा चमत्कार, देव जैसी शब्द मैत्री, भिखारीदास जैसी सरसता, पद्माकर जैसा लालित्य और रत्नाकर जैसा माधुर्य विद्यमान है।" व्रजेश जी के काव्य की उत्कृष्टता पर इससे अधिक क्या लिखा जा सकता है। हम पुस्तक की सरसता और उपादेयता के विषय डा० शर्मा से सहमत हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यक्ति, व्यवहार और विकास (डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी एम० ए०, पीएच० डी०, डी० लिट्)
प्रकाशक इण्डियन बुक शॉप थियो सोफीकल सुसाइटी वाराणसी-१

व्यक्ति, व्यवहार और विकास तीनों ही विषयों पर विद्वान् लेखक के विचार पठनीय और मनन करने योग्य हैं। लेखक का मत है कि अपनी परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाना और बाधाओं पर विजय प्राप्त करना जीवन के मूल मन्त्र हैं। वास्तव में यही तो प्रकृति का भी नियम है और यही विकास है। लेखक ने विकास के बड़े सुन्दर उदाहरण पुस्तक में प्रस्तुत किये हैं। विकास का सैद्धान्तिक विवेचन बड़ा उत्कृष्ट बन पड़ा है। आध्यात्मिक अथवा चेतनापरक विकास की व्याख्या नूतन ढङ्ग से की गई है। विकास और व्यवहार का समन्वय प्रस्तुत करने के बाद जीवन में आचरण का रूप क्या है यह स्थिरीकरण बड़े विशद ढंग से किया गया है।

लेखक ने विषय वस्तु का प्रतिपादन करते हुए तुलसी, सूर मीरा आदि के पुष्कल उद्धरणों से विषय को सरस एवं सारगर्भित बना दिया है। यथा केशव कहि न जाइ का कहिए

× × ×

कोउ कह सत्य, झूँठ कह कोउ, युगल प्रबल कोउ माने ।
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचाने ।।
राम प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सब ही के।
सब कर मागहि एक फल राम चरन रति होउ
तिनके मनमन्दिर बसहु सिय रघुनन्दन दोउ

आदि ऐसे अनेकों उद्धरणों से डा० चतुर्वेदी ने गूढ़ विषयों को भी बोधगम्य, सुलभ और सरस बना दिया है।

आशा है उसके अनेक गुणों के कारण पुस्तक का व्यापक प्रचार होगा।

त्रिवेणी--गीतकार बेग्रास प्रकाशक बेग्रास प्रकाशन गरौठा मूल्य ५)

प्रस्तुत पुस्तक बेग्रासजी के गीतों का संग्रह है। बेग्रास जी की कृति की यह विशेषता है कि उन्होंने जीवन के सभी पहलुओं को अपनी कविता का विषय बनाया है। उनकी अभिव्यक्ति में एक टीस है। समाज की कुठाओं पर उनका करारा प्रहार है। बेग्रासजी की कविता उच्चकोटि की है। पुस्तक के आरम्भ में मित्रवर श्री लल्लूरामजी द्विवेदी के शुभ्र जीवन की निर्मल झाँकी प्रस्तुत की गई है। द्विवेदी जी सहकारिता के क्षेत्र में इन पंक्तियों के लेखक के सहकर्मी रहे हैं। वे निस्संदेह एक उच्च श्रेणी के समाज सेवी हैं।

—※—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्र-व्यवहार

प्रिय भाई वृन्दावन दास जी, वन्दे । दिनाङ्क ११-१-१९७०

आशा है कि आप बम्बई से लौट आये होंगे, इसलिये मथुरा के पते पर ही पत्र भेज रहा हूँ । मेरा एक सुझाव हैं — बल्कि प्रार्थना है कि आप स्व० आचार्य वासुदेव शरण जी के पत्रों की पाण्डुलिपि तैयार करदें, क्योंकि अभी वे इकट्ठे न किये गये तो उनके नष्ट हो जाने की आशङ्का है । मैंने बन्धुवर मीतल जी से इस बारे में निवेदन किया था । उन्होंने लिखा है— "अग्रवाल जी के पत्रों का संकलन करना कठिन है । यदि संग्रह हो गया तो फिर प्रकाशन की भी व्यवस्था हो सकती है ।"

मेरे अपने पास के लगभग एक सौ पत्र सम्मेलन पत्रिका के दो अङ्कों में छप ही चुके हैं और उन्हें प्रयाग से मँगाया जा सकया है । बन्धुवर सत्येन्द्र जी को मैं कई बार लिख चुका । उनके पास वहुत से पत्र हैं, जिनकी नकल मिल ही जानी चाहिये । श्री मीतल जी के पास और श्री यशपाल जैन जी के पास भी अनेक पत्र होंगे । शिवपुरी के एक जैन सज्जन के यहाँ शायद १५ पत्र थे । श्री राम कृष्ण दास जी के यहाँ तो बहुत से पत्र निकलने चाहिये और गाँव में गुप्त बन्धुओं के यहाँ भी अनेक पत्र होने चाहिये । श्री कृष्णानन्द गुप्त गरौठा, जिला झाँसी के यहाँ उनके पत्र हैं । शायद हरगोविन्द जी गुप्त चिरगाँव झाँसी के पास भी कुछ चिठ्ठियाँ होंगी । यह पता स्व० अग्रवाल जी के पुत्रों से लग सकता है कि आचार्य अग्रवाल जी का पत्र व्यवहार किन-किन से था । श्रीयुत देवेन्द्र सत्यार्थी के पास अनेक पत्र होंगे । यद्यपि उनसे उन पत्रों की नकल लेना अत्यन्त कठिन कार्य होगा । मुझसे तो वे नाराज हैं । वे कहते हैं कि "चौबे जी जिन्दा आदमियों की उपेक्षा करते हैं, बस मरों का श्राद्ध करते रहते हैं ।"

अग्रवाल जी के पुत्रों को १५% रायल्टी देकर वे सब पत्र पुस्तकाकार में छपाये जा सकते हैं । उन भले मानसों को इसकी कुछ विशेष चिन्ता नहीं और न उन्हें इतनी फुर्सत ही है कि वे पत्रों का उत्तर भी दे सकें ।

अग्रवाल जी पत्र लेखकों में शिरोमणि थे । आचार्य पद्मसिंह जी को छोड़ कर अन्य कोई भी इस विषय में उनका मुकाविला नहीं कर सकता । पत्रों से रस ग्रहण करने में उन्हें आनन्द आता था । यह बात उन्होंने स्वयं मुझे ही लिखी और कभी-कभी तो वे पत्रोत्तर देने के लिए दो से तीन दिन का उपवास भी कर लेते थे । मैंने एक बात देखी थी कि जहाँ कहीं भी वे होते अथवा जिस किसी कार्य में वे संलग्न होते, उस स्थान तथा कार्य का विवरण वे पूर्ण तन्मयता से लिख देते थे । इस विषय में पथ भ्रष्ट होना वे जानते ही न थे ।

यदि ऐसे अद्वितीय विद्वान का पत्र संग्रह समय रहते न कर लिया गया तो वे विस्मृति के एक गढ़े में विलीन हो जाँयगे और यह एक साहित्यिक दुर्घटना ही होगी ।

जब मैंने पं० पद्मसिंह जी के पत्रों का प्रकाशन किया था तो अग्रवाल जी को बहुत हर्ष हुआ था और उन्होंने मुझे यह भी आदेश दिया था कि दीनबन्धु एण्ड्रूज के पत्रों को सर्वप्रथम प्रकाशित कर देना चाहिये ।

आपके पास समय है, शक्ति है, साधन हैं और सर्वोपरि लगन भी । इसलिये यह श्राद्ध कार्य आपके सुपुर्द करने में मुझे संकोच नहीं होता । भाई प्रभुदयाल जी मीतल भी सहयोग दगे । लगे लगा में जो भी पुण्य कार्य बन पड़े सो कर देना चाहिये ।

— बनारसीदास चतुर्वेदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभिनन्दन-ग्रन्थ परिचय

(श्री उमाशंकर दीक्षित एम. ए., साहित्यरत्न)

महान क्रान्तिकारी पण्डित परमानन्द
अभिनन्दन-ग्रन्थ

सम्पादक-मण्डल—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी (प्रधान सम्पादक)
सा० महोपाध्याय पं० श्याम सुन्दर 'बादल', डा० गनेशीलाल, बुधोलिया
पं० चन्द्रशेखर जी शास्त्री साहित्याचार्य, डा० सुरेन्द्र बिहारीलाल सक्सैना
तथा श्री भूदत्त द्विवेदी एम० ए०, बी० टी० ।

प्रकाशक—लक्ष्मी प्रसाद पाठक (हमीरपुर)

मूल्य—१० रुपये ।

प्रस्तुत अभिनन्दन-ग्रन्थ पं० परमानन्दजी की ७५वीं वर्षगाँठ पर उन्हें भेंट किया गया है। भारत के विदेशी अँग्रेजी शासकों के हृदय में भय पैदा करने में प्रमुख स्थान जिनवीर नेताओं और देशभक्तों का है उनमें से एक श्री परमानन्द जी हैं । जिस वीरता से उन्होंने अंग्रेजों से लोहा लिया तथा उसके परिणाम स्वरूप ३१ वर्ष के लम्बे कारावास का कठोर दण्ड पाया, वह एक अविस्मरणीय घटना हैं। उनका व्यक्तित्व महर्षि कोटिका है। अपने लम्बे जेल जीवन के काल में अनेक विषयों की अनगिनत पुस्तकों का अध्ययन और मनन किया है। इसीसे इनके भाषण ऐसे हैं जैसे विविध विषयो का विश्व कोश खुला हो । इनके भाषण क्रान्तिकारी के साथ ही साथ युग-बोध भी करते हैं। वास्तव से ऐसा महान व्यक्तित्व हमारे गर्व की अनुभूति हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में पं० परमानन्द जी के व्यक्तित्व एवं कर्मठ जीवन से सम्बन्धित तथा अन्य ६९ लेख व कवितायें संग्रहीत हैं । अभिनन्दन ग्रन्थ पूर्वाद्ध एवं उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त है। पूर्वाद्ध में पं० परमानन्द जी के जीवन एवं कर्मठ व्यक्तित्व पर सारगभित लेख और कवितायें हैं। जो विभिन्न ख्याति प्राप्त विद्वानों और कवियों के द्वारा प्रस्तुत की गई हैं। इन लेखों में क्रान्तिकारी प० परमानन्द जी, जेल में परमानन्द की छाया, बुन्देलखण्ड गौरव पं० परमानन्द, श्रद्धा के फूल, दरोगा थर्रा गया, पं० परमानन्द उर्फ दद्दा आदि लेख विशेष प्रेरणा प्रद हैं साथ ही अन्य सभी लेख और कवितायें भी पंडित जी के व्यक्तित्व का सुन्दर प्रतिपादन करती है तथा शिक्षाप्रद हैं।

इस अभिनन्दन-ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध जितना उपयोगी है उतना ही इसका उत्तरार्द्ध भी महत्वपूर्ण है। उत्तरार्द्ध में लगभग ३३ लेख, कवितायें हैं जो विभिन्न क्रान्तिकारियों के विषय में हमें अच्छी प्रकार अवगत कराती हैं। स्वतन्त्रता संग्राम की वे वीर आत्मायें जिन्हें इतिहास भुला चुका है उनमें वीर तथा वीरांगनायें सभी हैं । इनमें झाँसी की रानी, लक्ष्मी बाई, तात्याटोपे, सावरकर, रासबिहारी बोस, ला० लाजपतराय, आजाद आदि कुछ वीर पुरुषों से सम्बन्धित लेख व कवितायें संग्रहीत हैं जो सभी उच्चकोटि की हैं । इस प्रकार यह अभिनन्दन-ग्रन्थ अत्यन्त मननीय और संग्रहणीय है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१-हमारे जवानों के शौर्य ने शत्रु के मनसूबे धूल में मिला दिए।
२-हमारे यहाँ बने हथियारों के सामने अमरीकी हथियार कामयाब न हो सके।
३-हमें अपने को अन्नोत्पादन में भी आत्म निर्भर होना है।
४-अमरीका या अन्य देशों का मुँह ताकना धोखा दे सकता है।

देश का हर व्यक्ति राष्ट्र की इस सबसे बड़ी समस्या में अपना योग दे सकता है। जिला सहकारी बैङ्क में अपना धन आप जमा करें जहाँ वह पूर्ण सुरक्षित है, ब्याज दूसरे बैङ्कों से आपको ज्यादा मिलेगा और किसानों के अन्नोत्पादन के कार्य में आपके धन का उपयोग होगा।

जिला निवासियों के लिये हमारी शुभ कामनाओं के साथ हम आशा भी करते हैं कि आप अपने ही सहकारी बैंक को अपनाकर अपना तथा इस बैंक का और अपने राष्ट्र का सदैव हित करेंगे।

ब्याज की दरें

सेविंग खाता पर	४	प्रतिशत	वार्षिक
कौल डिपौजिट पर	३।।।	,,	,,
६ माह की अमानत पर	५।।	,,	,,
१ साल की अमानत पर	६।	,,	,,
२ साल की अमानत पर	६।।	,,	,,
३ साल की अमानत पर	६।।।	,,	,,
४ साल की अमानत पर	७	,,	,,
५ साल की अमानत पर	७।	,,	,,
७ साल की अमानत पर	७।।	,,	,,

मथुरा जिला सहकारी बैंक लि०, मथुरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेन्चुरी की नई देन :

कोजी कॉट

कॉटन शटिंग

सुन्दर सुहावने चैक्स में उपलब्ध है।
पहनने में ऊनी कपड़े-सा आनन्द मिलता है।

निर्माता—

दि सेंचुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफैक्चरिंग कं. लि.

'सेंचुरी भवन' डॉ० एनी बेजन्ट रोड, वरली
बम्बई—२५ डी० डी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
विषय
पुस्तक संख्या 4003
8.2.71
Museum Library, Lucknow

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh